बालकाण्ड खण्ड ३ के प्रकरणोंकी सूची

श्रीसीतारामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये

खण्ड ३ में आये हुए ग्रन्थोंके नाम

(प्राय: औरोंके नाम पूर्व आ गये हैं)

अभिनय-शाकुन्तल्य
अनेकार्थ
अत्रि-स्मृति
आह्निक-सूत्र
उत्तररामचरित (नाटक)
कुवलयानन्द
गर्गसंहिता
गर्भोपनिषद्दीपिका
गूढार्थप्रकाश
गोभिल-सूत्र
जिज्ञासा-पञ्चक
ज्योति:प्रकाश
तत्त्वबोध
धर्मनौका
धर्मसिन्धु
नामकरणपद्धति
नारदपञ्चरात्र
निर्णयसिन्धु
पाण्डवगीता
पारस्करगृह्य-सूत्र
पिण्डसिद्धि
पुरोहितदर्पण
प्रसन्नराघव
बृहज्ज्योति:सार
भोजप्रबंध
मार्कण्डेयपुराण
माघ
मानस-तत्त्वप्रकाश
माधवीय तथा वैष्णवधर्मसंहिता
मायादर्शरा०
मानसहंस
मुहूर्तसिंधु
मुहूर्तचिन्तामणि
मेदिनीकोश
मेरुतन्त्र
मंगलकोश
रत्नमाला (श्रीपति)
श्रीरामरंग
श्रीरामरत्नाकर रामायण
श्रीरामपटल
श्रीरामरसायन
श्रीरामार्चनचन्द्रिका
श्रीजानकीरहस्य
श्रौतपदार्थ-निर्वचन ग्रन्थ
वायुनन्दन मिश्रकृत विवाहपद्धति
बृहज्ज्योति:सार
बृहद्विष्णुपुराणान्तर्गत मिथिलामाहात्म्य
शङ्खस्मृति
शकुन्तला नाटक
शुक्लयजु: शाकीय कर्मकाण्ड प्रदीप (निर्णयसागर)
श्रुतबोध
संस्कार-कौस्तुभ
संस्कारभास्कर
साकेत-रहस्य
सुभाषित रत्नभाण्डागार
सूरभ्रमरगीतसार
स्कन्दपुराण

संकेताक्षरोंकी तालिका

संकेताक्षर	विवरण
अ०	अयोध्याकाण्ड, अध्याय
अ० २०५, २।२०५	अयोध्याकाण्डका दोहा २०५ या उसकी चौपाई
अ० दी० च०	अभिप्रायदीपकचक्षु
अ० रा०	अध्यात्मरामायण
अमर०	अमरकोश
आ० रा०	आनन्दरामायण
अ०	अरण्यकाण्ड
अ० २, ३।२	अरण्यकाण्डका दूसरा दोहा या उसकी चौ०
उ०	उत्तरकाण्ड; उत्तरखण्ड (पुराणोंका); उत्तरार्ध; उपनिषद्;
उ० ११५; ७।११५	उत्तरकाण्डका दोहा ११५ या उसकी चौ०
क०	कवितावली
क० ७	कवितावलीका सातवाँ (उत्तर) काण्ड
कठ०	कठोपनिषद्
करु० श्रीकरुणासिंधुजी	श्री १०८ रामचरणदासजीकी 'आनन्दलहरी' टीका
कल्याण	गीताप्रेसकी मासिक पत्रिका
का०, १७०४	काशिराजके यहाँकी प्रति
काष्ठजिह्व स्वामी	रामायणपरिचर्याकार श्रीदेवतीर्थ स्वामी
कि० १०।४।१०	किष्किन्धाकाण्ड दोहा १० या उसकी चौ०
को० रा०	कोदोरामजीकी गुटका
खर्रा	पं० रामकुमारजीके प्रथमावस्थाकी लिखी टिप्पणी
गी०	गीतावली
गीता	श्रीमद्भगवद्गीता
गौड़जी	प्रो० श्रीरामदासजी गौड़ (स्वर्गीय)
चौ०	चौपाई (अर्धाली)
छ०	लाला छक्कनलालकी पोथी
छा० ३।१३।७	छान्दोग्योपनिषद् अध्याय ३ खण्ड १३ मन्त्र ७
टिप्पणी	पं० श्रीरामकुमारजीके हस्तलिखित टिप्पण जो स्वर्गीय पुरुषोत्तमदत्तजीसे प्राप्त हुए थे।
तैत्ति० (तै०) २।४	तैत्तिरीयोपनिषद् वल्ली २ अनुवाक ४
दीनजी	लाला भगवानदीनजी (स्वर्गीय)
दो०	दोहावली; दोहा;
नं० प०, श्रीनंगे परमहंसजी	बाबा श्रीअवधबिहारीदासजी, बाँध गुफा, प्रयाग।
ना० प्र०	नागरीप्रचारिणी-सभाका मूल पाठ
नोट	इसमें जहाँ किसीका नाम कोष्ठकमें नहीं है वह लेख प्रायः सम्पादकीय है
प० प० प्र०	श्रीस्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वतीजी
पं०, पंजाबीजी	श्रीसंतसिंह पंजाबीजीके 'भाव-प्रकाश'-टीकाके भाव।
प० पु०	पद्मपुराण
पाँ०, पाण्डेजी	मुं० रोशनलालकी टीका जिसमें पं० श्रीरामबख्श पाण्डेजीके भाव हैं।
पू०	पूर्वार्ध; पूर्व
प्र० रा०	प्रसन्नराघव नाटक
प्र० सं०	मानस-पीयूषका प्रथम संस्करण (१९२३—१९३४)
बं० पा०	श्रीवन्दन पाठकजीके हस्तलिखित टिप्पण
बा० ३; १।३	बालकाण्ड दोहा ३ या उसकी चौपाई।
बि०, विनय	विनयपत्रिकाका पद
बृह० आ०, बृह०,	बृ०—बृहदारण्यक
भक्तमाल	श्रीनाभास्वामीरचित भक्तमाल
भ० गु० द०	भगवद्गुणदर्पण (बैजनाथजीकी टीकासे)
भा० ९।१०	श्रीमद्भागवतस्कन्ध ९ अध्याय १०
भा० दा०	श्रीभागवतदासजीकी हस्तलिखित पोथी
भक्तिरसबोधिनी	भक्तमालकी टीका श्रीप्रियादासजीकृत
मं०	मंगलाचरण
मं० श्लो०	मंगलाचरण श्लोक
मनु०	मनुस्मृति
मयंक, मा० म०,	मानस-मयंककी टीका
मा० सं०	मानस-पीयूषका सम्पादक

संकेताक्षर	विवरण
मा० हं०	श्रीयादवशंकरजी रिटायर्ड सबजजकृत तुलसी-रहस्य 'मानसहंस'
मुण्डक १ । २ । १२	मुण्डकोपनिषद् प्रथम मुण्डक द्वितीय खण्ड, द्वादशमन्त्र
यजु० ३१ । १९ । १	यजुर्वेदसंहिता अध्याय ३१ कण्डिका १९ मन्त्र १
(पं०) रा० गु० द्वि०	पं० रामगुलाम द्विवेदीका गुटका (१९४५ ई० का छपा)
रा० ता०	श्रीरामतापनीयोपनिषद्
पं० रा० व० श० पं०	श्रीरामवल्लभाशरणजी (श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी)
रा० प्र०	रामायणपरिचर्या परिशिष्टप्रकाश
श्रीरूपकलाजी	वैष्णवरत्न अखिल भारतीय श्रीहरिनामयशसंकीर्तन सम्मेलनके संचालक, भक्तमाल तथा भक्तिरसबोधिनी टीकाके प्रसिद्ध टीकाकार अनन्त श्रीसीतारामशरण भगवान-प्रसादजी।
लं० १०३ । ७ । १०३	लंकाकाण्ड दोहा १०३ या उसकी चौपाई
वाल्मी०	वाल्मीकीय रामायण
वि० टी०	श्रीविनायकरावकृत विनायकी टीका
वि० त्रि०	पं० विजयानन्द त्रिपाठीजी
वि० पु० ६ । ५	विष्णुपुराण अंश ६ अध्याय ५
वि० सा० राम०	विश्वसाहित्यमें रामचरितमानस
वीर, वीरकवि	पं० महावीरप्रसाद मालवीयकी टीका
वे० भू०	वेदान्तभूषण पं० श्रीरामकुमारदास
वै०	श्रीवैजनाथदासकृत 'मानस-भूषण' तिलक
श० सा०	नागरी-प्रचारिणी-सभाद्वारा प्रकाशित हिन्दी शब्दोंका कोश प्रथम संस्करण
शीला०, शिला०	बाबा हरिदासजीकी टीका 'शीलावृत्त'
श्लोक०	श्लोक
श्वे०, श्वे० श्व०	श्वेताश्वतरोपनिषद्
सं०	संहिता, संवत्, संस्कृत
स०	सर्ग
सत्यो०	सत्योपाख्यान
सि० ति०	'सिद्धान्ततिलक' नामकी टीका जिसे पं० श्रीकान्ताशरणसे लिखवाकर श्रीरामलोचनशरणजीने पुस्तकभण्डार लहरियासराय व पटनासे प्रकाशित किया, जिसका छपना तथा प्रकाशन जुलाई १९४७ से तथा पटना हाईकोर्टके ११ मई १९५१ के एवं डिस्ट्रिक्ट जज फैजाबादके फैसलेसे जुर्म करार दिया गया है।
सुं० १० । ५ । १०	सुन्दरकाण्ड दोहा १० या उसकी चौपाई
हनु०, हनु० ना०	श्रीहनुमन्नाटक
१६६१, १७०४,	इन संवतोंकी हस्तलिखित प्रतियोंका १७२१, १७६२ पाठ
[ ] ( )	कोष्ठकान्तर्गत लेख प्रायः सम्पादकीय हैं, जहाँ किसीका नाम नहीं है।

स्मरण रहे कि—(१) बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लंका और उत्तरकाण्डोंके लिये क्रमसे १, २, ३, ४, ५, ६ और ७ सूचक अंक दिये गये हैं।

(२) किसी भी काण्डकी टीकामें जब उसी काण्डका उद्धरण उदाहरणमें दिया गया है तो प्रायः उस काण्डका सांकेतिक चिह्न (बा०, अ०, अ० आदि वा १, २, ३ आदि) न देकर हमने केवल दोहे-चौपाईकी संख्यामात्र दे दी है। जैसे, उत्तरकाण्डमें ११० । ५ का तात्पर्य है उत्तरकाण्डके दोहा ११० की चौपाई ५ । बालकाण्डमें ३३ । २=बालकाण्डके दोहा ३३ की चौपाई २ इत्यादि।

(३) प्रत्येक पृष्ठके ऊपर दोहा और उसकी चौपाइयोंका नम्बर दिया गया है। जिससे पाठकको देखते ही विदित हो जाय कि उस पृष्ठमें उन चौपाइयोंकी व्याख्या है।

बालकाण्ड खण्ड ३ के कुछ शब्दों और कामके विषयोंकी अनुक्रमणिका

परिशिष्ट सूची

'मानस' के कुछ टीकाकारोंकी टीकाओंके काल आदिका संक्षिप्त परिचय

टीकाका नाम	टीकाकार	प्रकाशनकाल व लेखनकाल	प्रकाशक व प्रेस
मानससुबोधिनी	श्रीकिशोरीदत्तजी	ये ग्रन्थ प्राय: १८७५ संवत्‌के पूर्व लिखे गये थे पर अप्राप्य हो गये। जो कोई खर्रा मिला था वह 'मा० पीयूष' में उद्धृत कर दिया गया था।	
मानसकल्लोलिनी	योगीन्द्र अल्पदत्तजी		
मानसरसविहारिणी	परमहंस रामप्रसाददासजी		
मानसदीपिका	श्रीरघुनाथदास वैष्णव सिंधी	सं० १९०९ (सन् १८५३)	राजाबाजार, काशी।
मानसभूषण (बासठ चौपाइयोंके पाँच-पाँच अर्थ)	महन्त राधेरामजी, काशी	सं० १९१९	गोपीनाथ बुक्सेलर, कचौड़ी गली, बनारस
मानसहंस-भूषण (सारे ग्रन्थमें इन्होंने काट-छाँटकर प्रत्येक दोहेमें आठ-ही-आठ चौपाइयाँ रखी हैं)	पं० शुकदेवलाल	सन् १८६७ १८८८ ई० जुलाई चौथी बार	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
मानसभाव-प्रदीपिका	पं० रामबख्श पांडे	सं० १९३५ (प्रकाशक मुं० रोशनलाल)	मुं० रोशनलालके नूरूल अबसार प्रेस, इलाहाबाद
मानस-परिचारिका	बाबा जानकीदासजी	सं० १९४०, सं० १९३२	नवलकिशोर प्रेस
आनन्दलहरी	महन्त श्रीरामचरणदास करुणासिंधुजी	सन् १८८४ प्रथम बार, सं० १८७८ (लेखनकाल)	नवलकिशोर प्रेस
मानसभूषण	श्रीबैजनाथजी	सन् १८९० ई०	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
संजीवनी टीका	पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र	सं० १९४६	खेमराज श्रीकृष्णदास श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई
रामायणपरिचर्या	श्रीदेवतीर्थ स्वामी काष्ठजिह्वाजी,	सन् १८९८	खड्गविलास प्रेस,
परिशिष्टप्रकाश	राजा श्रीईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह तथा श्रीसीतारामीय हरिहरप्रसादजी	सं० १९५५	बाँकीपुर, पटना
मानसभावप्रकाश	श्रीसंतसिंहजी पंजाबी	सन् १९०१। चैत्र कृष्ण ५ सं० १८८८ में पूर्ति	खड्गविलास प्रेस, पटना
मानसमयङ्क, मयूख (श्रीइन्द्रदेवनारायण सिंहकी टीकासहित) १९६८ दोहे	पं० शिवलाल पाठक	सन् १९०४। सं० १८७५, टीका सन् १९०१	खड्गविलास प्रेस, पटना
'पियूष-धारा'	पं० रामेश्वर भट्ट		निर्णयसागर, बम्बई
विनायकी टीका	श्रीविनायकरावपेंशनर ट्रेनिङ्ग इन्सटीट्युशन नार्मल स्कूल, जबलपुर	सं० १९७१ से १९७८ तक	Union Press, Hitkari Press, लहरी प्रेस, जबलपुरमें छपी
ना० प्र० सभाकी टीका	बा० श्यामसुन्दरदास	सन् १९१६ (सं० १९७३)	
शीलावृत्त	बाबा हरिदासजी	प्र० सं० सं० १९७४ के पूर्व द्वि० सं० सन् १९३५ में	दूसरा सं० गौरीशंकर साहने शुक्ला प्रिं० प्रे० लखनऊमें छपाया

मानसतत्त्वभास्कर किष्किन्धाकाण्ड	स्वर्गीय पं० रामकुमारजी		
मानसतत्त्व-सुधार्णवीया व्याख्यासहित मानस तत्त्वभास्करसुन्दरकाण्ड	परमहंस कल्याणराम रामानुजदास, पं० जनार्दनजी व्यास, महात्मा रामसेवकदासजी	सं० १९७५	एक्सप्रेस प्रेस, बाँकीपुर, पटना
दीनहितकारिणी टीका अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दरकाण्डोंकी	मानस-प्रचारक बाबा रामप्रसादशरण 'दीन'	सं० १९७५	भारतभूषण प्रेस, लखनऊ
	पं० महावीरप्रसाद मालवीय वीरकवि	सं० १९७९	बेलवीडियर प्रेस, प्रयाग
अयोध्याकाण्डकी टीका	प्रो० लाला भगवानदीनजी	प्र० सं० सं० १९८५ के पूर्व	साहित्यसेवक, कार्यालय, काशी, प्रकाशक। श्रीसीताराम प्रेस, काशीमें छपा।
उपमा, समता-अलंकारकी टीका	श्रीअवधविहारीदास (नागा परम-हंस) जी, बाँधगुफा, प्रयाग	सं०१९८९	
मानसांक	श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	सन् १९३९	
मानसमार्तण्ड (बालकाण्डके प्रथम ४३ दोहोंपर)	श्रीजानकीशरण नेहलताजी	सन् १९३९ के लगभग	
अभिप्राय-दीपकचक्षु (यत्र-तत्र चौपाइयोंकी व्याख्या)	श्रीजानकीशरण नेहलताजी	सं० २००३	सुलेमानी प्रेस, काशी। प्रकाशक स्वयं टीकाकार
मानसरहस्य	श्रीजयरामदास 'दीन'	सं० १९९९	गीताप्रेस, गोरखपुर
सिद्धान्ततिलक	पं० श्रीकान्तशरण, अयोध्या		पुस्तक-भण्डार लहरिया सराय व पटना
विजया टीका	मानसराजहंस पं० विजयानन्द त्रिपाठी, काशी	सं० २०११, सन् १९५५	

* श्रीः *

ॐ नमो भगवते मङ्गलमूर्तये कृपानिधये
गुरवे मर्कटाय श्रीरामदूताय श्रीसीतारामपद-
प्रेमपराभक्तिप्रदाय शरणागतवत्सलाय सर्वविघ्नविनाशकाय श्रीहनुमते।
जगद्गुर्वनन्तश्रीमद्गोस्वामितुलसीदासाय नमः।
ॐ नमो भगवत्या अस्मदाचार्यायै श्रीरूपकलादेव्यै।
श्रीगुरुचरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जस जो दायक फल चारि॥

श्रीरामचरितमानस

प्रथम सोपान (बालकाण्ड खण्ड ३)

मानस-पीयूष

श्रीरामावतार और बालचरित-प्रकरण

अवध पुरी रघुकुलमनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊ॥ ७॥
धर्मधुरंधर गुननिधि ग्यानी। हृदय भगति मति सारँगपानी॥ ८॥
दो०—कौसल्यादि नारि प्रिय* सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पद कमल बिनीत॥ १८८॥

अर्थ—श्रीअवधपुरीके राजा जो रघुकुलमें शिरोमणि (सिरमौर, भूषणरूप, सर्वश्रेष्ठ) और वेदोंमें प्रसिद्ध हैं, उनका श्रीदशरथजी नाम है॥ ७॥ वे धर्मधुरन्धर (धर्मरूपी भारके धारण करनेवाले), दिव्यगुणोंके निधान (समुद्र, खजाना वा भण्डार) और ज्ञानी थे। उनके हृदयमें शार्ङ्गपाणि (हाथमें शार्ङ्ग धनुष-बाण धारण करनेवाले) श्रीरामजीकी भक्ति थी और उन्हीं-(शार्ङ्गपाणि-) में उनकी बुद्धि लगी रहती थी अर्थात् उनको दृढ़ निश्चय था कि शार्ङ्गपाणि ही ब्रह्म हैं॥ ८॥ श्रीकौसल्याजी आदि सब प्रिय स्त्रियोंके आचरण पवित्र थे। वे पतिकी आज्ञाकारिणी थीं और (पतिमें) उनका प्रेम दृढ़ था। वे भगवान्‌के चरणकमलोंमें विशेष नम्रतापूर्वक दृढ़ प्रेम रखती थीं॥ १८८॥

टिप्पणी—१ *'अवधपुरी रघुकुलमनि राऊ'* इति। (क) आकाशवाणीद्वारा श्रीदशरथमहाराजका जन्म और विवाह वर्णन किया; यथा—*'ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरीं प्रगट नरभूपा॥'* (१८७। ४) अब राजाकी बड़ाई कहते हैं कि अवधपुरीके राजा हैं, अर्थात् जो सब पुरियोंमें श्रेष्ठ है वह श्रीअवधपुरी जिनकी राजधानी है, यथा—**'अयोध्यापुरी मस्तके'** राजघरानोंमें सबसे श्रेष्ठ रघुकुल है, उसके मणि हैं। (**'रघुकुलमनि'** शब्द देकर वाल्मी० १, ६ और ७ में जो कुछ लिखा है वह सब सूचित कर दिया। अर्थात् राजा वेदज्ञ, तेजस्वी, प्रजाके प्रिय, महान् वीर, जितेन्द्रिय, राजर्षि, महर्षियोंके समान तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध, ऐश्वर्यमें इन्द्र और कुबेरके समान, लोकके रक्षक, सत्यप्रतिज्ञ, शीलवान्, चरित्रवान्, धर्मधुरन्धर, मनुके समान पुरीके रक्षक, पापहीन, अधर्मका नाश करनेवाले, उदार दाता, ब्रह्मण्य, शत्रुहीन, महान् प्रतापी और पराक्रमी थे। इन्द्र भी उनकी सहायता लिया करता था और उनको अपने साथ सिंहासनपर बिठाया करता था। इत्यादि)।

---

* पाठान्तर—सब प्रिय।

(मणिके चार गुण होते हैं—सुजाति, शुचि, अमोल और सब भाँति सुन्दर। ये चारों गुण यहाँ दिखाये गये हैं। *'रघुकुल'* से सुजाति कहा, *'धर्मधुरंधर'* से शुचि कहा, *'गुननिधि'* से अमोल कहा और *'ज्ञानी'* तथा *'हृदय भगति मति सारँगपानी'* से सब भाँति सुन्दर कहा।) (वि० त्रि०) (ख) *'बेद बिदित'* इति। वेद महावाक्य है, ब्रह्मवाणी है, अतः सबसे श्रेष्ठ है। वही वेद महाराज दशरथका यश गाता है। [अथर्ववेदकी रामतापिनी उपनिषद्में तथा वाल्मीकीय रामायणमें जो वेदतुल्य माना जाता है, इनका नाम आया है, यथा— **'चिन्मयेऽस्मिन्महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ। रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः॥'** (१। १ रा० पू०) ऋग्वेदमें भी नाम आया है; यथा—**'चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणीं नयन्ति।'** (२। १। ११) बैजनाथजी लिखते हैं कि 'षडङ्गयुत चारों वेद मूर्तिमान् होनेसे दशरथ नाम विदित है'। अतः *'बेद बिदित'* कहा। 'दशरथ' नाम इससे रखा गया कि ये ऐसे प्रतापी होंगे कि इनका रथ दसों दिशाओंमें बेरोक जा सकेगा और ऐसा हुआ भी। देवासुर-संग्राममें तथा शनैश्चरसे युद्ध करनेका विचार करके ये ऊर्ध्व दिशामें रथसमेत गये ही थे।] (ग) *'दसरथ नाऊ'* कथनका भाव कि अवधपुरीमें सब राजा रघुकुलमणि हुए हैं, अतः संदेह-निवृत्त्यर्थ इनका नाम कहा।

वि० त्रि०—*'बेद बिदित'* से अधिकारी कहा। वेदमें व्यक्तिका नाम नहीं होता, पदका नाम होता है। जो पदके योग्य होगा वह दशरथ होगा। जय-विजय, रुद्रगण और जलन्धरवाले कल्पोंमें भगवान् कश्यपने दशरथ पदको अलंकृत किया था और भानुप्रताप-रावणवाले कल्पमें साक्षात् ब्रह्मने अवतार धारण किया था, उसमें भगवान् स्वायम्भू मनु दशरथ हुए। इसलिये कहते हैं कि दशरथ नाम वेद-विदित है।

टिप्पणी—२ *'धर्मधुरंधर गुननिधि ज्ञानी……।'* इति। (क) यहाँ दिखाते हैं कि राजा कर्म, ज्ञान और उपासना तीनोंसे युक्त हैं। धर्मधुरन्धर अर्थात् धर्मकी धुरी वा धर्मरूपी भारके धारण करनेवाले हैं, इससे 'कर्म' कहा। 'ज्ञानी' शब्दसे ज्ञानयुक्त कहा और *'हृदय भगति……'* से भक्ति वा उपासना कही। (ख) धर्मसे गुण आये। यम, नियम, आसन, प्राणायामादि गुणोंसे ज्ञान हुआ और ज्ञानसे भक्ति प्राप्त हुई; यथा—*'संयम नियम फूल फल ज्ञाना। हरिपद रति रस बेद बखाना॥'* अतः *'धर्मधुरंधर', 'गुननिधि', 'ज्ञानी'* आदि क्रमसे कहे। (ग) *'हृदय भगति मति सारँगपानी'*—'हृदयमें शार्ङ्गपाणिकी भक्ति है और मतिमें शार्ङ्गपाणि है। इस कथनका तात्पर्य यह है कि जो मनुरूपमें धनुर्धारी श्रीरामजीका दर्शन हुआ है वही रूप हृदयमें बस रहा है और उन्हींकी भक्ति हृदयमें बस रही है। बिना भक्तिके श्रीरामजी हृदयमें नहीं बसते; इसीसे दोनोंका वास कहा। (घ) *'मति सारँगपानी'* अर्थात् जिनका निश्चय है कि ब्रह्म शार्ङ्गपाणि है—**'निश्चयात्मिका बुद्धिः'**। बुद्धिका काम निश्चय करनेका है। [मुं० रोशनलालजी लिखते हैं कि *'हृदय भगति मति सारँगपानी'* का भाव यह है कि धनुर्धारी श्रीरामचन्द्रजीकी भक्ति बनी रही, क्योंकि इन्हींके लिये मनुशरीरमें तप किया था और इन्हींने प्रकट होकर वर दिया था। (पां०)]

टिप्पणी—३ *'कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत……'* इति। (क) श्रीकौसल्याजी, श्रीकैकेयीजी और श्रीसुमित्राजी ही *'प्रिय नारि'* हैं। यथा—*'तबहिं राय प्रिय नारि बोलाईं। कौसल्यादि तहाँ चलि आईं॥'* (१९०। १) जिन रानियोंसे अवतार होनेको है उन्हींका वर्णन यहाँ करते हैं। श्रीकौसल्याजी सबसे बड़ी हैं और प्रथम विवाहिता रानी हैं; इससे उनको प्रथम कहा। (ख) *'सब आचरन पुनीत'* अर्थात् गुरु-गौ-विप्र-साधु-सुर-सेवी हैं। यथा—*'तुम्ह गुर बिप्र धेनु सुर सेवी। तसि पुनीत कौसल्या देवी॥'* (२९४। ४) *'पुनीत'* कहनेका भाव कि वैदिक धर्माचरण उनको प्रिय है, उसीमें लगी रहती हैं। [पुनः, ये तीनों रानियाँ श्री, ह्री और कीर्तिके समान हैं, यथा—**'अस्य भार्यासु तिसृषु ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु च।'** (वाल्मी० १। १५। २०)—ऐसा देवताओंका मत है, अतः 'पुनीत' कहा। कौसल्याजी भानुमन्तजीकी कन्या हैं। जो दक्षिण कोसलके राजा थे। सुमित्राजी मगधदेशके राजाकी कन्या हैं। सत्यो० पू० अ० २८, ४७ में उनको 'मागधी' कहा है, यथा—**'नित्यं नित्यं तु चोत्थाय प्रातःकाले तु मागधी। लक्ष्मणं रामसान्निध्यं शत्रुघ्नं भरतस्य तु॥'** आनन्दरामा० सार काण्ड सर्ग १ में

भी कहा है— '**विवाहेनाकरोत् पत्नीं सुमित्रां मगधेशजाम्**'। और कैकेयीजी केकयवंशके राजा अश्वपतिकी कन्या हैं। इनको 'केकयराज' और 'केकय' भी कहा गया है। यथा—'**सत्कृत्य केकयो राजा भरताय ददौ धनम्।**' (वाल्मी० २। ७०। १९) '**ददावश्वपतिः शीघ्रं भरतायानुयायिनः॥**'(२२) 'पुत्रेष्टि-यज्ञमें राजाके तीनों श्वशुरोंको निमन्त्रण भेजा गया है। वहाँ सबके नाम वसिष्ठजीने कहे हैं। यथा—'**तथा कोसलराजानं भानुमन्तं सुसत्कृतम्। मगधाधिपतिं शूरं सर्वशास्त्रविशारदम्॥**' (१। १३। २६) '**तथा केकयराजानं वृद्धं परमधार्मिकम्।**……' (२४) बंगलाके कृत्तिवास रामायणकी सुमित्राजी सिंहलराज्यके राजा सुमित्रकी कन्या हैं—'*सिंहलराज्येर ये सुमित्र महीपति। सुमित्रा तनया तार अति रूपमति॥*'] रानियोंके सब आचरण पुनीत हैं यह कहकर आगे आचरण दिखाते हैं। (ग) '*पति अनुकूल प्रेम दृढ़*……' इति। पतिके अनुकूल होना तथा विनीत होना पतिव्रताका धर्म है; यथा—'*पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभाखानि सुसील बिनीता॥*' (७। २४) माता-पिताकी शुद्धता कहकर तब आगे अवतारका होना वर्णन करते हैं—पिता धर्मधुरन्धर हैं, माता पति-अनुकूल हैं। स्त्रीका यही धर्म है; यथा—'***एकै धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा॥***' (३। ५। १०) पिताके हृदयमें भगवान्‌की भक्ति है और माताओंका हरिपद-कमलमें दृढ़ प्रेम है; यथा—'*हृदय भगति मति*……' और '*प्रेम दृढ़ हरिपद कमल*……'। पिता गुणनिधि हैं और माताएँ विनीत हैं, पिता ज्ञानी हैं और माताएँ सब आचरण पुनीत हैं। कौसल्यादि माताएँ अपने पतिको प्रिय हैं और स्वयं पतिके अनुकूल हैं—इस प्रकार राजा और रानियोंका अन्योन्य प्रेम कहा। ('*प्रिय*' से दक्षिण नायक कहा। '*प्रेम दृढ़ हरिपद कमल*' से पतिके कल्याणके लिये ईश्वराराधन कहा। वि० त्रि०)

नोट—१ '*हरिपद*' अर्थात् जिनके लिये मनु-शतरूपाजीने तपस्या की थी; यथा—'*पुनि हरि हेतु करन तप लागे।*' (१४४। २) अर्थात् द्विभुजधनुर्धारी श्रीरामजी और जो उनके सामने प्रकट हुए थे। यथा—'*छबिसमुद्र हरिरूप बिलोकी।*' (१४८। ५) '**रामाख्यमीशं हरिम्**'—(पां०); उनके चरणोंमें। (ख) हमने '*प्रेम दृढ़*' को देहलीदीपक माना है। पं० रामकुमारजी आदिने इसे 'हरिपद' के साथ अन्वित किया है।

नोट—२ 'श्रीमद्गोस्वामीजीके मतानुसार महाराज श्रीदशरथजीके ७०० रानियाँ थीं। '*दसरथ राउ सहित सब रानी*' में देखिये। रानियाँ चार प्रकारकी होती हैं—महिषी, जिससे प्रथम विवाह वा सिन्दूरदान हुआ हो। परिव्राता, जिससे पीछे विवाह हुआ। बावाता, जिसको बेब्याहे अङ्गीकार कर लिया हो। और पालाकली, जो दासीभावसे रहती हो। यज्ञमें महिषी और परिव्राताहीको अधिकार है। वाल्मीकीयमें ३५० और महारामायणमें ३६० रानियाँ राजा दशरथजीकी कही गयी हैं। करुणासिंधुजी लिखते हैं कि राजाकी महिषी और परिव्राता दो ही प्रकारकी रानियाँ थीं।' (प्र० सं०)

☞ पद्मपुराणमें स्पष्ट उल्लेख तीन ही विवाहोंका है। १९० (१—४) नोट ३ देखिये। श्रीराजारामशरण लमगोड़ाजी लिखते हैं कि 'कहीं और संकेत है मगर मानसमें इतनी रानियोंका संकेत नहीं है। याद रहे कि गोस्वामीजीने मानसमें कथाका बहुत ही संशोधितरूप दिया है।' प्रथम संस्करणमें गीतावलीके '*पालागनि दुलहियन सिखावति सरिस सासुसतसाता। देहिं असीस ते बरिस कोटि लगि अचल होउ अहिबाता॥*' (१। १०८। २) के तथा वाल्मीकीयके आधारपर वह नोट लिखा गया था; परंतु दोहा १६। ६ के तीसरे संस्करणके मा० पी० तिलकके लिखते समय वह विचार शिथिल जान पड़ा। परंतु टीकाकारोंने मा० पी० के उस नोटको अपनी टीकामें सहर्ष उतार दिया है, इसलिये वह भी दे दिया गया। मानसकाव्य—आदर्शकाव्य रचा गया, इसी कारण इसमें आदर्श चरितोंका वर्णन है। इस ग्रन्थभरमें केवल तीन ही रानियोंके नाम और उन्हींकी चर्चा की गयी है। तीन स्त्रियोंका होना भी आदर्श नहीं है तथापि इनके बिना कथानक पूरा नहीं हो सकता था। इसपर प० प० प्र० का नोट १९३ (१) में देखिये।

एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरे सुत नाहीं॥ १॥
गुरगृह गए तुरत महिपाला। चरन लागि करि बिनय बिसाला॥ २॥
निज दुख सुख सब गुरहि सुनायउ। कहि बसिष्ठ बहुबिधि समुझायउ॥ ३॥

शब्दार्थ—गलानि (ग्लानि)=खेद। मनकी एक वृत्ति जिसमें किसी अपने कार्यकी बुराई, दोष वा कमी आदिको देखकर मनमें अनुत्साह, अरुचि और खिन्नता उत्पन्न होती है। चरण लगना=चरणोंका स्पर्श करना, चरण छूना, चरणोंमें पड़कर प्रणाम करना।

अर्थ—एक बार राजाके मनमें ग्लानि हुई कि मेरे पुत्र नहीं हैं॥ १॥ राजा तुरत गुरुजीके घर गये और चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम करके बहुत बड़ी विनय करके अपना सारा दुःख-सुख गुरुको सुनाया॥ श्रीवसिष्ठजीने बहुत प्रकारसे कहकर समझाया॥ २-३॥

टिप्पणी—१ *'एक बार भूपति मन माहीं।……'* इति। (क) *'एक बार'* अर्थात् जब भगवान्के अवतारका समय आया तब ईश्वरकी प्रेरणासे राजाके मनमें ग्लानि हुई। तीन पन बीत चुके, अब राजाका चौथा पन है। यथा—*'चौथे पन पाएउँ सुत चारी।'* (२०८। २) पुत्र बिना वंशका नाश है जिससे आगे राज्यका अन्त है, पितरोंकी तृप्ति बिना पुत्रके नहीं होती और न गृहस्थाश्रमकी शोभा ही हो, इसीसे ग्लानि हुई। [पुत्र बिना नरकसे उद्धार कैसे होगा? यथा—**'पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः'** इति मनुः। हमारी आयु बीती जा रही है, वनमें जाकर भजन करनेका समय हो गया; राज्य किसको दें? ऐसे ही चल दें तो प्रजा दुःखी होगी, जिससे हमें नरकमें पड़ना होगा, यथा—*'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥'* (अ० ७१) इससे कुछ समझमें नहीं आता कि क्या करें।] *'मोरे सुत नाहीं'* का भाव कि औरोंके हैं, हम ही एक निपुत्री हैं [वा, और सब सुख हैं पर पुत्र नहीं है। पुत्रके बिना सब धन, ऐश्वर्य, राज्य आदि सुख व्यर्थ हैं। यथा—**'पुत्रहीनस्य मे राज्यं सर्वं दुःखाय कल्पते।'** (अ० रा० १। ३। ३) अर्थात् बिना पुत्रके यह सम्पूर्ण राज्य मुझे दुःखरूप हो रहा है] (ख) *'भै गलानि……'*। यथा—ब्रह्माण्डे—**'नरस्य पुत्रहीनस्य नास्ति वै जन्मतः फलम्। अपुत्रस्य गृहं शून्यं हृदयं दुःखितं सदा॥ १॥ पितृदेवमनुष्याणां नानृणत्वं सुतं विना। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सुतमुत्पादयेन्नरः॥ २॥'**—(खर्रा)। अर्थात् पुत्रहीन मनुष्यको जन्मका फल कुछ नहीं है। अपुत्रका घर शून्य लगता है जिससे उसका हृदय सदा दुःखी रहता है। पितर, देव और ऋषियोंके ऋणसे पुत्रके बिना उद्धार नहीं होता। इसलिये मनुष्यको पुत्रोत्पत्तिका प्रयत्न करना चाहिये।

टिप्पणी—२ *'गुरगृह गए तुरत महिपाला।……'* इति। (क) गुरुके घर जानेका भाव कि यदि राज्यसम्बन्धी कुछ काम होता तो अन्य मन्त्रियोंको सुनाते पर इस कार्यके करनेका सामर्थ्य वसिष्ठजीमें ही है, अतएव उन्हींके पास गये कि जो उपाय वे बतावें वह हम करें। (वाल्मीकीय आदिमें गुरु आदिको अपने यहाँ बुलाना लिखा है)। (ख) *'गए तुरत'* तुरत जानेके कुछ कारण ये हैं कि मेरा भुलक्कड़ स्वभाव है कहीं भूल न जाऊँ; यथा—*'बिसरि गयो मोहि भोर सुभाऊ।'* (२। २८) पुनः, इस समय गुरुसे अपना दुःख कहनेके लिये अच्छा अवसर था, गुरुजी एकान्तमें होंगे, उन्हें अवकाश होगा। अथवा, इस समय ऐसी तीव्र ग्लानि हुई कि बिना गये और कहे रहा न गया, अतः 'तुरत गए'। [(ग) *'महिपाला'* का भाव कि इस कार्यसे पृथ्वीका पालन होगा, प्रजाको सुख होगा। पुनः भाव कि चक्रवर्ती राजा होकर स्वयं वसिष्ठजीके पास गये क्योंकि 'महिपाल' हैं, इन्हें पृथ्वीके पालनकी अत्यन्त चिन्ता है। ये राजा हैं और वसिष्ठजी गुरु हैं; गुरुके सम्बन्धसे उनके यहाँ गये, मन्त्रीके सम्बन्धसे नहीं। अतः राजाके जानेमें *'गुरगृह'* शब्द दिये। पंजाबीजी लिखते हैं कि *'महिपाला'* का भाव यह है कि पृथ्वीका पालन तो वेदरीतिसे करते ही हैं, कुछ पृथ्वी धन-धामकी कमी नहीं है, इनके लिये नहीं गये, चित्तमें पुत्रकी चिन्ता है इसलिये गये।]

टिप्पणी—३ *'चरन लागि करि बिनय बिसाला'* इति। (क) चरणोंमें पड़कर तब विनय करे यह गुरुस्तुति करनेकी विधि है; यथा—*'सीस नवहिं सुरगुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय*

बिसेषी॥' (२। १२९) विशेष विनय करनी चाहिये। अतः यहाँ भी 'बिसाल बिनय' पद दिया। [*'बिनय बिसाला'*—जैसे कि 'जब-जब रघुवंशियोंको संकट पड़े आपहीने मिटाकर सुख दिया, आप समर्थ हैं, हमारा भी मनोरथ पूर्ण कर सकते हैं। यथा—*'भानुबंस भए भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे॥ जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता॥ दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जगु जाना॥ सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥'* (२। २५५)—यह श्रीभरतजीने श्रीवसिष्ठजीसे कहा है। वैसा ही यहाँ समझिये। विशेष २। २५५। ५। ८ में देखिये। (ख) मिलानका श्लोक, यथा—'**अभिवाद्य वसिष्ठं च न्यायतः प्रतिपूज्य च। अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं प्रसवार्थं द्विजोत्तमम्॥**' (वाल्मी० १। १३। २) अर्थात् वसिष्ठजीको उन्होंने प्रणाम किया और उनकी पूजा की और पुत्रप्राप्तिहेतु विनययुक्त वचन बोले।] वसिष्ठजीसे राजाने कहा कि आप मेरे परम स्नेही हैं, मित्र हैं तथा गुरु हैं, अतः आप यज्ञका भार लें और मेरा दुःख दूर करें। '**भवान् स्निग्धः सुहृन्मह्यं गुरुश्च परमो महान्।**......' (वाल्मी० १। १३। ४)

टिप्पणी—४ *'निज दुख सुख सब गुरहि सुनाएउ।......'* इति। (क) इस समय पुत्र न होनेका दुःख बहुत व्याप रहा है; इसीसे प्रथम दुःख सुनाये, पीछे सुख। सुख यह सुनाया कि धन-धान्य, राज्य-प्रजा आदि सभी सुख आपहीकी कृपासे हुए और ऐसे हुए कि इन्द्रादि भी तरसते हैं, उनको भी वैसा ऐश्वर्य प्राप्त नहीं है। 'दुख सुनाया' अर्थात् पुत्र न होनेकी ग्लानि सब कहकर अन्तमें यह कहा कि यह दुःख आप ही दूर करें, यथा—*'दलि दुख सजै सकल कल्याना। अस असीस राउरि जगु जाना॥'* [दुःख-सुख साथ बोलनेका मुहावरा भी है। पुनः, राजाको इस समय पुत्रहीन होनेसे सब सुख भी दुःखरूप हो रहे हैं, यह सारा राज्य, कोश, ऐश्वर्य व्यर्थ है जब इसका भोगनेवाला अपना कोई पुत्र नहीं है, इत्यादि। इसीसे दुःख शब्द प्रथम कहा गया।] दुःख प्रकट कहा है कि पितर हमारे हाथका जल नहीं लेते, कहते हैं कि 'तुम्हारा अर्पित जल हमको तप्त लगता है, तुम कुलमें ऐसे अभागे हुए कि कुलहीको निर्मूल कर डाला, तुम निपुत्र हुए, आगे हमें जल कौन देगा?' ऐसी करुणामयी वाणी कहकर पितृगण हमारी निन्दा कर रहे हैं जिससे हमको बड़ा दुःख है। [वाल्मीकीयमें उन्होंने यह कहा है कि मैं पुत्रके लिये बहुत दुःखी हूँ, मुझे सुख नहीं है, मैं पुत्रके लिये अश्वमेधयज्ञ करना चाहता हूँ। यथा—'**धर्मार्थसहितं युक्तं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत्। मम तातप्यमानस्य पुत्रार्थं नास्ति वै सुखम्॥**......' (वाल्मी० १। १२। ८] (ख) *'कहि बसिष्ठ बहु बिधि समुझाएउ'* इति। *'बिनय बिसाला'* के सम्बन्धसे *'बहुबिधि समुझाएउ'* कहा। समझाया कि हम उपाय करते हैं, धीरज धरो, इत्यादि, जैसा आगे कहते हैं।

नोट—१ बाबा हरीदासजी *'बहुबिधि'* समझाना यह कहते हैं—'एक यह कि वेद-पुराणमें जो यह लिखा है और नारद-सनकादिक इत्यादि ऋषि कहते हैं कि दशरथके चार भक्तभयहारी पुत्र होंगे सो वृथा नहीं हो सकता। दूसरी विधि यह कि भूतकालमें कश्यप-अदिति, दशरथ-कौसल्या हुए और वर्तमानमें आप राजा मनुके अवतार हुए और कौसल्या शतरूपा हैं सो आपके यहाँ भगवान्ने अंशोंसहित अवतार लेनेको कहा है। तीसरी विधि यह कि युगके अन्तमें चौथे चरणमें अवतार होता है, अब चौथा चरण है; अतः अब देर नहीं है। चौथी विधि कि रावणने भारी तप करके वर पाया है कि दशरथके वीर्यसे पुत्र न हो इससे परम विरक्त शृङ्गी ऋषिद्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराइये, उसके पिण्डद्वारा पुत्र होंगे।

नोट—२ पंजाबीजीके मतानुसार समझाया कि 'जिस पापसे अबतक संतान न हुई वह अब निवृत्त हो गया।'

नोट—३ विजयदोहावलीमें कहा है कि *'पूरब ही बर जो मिलेउ रहेउ अंधरिषि साप। तुलसी गुरुहि सुनाइयो देवनको संताप॥'* इसके अनुसार समझाना यह है कि जो तुमको अन्धे ऋषिका शाप था वह तुम वरदान समझो, पुत्रके शोकमें मरण होनेका शाप है; यथा—'**पुत्रशोकेन मरणं प्राप्स्यसे**

वचनान्मम।'(अ० रा० २। ७। ४५) पुनश्च यथा—'**पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम साम्प्रतम्। एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन् कालं करिष्यसि॥**' (वाल्मी० २। ६४। ५४)—अर्थात् पुत्रके मरणसे जैसा मुझे इस समय शोक हो रहा है वैसा ही पुत्रका शोक तुमको होगा। तो पुत्र बिना हुए कब शाप सच्चा हो सकता है और शाप व्यर्थ होनेका नहीं; अतएव पुत्र अवश्य ही होगा, चिन्ता न करो। इत्यादि। [यह शाप श्रवणमुनिके पिता यज्ञदत्तने दिया था ऐसा व्रजरत्नभट्टाचार्यने हनुमन्नाटकमें '**श्रवणमुनिपितुः**।'(३, १) की टीकामें लिखा है]

धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत भयहारी॥४॥
शृङ्गी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्र काम सुभ जग्य करावा॥५॥

शब्दार्थ—पुत्रकामयज्ञ=पुत्रकी कामनासे जो यज्ञ हो; पुत्रकामेष्टियज्ञ; पुत्रेष्टियज्ञ। **पुत्र काम**=पुत्रकी कामनाका संकल्प करके।

अर्थ—धैर्य धरो, तुम्हारे चार पुत्र होंगे जो त्रैलोक्यमें प्रसिद्ध, भक्तोंके भय हरनेवाले होंगे॥ ४॥ (फिर) वसिष्ठजीने शृङ्गी ऋषिको बुलवाया और पुत्रकी शुभकामनासे शुभ पुत्रकामेष्टियज्ञ कराया॥ ५॥

नोट—'*धरहु धीर*' अर्थात् पुत्रकी कामनासे व्यग्र न हो, मनको स्थिर रखो। '*होइहहिं सुत चारी*' अर्थात् तुम्हें एकहीके लाले पड़े हैं और होंगे तुम्हारे चार।

टिप्पणी—१ '*धरहु धीर होइहहिं सुत चारी।*''' इति। (क) '*सुत चारी*' का भाव कि आकाशवाणीने चार पुत्रोंका होना कहा है।, यथा—'*तिन्हके गृह अवतरिहौं जाई। रघुकुलतिलक सो चारिउ भाई॥*' (१८७। ५) वसिष्ठजी ब्रह्माजीके पुत्र हैं, ब्रह्मर्षि हैं, मुनि हैं, उनकी यह बात जानी हुई है, इसीसे उन्होंने राजासे ऐसा कहा कि त्रिभुवनविदित चार सुत होंगे। ☞ राजाको यह सब बात समझा दी, इसीसे श्रीरामजन्मके समय राजाको ऐश्वर्यका ज्ञान बना रहा, यथा—'*जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरें गृह आवा प्रभु सोई॥*' (१९३। ५) (ख) '*त्रिभुवन बिदित*' इति। भक्तोंका भय हरण करनेसे अर्थात् राक्षसोंका वध करनेसे पातालमें (दैत्य-राक्षसों इत्यादिको) विदित हुए, देवताओंकी रक्षा होनेसे, बन्दीखानेसे लोकपालोंकी रिहाई होनेसे, स्वर्गलोकोंमें विदित हुए और साधु, ब्राह्मण आदिकी रक्षा होनेसे मर्त्यलोकमें विदित हुए। (ग) '*भगत भयहारी*' कहा क्योंकि आकाशवाणी है कि '*निर्भय होहु देव समुदाई॥*' (१८७। ७) और भगवान्का यह विरद है, यथा—'**अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम।**' [पुनः, धनुर्भङ्गसे भी तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुए; क्योंकि धनुषयज्ञमें तीनों लोकोंके निवासी आये थे, यथा—'*देव दनुज धरि मनुजसरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा॥*' '*महि पाताल नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा॥*' पर यहाँ भक्तभयहरण मुख्य है, आकाशवाणीमें '*निर्भय होहु*' यह घोषणा है; अतः उसीको कहा। जनक महाराजकी चिन्ता मिटी, वे प्रधान द्वादश भक्तोंमेंसे हैं। पुनः, '*भगत भयहारी*' कहकर इनके (दशरथजीके) यहाँ भगवान्का आविर्भाव कहा। यहाँतक एक प्रकारसे समझाना हुआ, दूसरी 'विधि' आगे कहते हैं कि हम तुरंत शृङ्गी ऋषिको बुलाते हैं इत्यादि। बैजनाथजी लिखते हैं कि '*सुत चारी त्रिभुवन बिदित*''' से मनुशरीरमें जो वरदान प्रभुने दिया था उसका उनको स्मरण कराया—'*अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहौं चरित भगत सुखदाता॥*' भाव यह कि तीन अंशोंके सहित अंशी प्रभु अवतार लेकर चरित करेंगे जिनसे त्रैलोक्यमें प्रसिद्ध होंगे, भक्तोंको सुख होगा, अतएव 'भक्तभयहारी' कहा। '*त्रिभुवन बिदित*' से यह भी जनाया कि चारों पुत्र महान् पराक्रमी, तेजस्वी, प्रतापी, अतुलित बली, शीलवान्, दानी, सत्यप्रतिज्ञ आदि गुणविशिष्ट होंगे। उनसे वंशकी प्रतिष्ठा होगी, इत्यादि।—'**पुत्राश्चास्य भविष्यन्ति चत्वारोऽमितविक्रमाः। वंशप्रतिष्ठानकराः सर्वभूतेषु विश्रुताः॥**' (वाल्मी० १। ११। १०)]

टिप्पणी—२ '*शृङ्गी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा*''' ।' इति। (क) वसिष्ठजीने बुलाया, इसमें भाव यह है कि शृङ्गीजी राजाके बुलानेसे न आते, वसिष्ठजीके संकोचसे वे आये। प्रथम '*बहु बिधि समुझायउ*' लिखकर फिर शृङ्गीजीका बुलाना कहकर जनाया कि वसिष्ठजीने पुत्र होनेका उपाय भी बताया (प्रथम पुत्र होना कहा, फिर उपाय बताया) और शृङ्गीजी कैसे आवेंगे यह भी बताया। उस उपायसे बुलाया।

नोट—१ ऋष्यशृङ्ग कैसे लाये गये इसमें कल्पभेदसे कथामें भेद है। वाल्मी० १। ११ में सुमन्त्रजीने सनत्कुमारजीकी कही हुई कथा कहकर राजासे स्वयं जाकर लानेको कहा और राजाने श्रीवसिष्ठजीकी अनुमति लेकर ऐसा ही किया। यथा—'**सान्तःपुरः सहामात्यः प्रययौ यत्र स द्विजः।**' अर्थात् अपनी रानियों और मन्त्रियोंको साथ लिये वहाँ गये जहाँ ऋषि थे। बैजनाथजी वीरसिंह बन्धुवर्गको भेजकर बुलाना लिखते हैं। यहाँ गोस्वामीजीने वसिष्ठजीका बुलवाना लिखकर सबके मतकी रक्षा कर दी। उन्होंने जिसे उचित समझा उसे भेजा। अ० रा० में वसिष्ठजीने राजासे स्पष्ट कहा है कि '**शान्ताभर्तारमानीय ऋष्यशृङ्गं तपोधनम्। अस्माभिः सहितः पुत्रकामेष्टिं शीघ्रमाचर॥**' (१। ३। ५) अर्थात् शान्ताके पति तपोधन ऋष्यशृङ्गको लाकर हम लोगोंको साथ लेकर पुत्रेष्टियज्ञका अनुष्ठान करो।

अङ्गनरेश रोमपादजी राजा दशरथके मित्र थे, यथा—'**अङ्गराजेन सख्यं च तस्य राज्ञो भविष्यति।**' (वाल्मी० १। ११। ३) इससे राजा वहाँ स्वयं गये। रोमपादजीने मित्रभावसे उनका आदर-सत्कार किया और ऋष्यशृङ्गसे उन्होंने दशरथजीके साथ अपनी मित्रता होनेका वृत्तान्त कहा। कुछ दिन ठहरनेके पश्चात् दशरथजीने अपना अभीष्ट कहा। अङ्गनरेशने ऋषिसे शान्तासहित उनके साथ जानेको कहा। वे राजी हो गये और उनके साथ श्रीअयोध्याजी आये। (सर्ग ११) कोई कहते हैं कि रोमपादका नाम दशरथ भी था, इस भेदको न जानकर लोग उन्हें अवधनरेशकी कन्या कह देते हैं। परंतु स्कन्दपुराण नागरखण्डमें लिखा है कि मझली रानी श्रीसुमित्राजीसे एक सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न हुई जिसे श्रीदशरथजी महाराजने पुत्रहीन राजा लोमपादको दत्तक पुत्रीके रूपमें दे दिया।

नोट—२ ☞ कथाका संशोधित रूप फिर देखिये। वाल्मीकीयमें दो यज्ञोंका होना लिखा है, परंतु पुत्रेष्टियज्ञ ही संगत है (दोहा १८८ भी देखिये)। (लमगोड़ाजी)

वाल्मीकीयके श्रीदशरथजी महाराजने अश्वमेधयज्ञका निश्चय किया और पुरोहितोंसे उसीके करानेके लिये कहा भी। प्रथम अश्वमेधयज्ञ हुआ फिर ज्योतिष्टोम, अग्निष्टोम, अतिरात्र, अभिजित्, विश्वजित् आदि नामके यज्ञ कराये गये। तत्पश्चात् राजाने ऋष्यशृङ्गसे पुत्रेष्टियज्ञ करानेको कहा, यथा—'**ततोऽब्रवीदृष्यशृङ्गं राजा दशरथस्तदा॥ ५८॥ कुलस्य वर्धनं तत्तु कर्तुमर्हसि सुव्रत॥**' (वाल्मी० १। १४) मानसकी कथा अ० रा० से मिलती है। उसमें भी केवल पुत्रेष्टियज्ञ ही कराया गया है।

नोट—३ '*सुभ जज्ञ करावा*' इति। ऋष्यशृङ्गसे पुत्रेष्टियज्ञ कराया गया; क्योंकि ये उस यज्ञमें परम प्रवीण हैं, इसीसे वसिष्ठादि प्रमुख ब्राह्मणोंने उन्हींको इस यज्ञमें अपना नेता बनाया; यथा—'**ततो वसिष्ठप्रमुखाः सर्व एव द्विजोत्तमाः। ऋष्यशृङ्गं पुरस्कृत्य यज्ञकर्मारभंस्तदा।**' (वाल्मी० १। १३। ४०)—जैसे बड़े-बड़े तत्कालीन ऋषियोंके होते हुए भी श्रीशुकदेवजीने ही राजा परीक्षित्को श्रीमद्भागवत सुनाया। अथवा, यही भगवद्विधान था। सनत्कुमारजीने हजारों वर्ष पहले ही यह विधान ऋषियोंसे कह रखा था। वसिष्ठजी जानते थे और सुमन्त्रजी भी कि यह यज्ञ उन्हींके द्वारा होना है, अतः उनसे यज्ञ कराया गया।

नोट—४ शृङ्गी ऋषि (ऋष्यशृङ्ग) इति। वाल्मीकीयमें श्रीसुमन्त्रजीने राजा दशरथजीसे कहा है कि श्रीसनत्कुमारजीने आपके संतानके सम्बन्धमें ऋषियोंसे जो कहा था वह मैं आपको सुनाता हूँ। उसमें उन्होंने ऋष्यशृङ्गकी पूरी कथा कही है। ऋष्यशृङ्ग कश्यपपुत्र* विभाण्डक ऋषिके पुत्र हैं। ये सदा वनमें अपने पिताके पास रहनेके कारण किसी स्त्री वा पुरुषको नहीं जानते थे। इस तरह ब्रह्मचर्यसे रहते अग्नि और पिताकी सेवा करते बहुत काल बीत गया। उसी समय अङ्गदेशमें रोमपाद नामक प्रतापी राजा हुए। उनके राज्यमें बड़ा भयानक दुर्भिक्ष पड़ा, जिससे प्रजा भयभीत हो गयी। राजाने सुविज्ञ वेदज्ञ ब्राह्मणोंसे अपने कर्मोंका (जिनके कारण वर्षा नहीं हुई) प्रायश्चित्त पूछा। उन ब्राह्मणोंने राजाको यह उपाय बताया कि आप जैसे बने वैसे विभाण्डक मुनिके पुत्रको यहाँ ले आइये और उनका सत्कार करके यथाविधि उनके साथ अपनी कन्या शान्ताका विवाह कर दीजिये। राजा चिन्तित हुए कि कैसे ऋषिको यहाँ लावें। बहुत

* द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदीका पाठ 'कश्यपस्य तु पुत्रोऽस्ति विभाण्डकः' है और चन्द्रशेखर शास्त्रीका पाठ 'काश्यपस्य' है।

सोच-विचारकर उन्होंने अपने पुरोहित और मन्त्रियोंसे कहा कि आपलोग जाकर ले आवें, परंतु उन लोगोंने निवेदन किया कि हमलोग वहाँ जानेमें विभाण्डक ऋषिके शापसे डरते हैं, हमलोग वहाँ स्वयं न जाकर किसी अन्य उपायसे ऋष्यशृङ्गको यहाँ ले आयेंगे जिससे हमको दोष न लगे। (सर्ग ९) मन्त्री और पुरोहितने निर्विघ्न कृतकार्य होनेका यह उपाय बताया कि रूपवती वेश्याएँ सत्कारपूर्वक भेजी जायँ, वे तरह-तरहके प्रलोभन दिखाकर ले आवेंगी। राजाने वैसा ही उपाय करनेको कहा। वेश्याएँ भेजी गयीं। आश्रमके निकट पहुँचकर वे धीर ऋषिपुत्रके दर्शनका प्रयत्न करने लगीं। ऋष्यशृङ्गने आजतक स्त्री, पुरुष, नगर वा राज्यके अन्य जीवोंको कभी नहीं देखा था। दैवयोगसे वे एक दिन उस जगह पहुँचे जहाँ वेश्याएँ टिकी थीं। तब मधुर स्वरसे गाती हुई वे सब उनके पास जाकर बोलीं कि आप कौन हैं और किसलिये इस निर्जन वनमें अकेले फिरते हैं। उन्होंने अपना पूरा परिचय दिया और उनको अपने आश्रमपर लिवा ले जाकर अर्घ्य-पाद्य, फल-मूलसे उनका सत्कार किया। वेश्याओंने उनको तरह-तरहकी मिठाइयाँ यह कहकर खिलायीं कि ये हमारे यहाँके फल हैं इनको चखिये। फिर उनका आलिङ्गन कर वे विभाण्डकजीके भयसे झूठ-मूठ व्रतका बहाना कर वहाँसे चली आयीं। वेश्याओंके लौट जानेसे ऋष्यशृङ्गजी दुःखके कारण उदास हो गये। दूसरे दिन वे फिर वहीं पहुँचे जहाँ पहले दिन मनको मोहनेवाली उन वेश्याओंसे भेंट हुई थी। इनको देखकर वेश्याएँ प्रसन्न हुईं और इनसे बोलीं कि आइये, आप हमारा भी आश्रम देखिये, यहाँकी अपेक्षा वहाँ इससे भी उत्तम फल मिलेंगे और अधिक उत्तम सत्कार होगा। ये वचन सुनकर वे साथ चलनेको राजी हो गये और वेश्याएँ उनको अपने साथ ले आयीं। उन महात्माके राज्यमें आते ही सहसा राज्यमें जलकी पुष्कल वर्षा हो गयी, जिससे प्रजा सुखी हुई। वर्षा होनेसे राजा जान गये कि मुनि आ गये। राजाने उनके पास जाकर दण्ड-प्रणाम कर उनका अर्घ्य-पाद्यादिद्वारा यथाविधि पूजन किया और उनसे वर माँगा जिससे वे एवं उनके पिता (राजापर छलसे लाये जानेके कारण) कोप न करें। फिर राजा उन्हें अपने रनवासमें ले गये और शान्ताका विवाह उनके साथ कर दिया। (सर्ग १०) ऋष्यशृङ्ग वहीं शान्ताके साथ रहने लगे।

ऋष्यशृङ्गके जन्मकी कथा इस प्रकार है कि एक बार विभाण्डक मुनि एक कुण्डमें समाधि लगाये बैठे थे, उसी समय उर्वशी अप्सरा उधर आ पड़ी। उसे देखकर उनका वीर्य स्खलित हो गया, जिसे जलके साथ एक मृगी पी गयी। उस मृगीसे इनका जन्म हुआ। माताके समान इनके सिरपर भी सींग निकल आनेकी सम्भावनासे मुनिने इनका नाम ऋष्यशृङ्ग रखा।

भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे॥ ६॥
जो बसिष्ठ कछु हृदय बिचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥ ७॥

शब्दार्थ—**आहुति**=होमद्रव्यकी वह सामग्री जो एक बार यज्ञकुण्डमें डाली जाय।=हवनमें डालनेकी सामग्री। आहुति देना=मन्त्र पढ़कर देवताके लिये होमकी सामग्री अग्निकुण्डमें डालना। **चरू** (सं० चरु)=हव्यान्न, हविष्यान्न पायस, क्षीरान्न।—**'चरु भांडे च हव्यान्ने'** इति विश्वप्रकाशः। (खर्रा)

अर्थ—मुनिने श्रद्धा और अत्यन्त अनुरागपूर्वक आहुतियाँ दीं। अग्निदेव हाथमें पायस लिये हुए प्रकट हुए ॥ ६॥ (और बोले) वसिष्ठजीने जो कुछ हृदयमें विचारा था, तुम्हारा वह सब कार्य सिद्ध हो गया॥ ७॥

टिप्पणी—१ (क) ***'भगति सहित'*** का भाव कि भगवान्के अवतारका हेतु भक्ति है, यथा—***'भगतहेतु भगवान प्रभु लीन्ह मनुज अवतार', 'सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या की गोद।'*** भक्तिका अर्थ श्रद्धा, विश्वास और अति अनुराग है। प्रेमसे भगवान् प्रकट होते हैं। प्रेमसे आहुति दी, अतः अग्निभगवान् प्रकट हो गये। आहुतियाँ अथर्ववेदके मन्त्रोंसे दी गयीं। यथा—**'अथर्वशिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः।'** (वाल्मी० १। १५। २) ऋष्यशृङ्गके ये वचन हैं और वसिष्ठजी भी अथर्वणी हैं। (ख) ***'चरू कर लीन्हे'*** से पाया गया कि अग्निदेव नराकार प्रकट हुए। पुत्रकी कामनासे यज्ञ किया गया, इसीसे हाथमें (रानियोंके खिलानेके लिये) खीर लेकर प्रकट हुए। [***'कर लीन्हे'***—वाल्मीकिजी लिखते हैं कि वह देवता दोनों हाथोंसे स्वर्णपात्रको पकड़े हुए था। यथा—**'दिव्यपायससम्पूर्णां पात्रीं पत्नीमिव प्रियाम्। प्रगृह्य विपुलां दोर्भ्यां स्वयं मायामयीमिव॥'** (१। १६। १५)]

नोट—१ *'प्रगटे अगिनि……'* इति। वाल्मीकीय बालकाण्ड सर्ग १६ में यज्ञाग्निसे जो पुरुष निकला उसका वर्णन यों है—'बड़ा तेजस्वी, महाबली, पराक्रमी, लाल वस्त्र पहिने और लाल मुखवाला था। सिंहके बालके समान दाढ़ी और सिरके केश थे। पर्वत-सदृश विशाल, सूर्यसम तेजवान्, जलती हुई अग्निके समान असह्य प्रकाशवाला, हाथमें उत्तम स्वर्णपात्रमें दिव्य पायस लिये हुए।' गोस्वामीजी यहाँ साक्षात् अग्निदेवका प्रकट होना कहते हैं। करुणासिंधुजी और बाबा हरिहरप्रसादजीका मत है कि 'परब्रह्मने अग्निद्वारा पायस भेजा, मानो यह राजा दशरथके यहाँ अपना प्रस्थान भेजा'। और वाल्मीकीयमें अग्निदेवने कहा है कि 'मैं प्रजापति ब्रह्माजीके यहाँसे आया हूँ। यह पायस देवताओंका बनाया हुआ है। इससे पुत्र होगा।' (प्र० सं०)। ☞ अ० रा० १। ३ में इस चौपाईसे मिलता हुआ श्लोक यह है—'**श्रद्धया हूयमानेऽग्नौ तप्तजम्बूनदप्रभः। पायसं स्वर्णपात्रस्थं गृहीत्वोवाच हव्यवाद्॥**'(७) अर्थात् यज्ञानुष्ठानके समय अग्निमें श्रद्धापूर्वक आहुति देनेपर तप्तस्वर्णके समान दीप्तिमान् हव्यवाहन भगवान् अग्नि एक स्वर्णपात्रमें पायस लेकर प्रकट हुए और बोले। ऐसा ही मानसमें है।

नोट—२ यह यज्ञ श्रीसरयूजीके उत्तरतटपर हुआ था; यथा—'**सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम्।**' (वाल्मी० १। १२। ४) मनोरमा नदीके दक्षिणतटपर यह यज्ञशाला पड़ता है और श्रीसरयूजीके उस पार उत्तरमें है।

टिप्पणी—२ (क) *'जो बसिष्ठ कछु……'* का भाव कि वसिष्ठजीके हृदयका विचार राजा जानते हैं; क्योंकि वे राजासे सब कह चुके हैं; यथा—*'धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी॥'* इसीसे प्रकट न कहा। (ख) *'सकल काजु……'* इति। कार्य तो एक ही है—पुत्रकी प्राप्ति, यथा—*'पुत्र काम सुभ जग्य करावा'*; तब *'सकल काज'* कैसे कहा? उत्तर यह है कि 'सकल' का अर्थ यहाँ बहुत नहीं है किन्तु 'सम्पूर्ण' है, 'काज' एक ही है। यह सम्पूर्ण कार्य तुम्हारा सिद्ध हुआ अर्थात् उस कार्यमें न्यूनता न होगी, चार पुत्र होंगे। यदि 'सकल' का अर्थ 'बहुत' होता तो *'सकल काज भे सिद्ध तुम्हारे'* पाठ होता। [बाबा हरीदासजीका मत है कि काज तो एक रामजन्म है; सकलसे तात्पर्य यह कि 'जिस उत्तम पूजासे वसिष्ठजीने अनेक विधि गुणनिधान, ऐश्वर्यवान् पुत्र विचारे थे वह सकल काज सिद्ध हुआ।' बैजनाथजीका मत है कि 'अग्निदेवने वसिष्ठजीको सम्बोधन किया, उन्हींसे कहा कि आपने जो हृदयमें विचारा है वह सब कार्य सिद्ध हुआ और वसिष्ठहीको पायस दिया।' पर यह अर्थ संगत नहीं जान पड़ता। वाल्मीकीय आदिमें भी राजाहीको सम्बोधन करना लिखा है और यहाँ भी सीधा अर्थ यही होता है।]

नोट—३ यहाँ लोग शंका करते हैं कि 'यह यज्ञ सालभर हुआ। रावणके रहते हुए वह कैसे पूर्ण हुआ?' इसका समाधान यह है कि एक तो भगवान्‌की लीला अपरम्पार है। उनकी माया बड़ी प्रबल है। शिव-विरंचि आदि भी मोहित हो जाते हैं तब रावण कौन चीज है? *'राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥'* देखिये श्रीकृष्णजन्मपर सब पहरेदार सो गये, बन्दीगृहके द्वार खुल गये, वसुदेवजी भगवान्‌को नन्दजीके यहाँ पहुँचा आये, इत्यादि-इत्यादि; और किसीको भी कुछ मर्म न मालूम हुआ। महाभारत-युद्धके समय द्रोण-भीष्मादिके सामने अर्जुनने रथसे उतरकर बाणसे जलकी धारा निकाल घोड़ोंको जल पिलाया, इत्यादि। द्रोणादि सब मायासे मोहित खड़े देखते रह गये। अर्जुनको उस समय न मार लिया, इत्यादि। दूसरे यह यज्ञ श्रीवसिष्ठजी और ऋष्यशृङ्ग आदि महर्षियोंसे सुरक्षित था। ब्रह्मा और शिवजी भी यज्ञमें आये थे और वसिष्ठजी ब्रह्माके पुत्र ही हैं। तब यहाँ रावण विघ्न कैसे कर सकता था? तीसरे, रावणको सूर्यवंशके राजाओंकी बराबर परीक्षा मिलती गयी थी। रघुमहाराजसे ब्रह्माजीने उसकी मित्रता करा दी थी। राजा दिलीपने उसके देखते-देखते यज्ञमें बैठे हुए ही आचमनका जल पीछे फेंककर वनमें व्याघ्रसे गौकी रक्षा की, इत्यादि; जिसे जानकर वह भयभीत हो गया था। रावणने ब्रह्माजीसे यह जानकर कि कौसल्याके पुत्रद्वारा उसकी मृत्यु होगी, उसने कौसल्याजीका हरण कर उन्हें एक मञ्जूषामें बन्दकर राघव मत्स्यको सौंप दिया था कि न विवाह होगा न पुत्र ही। दैवयोगसे दशरथ महाराज नावके टूटनेसे पतवारके सहारे बहते हुए समुद्रमें उसी जगह पहुँचे जहाँ वह मञ्जूषा

थी। उसमें सुन्दर स्त्री देख वे भी उसीमें सो रहे। इधर रावण ब्रह्माजीसे डींग मारने लगा तब सनकादिने उसे ललकारा। ललकारे जानेपर वह उस मञ्जूषाको ले आया और खोला तो उसमें राजा दशरथको भी देख उसने उनको मार डालनेका विचार किया। ब्रह्माजीने डाँट दिया कि प्रह्लाद और हिरण्यकशिपुकी कथाको याद कर। यदि अभी मृत्यु चाहता है तो हाथ उठा; नहीं तो जाकर अभी कुछ दिन और सुख भोग ले; इसी डरसे वह विघ्न न कर सका।

प्र० स्वामीजी लिखते हैं कि मानस और वाल्मीकीयमें कहीं ऐसा उल्लेख नहीं है कि पुत्रेष्टि-यज्ञ एक वर्षतक होता रहा। पुत्रकामेष्टि तीन प्रकारकी है—एक तो श्रौताग्निमान् यजमानकी, दूसरी गृह्याग्निमान् यजमानकी और तीसरी लौकिकाग्निसे निरग्नि यजमानके लिये। श्रीदशरथजी श्रौताग्निमान् यजमान थे। श्रौताग्निपर जो पुत्र-कामयज्ञ किया जाता है, उसका यज्ञकार्य केवल दो दिनका है। इसके पूर्व ऋत्विज्, यजमान और यजमान-पत्नीको १२ दिन पयोव्रत करना पड़ता है, गृह्याग्निसाध्य पुत्रकामेष्टिके पूर्व यजमान और उसकी पत्नीको १२ दिन पयोव्रत करना पड़ता है, किन्तु यज्ञकार्य केवल एक दिनका है। (श्रौतपदार्थ निर्वचन ग्रन्थ) लौकिकाग्निसाध्य इष्टि अपत्यहीन यजमानके लिये नहीं है। यह उसके ही लिये है, जिसके कन्या ही होती हैं, पुत्र नहीं होता। यह एक दिनमें होता है। (धर्मसिंधु परिच्छेद ३)—अतएव ऐसी शंकाके लिये स्थान ही नहीं है।

यदि एक वर्षतक होना मान भी लें तो शंकाका समाधान शंकाके आधारवाले छन्द—'***जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनै दससीसा। आपुन उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीसा।***' (१८३ छंद) के रेखांकित शब्दोंसे ही हो जाता है। दशशीशके श्रवणतक यह बात नहीं जा पायी।

यह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥८॥

शब्दार्थ—**हबि**=पायस। हविष्यान्न।

अर्थ—हे नृप! जाकर इस पायसके यथायोग्य भाग बनाकर जिसको जैसा योग्य अर्थात् उचित हो उसको वैसा बाँट दीजिये॥ ८॥

टिप्पणी—१ (क) '***बाँटि देहु नृप जाई***' से पाया जाता है कि रानियाँ यज्ञशालामें नहीं आयी थीं, आगे लिखते भी हैं कि '***तबहिं राय प्रिय नारि बोलाईं। कौसल्यादि तहाँ चलि आईं॥***' यज्ञशालामें न जानेका कारण यह है कि यज्ञ शृङ्गी ऋषिजीने किया, यथा—'***शृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥ भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे।***', यदि राजा यज्ञ करते तो रानियाँ यज्ञमें अवश्य आतीं, राजाके समीप ही होतीं, उनका बुलाया जाना आगे न लिखा जाता। [वाल्मीकीयमें राजाका महलमें जाकर रानियोंको हविष्यान्न देना कहा है। यथा—'**सोऽन्तःपुरं प्रविश्यैव कौसल्यामिदमब्रवीत्। पायसं प्रतिगृह्णीष्व पुत्रीयं त्विदमात्मनः॥**' (१। १६। २६)। ......' अर्थात् रनवासमें जाकर राजा महारानी कौसल्याजीसे बोले—'यह पायस लो, इससे तुमको पुत्रकी प्राप्ति होगी।—अतः '***जाई***' कहा।] (ख) ***जथा जोग जेहि***=जिसे जैसा उचित हो। ☞ यहाँ अग्निदेवने यह नहीं बताया कि भाग कैसे बनाये जायँ, कारण कि वसिष्ठजी राजासे यह सब कह चुके हैं और राजा जानते हैं कि चार भाग होंगे, यथा—'***धरहु धीर होइहहिं सुत चारी।***' पूर्व जो कहा है कि '***कहि बसिष्ठ बहु बिधि समुझाएउ***' इसके '***बहु बिधि***' समझानेमें यह समझाना भी कह दिया गया कि हम शृङ्गीऋषिको बुलाकर यज्ञ करवाते हैं, अग्निदेव खीर लेकर प्रकट होंगे, आठ आनेमें (अर्थात् आधेमें) ज्येष्ठ पुत्र होगा, चार आनेमें (चतुर्थमें) मध्य पुत्र होगा और शेष चार आनेमें दो छोटे पुत्र होंगे। इसीसे राजाने हविष्यान्न पानेपर भाग करनेकी रीति गुरुसे न पूछी, अपने मनसे भाग कर दिये। अग्निके '***जो बसिष्ठ कछु हृदय बिचारा***' इस कथनसे हविके विभागकी संख्या हो गयी। वसिष्ठजीका विचार ऊपर कह ही आये कि '***धरहु......***'।—(चरुके भागके सम्बन्धमें वसिष्ठजीका कथन वाल्मीकीय और अध्यात्ममें नहीं है)।

दो०—तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ।
परमानंद मगन नृप हरष न हृदय समाइ॥ १८९॥

शब्दार्थ—**अदृस्य** (अदृश्य)=अन्तर्धान। आँखोंसे ओझल।

अर्थ—तब अग्निदेव सब सभाको समझाकर अन्तर्धान हो गये। राजा परमानन्दमें मग्न हो गये, हृदयमें हर्ष (आनन्द) नहीं समाता॥ १८९॥

टिप्पणी—१ (क) पूर्व अग्निका प्रकट होना कहा—'*प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे*', इसीसे उनका अन्तर्धान होना भी कहा। (ख) '*सकल सभहि समुझाइ*' इति। सम्पूर्ण सभाको समझानेका भाव कि वसिष्ठजीने राजाको एकान्तमें समझाया था,— '*धरहु धीर—*' इत्यादि, इसीसे राजाको सम्बोधन करते हुए अग्निदेवने इतना ही कहा कि '*जो बसिष्ठ कछु हृदय बिचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥*' स्पष्ट न कहा क्योंकि राजा वसिष्ठजीके बतलानेसे जानते थे। यह बात सभावाले नहीं जानते थे, अतएव उनको समझाकर कहा कि त्रिभुवनमें विदित भक्तभयहारी ऐसे चार पुत्र राजाके होंगे। (ग) सभाको समझानेका भाव कि सभावालोंने यज्ञ देखा, साक्षात् अग्निभगवान्‌के दर्शन किये, इसीसे अग्निदेवने विचारा कि हमारा दर्शन अमोघ है, दर्शनका फल इनको भी प्राप्त होना चाहिये, भगवान्‌के आविर्भावका समाचार मिलनेसे ये भी सुखी होंगे, अतएव इनको समझाकर कहा जिससे सबको सुख हुआ।

नोट— राजाको गुरुजी सब बता चुके थे इससे वे तो अग्निवाक्य समझ गये, परंतु सभावाले कुछ न समझ पाये, इससे चकित हो देख रहे थे। अतएव अग्निदेवने वही बात उनको समझाकर कह दी। बाबा हरिदासजीका मत है कि अग्निदेव राजासे कहकर अदृश्य हो गये, तब राजाने उनके वचनोंका आशय सभाको समझाया और परमानन्दमें मग्न हो गये। वे लिखते हैं कि अग्निदेवने इससे समझाना न चाहा कि यदि ये जानेंगे कि अग्निदेवकी पूजासे रामजी पुत्र हो प्रकट होते हैं तो ये सब रामहेतु ही अग्निपूजा करने लग जायँगे।

टिप्पणी—२ (क) '*अदृस्य भए*' का भाव कि वह पुरुष अग्निसे ही निकलकर कहीं गया नहीं, क्योंकि वह तो स्वयं अग्नि ही है, अग्निमें रहा, लोगोंके आँखोंसे अदृश्य हो गया। यथा—'**संवर्तयित्वा तत्कर्म तत्रैवान्तरधीयत।**' (वाल्मी० १। १६। २४) '**इत्युक्त्वा पायसं दत्त्वा राज्ञे सोऽन्तर्दधेऽनलः।**' (अ० रा० १। ३। ९) (ख) '*परमानंद मगन नृप*' से जनाया कि सभाके लोग समाचार पाकर आनन्दमें मग्न हो गये और राजा परमानन्दमें मग्न हो गये। अर्थात् आनन्द तो सभीको हुआ, पर राजाको सबसे अधिक आनन्द (परमानन्द) हुआ, क्योंकि भगवान्‌का अवतार राजाके यहाँ ही होगा। दूसरे गुरु और अग्निदेव दोनोंके वचन एक-से निकले, यह भी हर्षका कारण है।

श्रीलमगोड़ाजी—१ देवताओंका व्यक्तित्व तो हक्स्ले Huxley और सर ओलिवरलाज Sir Oliver Lodge जैसे वैज्ञानिकोंने भी सम्भव माना है। लाज महोदय तो उनका हमारा सहायक होना भी मानते हैं। स्वामी दर्शनानन्दजीने अपने वेदान्तभाष्यमें यह माना है कि व्यासजी देवताओंका व्यक्तित्व मानते हैं तो फिर देवताओंका मानना वेदविरुद्ध नहीं हो सकता, यह और बात है कि कोई ऋषि या मुनि न भी मानते रहे हों। श्रीजयदेवजीकी सामवेदसंहिताकी भूमिकामें यास्कमुनिका देवसम्बन्धी सिद्धान्त लिखते समय जहाँ यह लिखा है कि एक तो महान् आत्माके पृथक् नाम ही कर्मानुसार कहे गये हैं, वहाँ यह भी लिखा है कि जहाँ पृथक्-पृथक् होनेसे देवता पृथक्-पृथक् हैं वहाँ जिस प्रकार कर्म करनेवाले एक ही कामको आपसमें बाँटकर कार्य करते हैं उसी प्रकार वे भी रहते हैं। वे एक-दूसरेके उपकारक भी हो जाते हैं। इनकी व्यवस्था नरराष्ट्रके समान ही समझनी चाहिये। (पृष्ठ २४-२५) स्वामी दयानन्दसरस्वतीने भी सत्यार्थप्रकाशमें लिखा है कि मुक्त पुरुषका इच्छामात्र ही शरीर होता है और वह लोक-लोकान्तरमें

विचरता है। इन्जील और कुरानमें तो दिव्ययोनिवालोंको ही देवदूत कहा है—लड़ाई केवल वाद-विवाद और शब्दोंकी रह जाती है, नहीं तो दिव्ययोनियोंका होना किसी-न-किसी रूपमें सब ही मानते हैं।

☞ कलाकी दृष्टिसे यह याद रहे कि तुलसीदासजी कभी भी उस बातका विस्तृत वर्णन नहीं करते जो कलाके लिये अनावश्यक है। अन्य रामायणोंमें यज्ञका बड़ा विस्तृत वर्णन है।

तबहिं राय प्रिय नारि बोलाईं। कौसल्यादि तहाँ चलि आईं॥ १॥

[अर्द्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा॥ २॥

कैकेयी कहँ नृप सो, दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भएऊ॥ ३॥

कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि॥ ४॥

☞ (क) ['से आगे आयी हुई'] तक सं० १६६१ का नहीं है, वरंच नया पन्ना है जिसमें 'शिवलाल पाठकसे पाठ लिया गया' कहा जाता है।

अर्थ—उसी समय राजाने अपनी प्रिय स्त्रियोंको बुलाया। श्रीकौसल्या आदि रानियाँ वहाँ चली आयीं॥ १॥ राजाने पायसका आधा भाग कौसल्याजीको दिया (फिर) आधेके दो भाग किये॥ २॥ (और) वह (अर्थात् इसमेंसे एक भाग) कैकेयीजीको दिया (और) जो बच रहा उसके फिर दो भाग हुए॥ ३॥ श्रीकौसल्या और कैकेयीजीके हाथोंमें (एक-एक भाग) रखकर और मनको प्रसन्न करके (वे दोनों भाग) श्रीसुमित्राजीको दिये॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) *'तबहिं राय प्रिय नारि बोलाईं।'* इति। अग्निदेवने राजासे कहा था कि जाकर यह हवि बाँट दो। यहाँ जाना न कहकर बुलाकर बाँटना कहा। इतनेहीसे जना दिया कि राजा मारे आनन्दके तुरत महलमें पहुँचे और अपनी प्रिय रानियोंको वहाँ बुला भेजा। (शीघ्रता दिखानेके लिये महलको जाना वा महलमें पहुँचना न कहा। प्रिय नारीको बुलाना कहकर दोनों बातें जना दीं)। *'प्रिय नारि'* कहकर जनाया कि *'कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत'* जिनको पूर्व कह आये, उन्हींको बुलाया। आगे कौसल्या, कैकेयी और सुमित्राजीका आना दिखाकर जनाया कि ये ही *'प्रिय नारि'* हैं और इन्हींको राजाने बुलाया। जब ये तीनों आ गयीं तब खीरके भाग बनाये। [*'तहाँ चलि आईं'* से यह भी भाव निकलता है कि रानियाँ यज्ञशालामें ही थीं, पर राजाके पास न थीं। राजाने उन्हें अपने पास बुला लिया। (प्र० सं०)

नोट—१ वाल्मीकीयमें हविष्यान्नके बाँटमें भेद है। उसमें कौसल्याजीको आधा पायस देनेके पश्चात् शेष आधेके दो भाग किये गये जिसमेंसे एक भाग सुमित्राजीको दिया गया। तत्पश्चात् बचे हुए भागका आधा कैकेयीजीको दिया गया। अब जो पूरे हविका आठवाँ भाग बचा उसे कुछ सोचकर राजाने फिर सुमित्राजीको दिया। (वाल्मी० १। १६। २७—२९)

अ० रा० मेंकी बाँट मानससे किञ्चित् मिलती है। उसमें सुमित्राजीको दो भाग मिलनेका कारण कहा गया है। अ० रा० में वसिष्ठजी और ऋष्यशृङ्गजीकी आज्ञासे राजाने वह हवि श्रीकौसल्या और कैकेयीजीमें आधी-आधी बाँट दी। तदनन्तर सुमित्राजी भी चरुको लेनेकी इच्छासे वहाँ पहुँच गयीं। तब कौसल्याजीने प्रसन्नतापूर्वक अपनेमेंसे आधा उन्हें दे दिया। कैकेयीजीने भी प्रीतिपूर्वक अपनेमेंसे आधा उन्हें दिया। यथा—**'कौसल्यायै सकैकेय्यै अर्धमर्धं प्रयत्नतः॥ ततः सुमित्रा संप्राप्ता जगृध्नुः पौत्रिकं चरुम्। कौसल्या तु स्वभागार्धं ददौ तस्यै मुदान्विता। कैकेयी च स्वभागार्धं ददौ प्रीतिसमन्विता॥'** (१। ३। १०—१२) इस प्रकार वाल्मीकीयके मतसे कौसल्याजीको पूरे पायसके आठ भागोंमेंसे चार भाग, कैकेयीजीको एक और सुमित्राजीको तीन भाग मिले। और अ० रा० के मतसे पायसके चार भागमें एक-एक भाग कौसल्याजी और कैकेयीजीको मिला और दो भाग सुमित्राजीको मिले।

रघुवंशमें सुमित्राजीको कौसल्या-कैकेयीजीने अपना-अपना आधा भाग दिया है, यथा—**'ते बहुज्ञस्य चित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीक्षितः। चरोरर्धार्धभागाभ्यां तामयोजयतामुभे॥'** (सर्ग १०। ५६) अर्थात् अपने पति सर्वज्ञ राजाके भावको जाननेवाली दोनों रानियोंने अपने चरुका आधा-आधा सुमित्राजीको दिया। (राजाने दोनोंको

आधा-आधा दिया था। इन दोनोंने अपना आधा-आधा दे दिया। इस तरह कौसल्याजी और कैकेयीजीको चतुर्थ, चतुर्थ भाग मिला और सुमित्राजीको दो चतुर्थ भाग मिले। इस प्रकार चारों भाई चतुर्थ-चतुर्थ अंशसे हुए। यही मत अ० रा० का है। पद्मपुराणसे यह मत लिया गया जान पड़ता है)। नरसिंह पु० में लिखा है कि चरुको खाते समय कौसल्या-कैकेयीने अपने पिण्डोंसे थोड़ा-थोड़ा सुमित्राजीको दिया। यथा—'**ते पिण्डप्राशने काले सुमित्रायै महीपतेः। पिण्डाभ्यामल्पमल्पं तु स्वभगिन्यै प्रयच्छतः॥**'

मानसका बाँट इन सबोंसे विलक्षण है। इसमें कौसल्याजीको आधा, कैकेयीजीको चतुर्थ और सुमित्राजीको दो बार आठवाँ, आठवाँ मिलनेसे चतुर्थ मिला। बड़ाई-छोटाईके अनुसार यह बाँट सर्वोत्तम है।—इसका रहस्य महानुभावोंने अपने-अपने मतानुसार लिखा है—

(क) वसिष्ठजी त्रिकालज्ञ हैं। ब्रह्माजीने उनसे स्वयं भी कहा था कि '***परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा॥***' (७। ४८) वे जानते हैं कि ब्रह्मका अवतार अंशोंसहित होगा। कौन अंश किस रानीके द्वारा प्रकट होगा और किस प्रकार हविष्यान्नके भाग बनाये और बाँटे जायेंगे यह सब वे जानते हैं। '***अर्द्धभाग कौसल्यहि दीन्हा।***' इस कथनसे पाया जाता है कि गुरु वसिष्ठजीने इस प्रकार विभाग करना बताया था। इसीसे राजाने वैसा विभाग किया। यदि गुरुजीने न बताया होता तो राजा उनसे अवश्य पूछते कि '***जथा जोग जेहि भाग बनाई***' का क्या अभिप्राय है? किस प्रकार भाग किये जायँ? (करु०, पं० रामकुमारजी)

(ख) कौसल्याजीको आधा भाग दिया, इसीसे इनके पुत्र (श्रीरामजी) ज्येष्ठ पुत्र हुए। '***उभय भाग आधे कर कीन्हा***' इससे स्पष्ट हो गया कि दूसरा भाग श्रीरामजीकी बराबर नहीं रह गया, यह भाग रामजीवाले भागके पीछे कैकेयीजीको दिया गया, इससे भरतजी श्रीरामजीसे पीछे और उनसे छोटे हुए। भरतजी चतुर्थ भागमें हुए। '***रहेउ सो उभय भाग पुनि भएऊ***' कैकेयीजीको भरतवाला भाग दे चुकनेपर तब शेष चतुर्थके दो भाग बराबर-बराबर हुए। इस प्रकार लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी दो-दो आने (आठवें-आठवें भाग) में हुए। भरतजीके पीछे ये दोनों भाग दिये गये, अतः ये दोनों भाई भरतजीसे छोटे हुए। प्रथम कौसल्याजीने सुमित्राजीको दिया, तब कैकेयीजीने, इसीसे कौसल्या शब्द प्रथम दिया—'***कौसल्या कैकेई हाथ धरि।***' इसीसे श्रीरामानुगामी श्रीलक्ष्मणजी प्रथम हुए और शत्रुघ्नजी पीछे। इस रीतिसे सब भाई छोटे-बड़े हुए। बड़े भागसे श्रीरामजी बड़ी रानीसे हुए, मध्य भागसे भरतजी मँझली रानीसे हुए और छोटे भागसे लक्ष्मण-शत्रुघ्नजी छोटी रानीसे हुए—(पं० रामकुमारजी)।

(ग) मानसकारके मतसे तीनों रानियाँ वहाँ आ गयीं तब पायसके भाग किये गये। यह चौपाइयोंके क्रमसे स्पष्ट है। बाँटमें वैषम्यका भाव यह है कि कौसल्याजी पटरानी हैं, सबसे बड़ी हैं। इनके पुत्र राज्याधिकारी हैं और कैकेयीजीके पुत्र भी राज्याधिकारी हैं, क्योंकि विवाह इसी शर्तपर हुआ था। यथा—'**कैकेय्यां मम कन्यायां यस्तु पुत्रो भविष्यति॥ तस्मै राज्यं ददात्वेवं गृह्णातु मम कन्यकाम्। अनेन समयेनापि विवाहं कुरु भूमिप॥ हृदि निश्चित्य राजा च वसिष्ठादिभिरात्मवान्। निश्चयं चात्मनः कृत्वा गर्गमाह कृताञ्जलिः॥ यथा वदसि भो विप्र तत्तथा करवाण्यहम्।**……' (सत्योपाख्यान पू० अ० ८। १३-१४, १९-२०) अर्थात् काशमीरके राजाका संदेशा गर्गजीने दशरथमहाराजसे कहा है कि 'हमारी कन्या कैकेयीसे जो पुत्र उत्पन्न हो उसको यदि आप राज्य देनेकी प्रतिज्ञा करें तो मैं अपनी कन्या आपको ब्याह दूँ। इसी प्रतिज्ञापर विवाह हो सकता है अन्यथा नहीं। अतः आप प्रतिज्ञा करें।' दशरथजी महाराजने स्वयं वसिष्ठादिके साथ विचारकर यह प्रतिज्ञा की कि 'जैसा आप कहते हैं वैसा ही हम करेंगे।' श्रीकौसल्याजी ज्येष्ठा हैं और कैकेयीजी कनिष्ठा होनेपर भी अत्यन्त प्रिय हैं, इसलिये कौसल्याजीके पश्चात् सुमित्राजीसे पहले कैकेयीजीको दिया गया।

(घ) कौसल्याजी शतरूपाजी हैं। उनको श्रीरामजी वर दे चुके हैं कि हम तुम्हारे पुत्र होंगे। इसीसे वसिष्ठजीके आदेशानुसार पायसका अर्धभाग उनको दिया गया और प्रथम ही दिया गया। तब कैकेयीजीको दिया गया। श्रीरामजीने वर देते हुए कहा है कि '***अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहौं चरित भगत सुखदाता॥***' (१५२। २) इस तरह अर्द्धभागसे स्वयं प्रकट होकर अपनेको अंशी प्रकट किया है।

(ङ) राजाने श्रीकौसल्या-कैकेयीजीको तो अपने हाथसे स्वयं दिया, पर सुमित्राजीको अपने हाथसे न देकर श्रीकौसल्या-कैकेयीजीके हाथसे दिलाया, इसीसे 'अनुगामी भाव' सिद्ध हुआ। जो भाग कौसल्याजीके हाथसे दिलाया था उससे लक्ष्मणजी श्रीरामजीके अनुगामी हुए और जो कैकेयीजीके हाथसे दिलाया था, उससे शत्रुघ्नजी श्रीभरतजीके अनुगामी हुए। यथा—*'बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन रामचरन रति मानी॥ भरत सत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई॥'* (१९८। ३-४) इसीसे श्रीलक्ष्मणजी 'रामानुज' और श्रीशत्रुघ्नजी 'भरतानुज' कहलाये। सब भाग कौसल्याजीका उच्छिष्ट (अवशिष्ट) है। अर्थात् जो कौसल्याजीसे बचा उसीमें तीन भाग हुए। इसीसे स्वामी-सेवक, शेषी-शेष, अंशी-अंश भाव हुआ। श्रीरामजी स्वामी हैं और सब भाई सेवक हैं। कैकेयीजीका अवशिष्ट सुमित्राजीको मिला, इसीसे भरतजीके सेवक श्रीलक्ष्मण-शत्रुघ्नजी हैं। (पं० रामकुमारजी)

☞ उपर्युक्त भाव देवतीर्थ स्वामीजीके शब्दोंमें इस प्रकार है—*'अर्धभाग कौसल्यहि दीन्हा, सो पूरन अनुपम कर्तार। अपर अर्द्ध जूठन तब बनिगो स्वामी-सेवक भाव उदार।'* (रामसुधाग्रन्थसे। रा० प्र०)

(च) रघुवंशमें कहा है कि कौसल्याजी श्रेष्ठ पटरानी हैं और कैकेयीजी प्रिय हैं; अतः राजाने इन दोनोंके द्वारा सुमित्राजीका सत्कार करना चाहा। यथा—**'अर्चिता तस्य कौसल्या प्रिया केकयवंशजा। अतः सम्भावितां ताभ्यां सुमित्रामैच्छदीश्वरः॥'** (सर्ग १०। ५५) इसीसे *'कौसल्या कैकेई हाथ धरि'* देना कहा।

(छ) पंजाबीजीका मत है कि श्रीकौसल्या और कैकेयीजी राजाको बहुत प्रिय थीं, इसीसे राजाने पायसके दो भाग किये और आधा कौसल्याजीको दिया, तदनन्तर सुमित्राजी भी आ गयीं। तब राजाने सोचा कि इनको न देंगे तो इनका अपमान होगा। इस असमंजसमें पड़कर राजाने बचे हुए आधेके दो भाग किये। एक भाग कैकेयीजीको दिया। फिर विचारा कि दूसरा भाग सुमित्राजीको देंगे तो कैकेयीजी ईर्षा करेंगी। (उनको बुरा लगेगा कि सुमित्राको हमारे बराबर दिया), अतएव उन्होंने बचे हुए चतुर्थ भागके दो भाग किये और कौसल्या और कैकेयी दोनोंके हाथोंमें एक-एक भाग रखकर कहा कि इन्हें भी कुछ दे दो क्योंकि ये भी आ गयी हैं। तब दोनोंने कहा कि जो यह भाग (आठवाँ, आठवाँ) आपने अभी हमें दिया है, वह आप इन्हें दे दें। इस तरह दोनोंकी प्रसन्नतापूर्वक वे दोनों भाग राजाने उनके हाथोंसे लेकर सुमित्राजीको दिया।

(ज) श्रीसुमित्राजीके भागके दो भाग करनेका कारण यह भी है कि ब्रह्मवाणीने कहा था कि *'तिन्ह के गृह अवतरिहौं जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई।'* (१८६। ५) गुरुजीने भी यह कहा था कि *'धरहु धीर होइहहिं सुत चारी'* और यहाँ रानियाँ तीन ही थीं, चार भाग करना आवश्यक था जिसमें एक-एक भागसे एक-एक पुत्र हो। अतएव श्रीसुमित्राजीके भागके दो भाग किये गये जिसमें दो पुत्र हों।

(झ) श्रीपं०रामचरणमिश्रजीका मत है कि श्रीचक्रवर्तीजीने अपने हाथसे श्रीसुमित्राजीको नहीं दिया, अतः वे खेदयुक्त बैठी थीं और उनके हृदयमें मान आ गया था [क्योंकि कैकेयीजी सुमित्राजीसे छोटी थीं। राजाने उनको पहले दिया। अतएव उन्होंने अपनेको अपमानित जाना। (प्र० सं०)] इस मान और खेदको मिटानेके लिये श्रीकौसल्या और कैकेयीजीने उनका हाथ पकड़कर (क्योंकि जब कोई क्रुद्ध हो जाता है तब हाथ पकड़कर मनाया जाता है) और उनके मनको प्रसन्न कर (अर्थात् उनसे यह कहकर कि लो हम दोनों तुम्हें एक-एक भाग देती हैं, तुम्हारे दो पुत्र होंगे, यह अनुकूल वार्ता सुनकर सुमित्राजीका मन प्रसन्न हो गया) वह भाग उनको दे दिये।

☞ इस तरह *'कौसल्या कैकेयी हाथ धरि'* का अर्थ 'कौसल्या और कैकेयीजीने (सुमित्राजीका) हाथ पकड़कर' ऐसा किया है।

'राजाने अपने हाथ क्यों न दिया?' इसका समाधान वे यह करते हैं कि मुख्य भाग तो कौसल्याजीका ही है, क्योंकि वे साभिषेका पटरानी हैं और पूर्वजन्मसे उनका सम्बन्ध है। परंतु राजा केकयसे वचनबद्ध होनेके कारण कैकेयीजीको भी पायसमें भाग देना पड़ा और सुमित्राजीके लिये राजाने यह विलक्षण चतुरता की कि उनके भागके दो भाग करके उन्होंने कौसल्या और कैकेयीजीको दे दिया। इन दोनोंने राजाका

हार्दिक भाव पहचानकर वे भाग सुमित्राजीको दिये। ऐसा करनेसे राजाकी ओरसे (श्रीलक्ष्मण-शत्रुघ्नका) गर्भाधान कौसल्या और कैकेयीमें ही हुआ। इसी आशयसे लंकाकाण्डमें लक्ष्मणजीको सहोदर भ्राता कहा गया।—'*मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।*' (६। ६०)

(ञ) श्रीनंगे परमहंसजी '*हाथ धरि*' का अर्थ 'हाथपर रखकर अर्थात् उनकी अनुमति लेकर' इस प्रकार लिखते हैं।

नोट—२ ☞ '*मन प्रसन्न करि*' सबमें लग सकता है। कौसल्या-कैकेयीजीका मन प्रसन्न हुआ क्योंकि उनके हाथमें रखकर उनसे सुमित्राजीको दिलाया गया; अथवा उनके हाथोंमें रखकर उनकी अनुमतिसे राजाने सुमित्राजीको दिया। दोनोंकी प्रसन्नता सुमित्राजीको देनेमें जानकर राजा भी प्रसन्न हुए। कैकेयीजी सुमित्राजीसे छोटी हैं पर कैकेयीजीको प्रथम दिया गया; इसलिये राजाने उनको दो भाग देकर उनका मन प्रसन्न किया कि तुम्हारे दो पुत्र होंगे। लो, कौसल्याजी तुमको प्रसाद और कैकेयीजी भेंट देती हैं। (प्र० सं०)

नोट—३ पं० रामकुमारजीने श्रीकैकेयीजीको मझली रानी कहा और प्रायः अन्य सबोंने श्रीसुमित्राजीको मझली और कैकेयीजीको छोटी कहा है। कैकेयीजीको जो मध्यमा कहा गया है वह सम्भवतः वाल्मी० (३। १६। ३७) '**न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।**' इस वचनसे और पायसभागके बाँटनेके क्रमके आधारपर कहा गया। 'उत्तररामचरित' (नाटक) मेंके '**अये मध्यमाम्बा वृत्तान्तोऽन्तरित आर्येण।**' (१। २१) लक्ष्मणजीके इस वाक्यमें भी उनके लिये 'मध्यमा' शब्द आया है। बंगलाके कृत्तिवासी रामायणमें कैकेयीजीका विवाह सुमित्राजीसे पहले है।

सुमित्राजीको मध्यमा और कैकेयीजीको कनिष्ठा कहनेके प्रमाण ये हैं—'**कच्चित् सुमित्रा धर्मज्ञा जननी लक्ष्मणस्य या। शत्रुघ्नस्य च वीरस्य अरोगा चापि मध्यमा॥**' (वाल्मी० २। ७०। ९) (भरतवाक्य), '**रामं समुद्यतो हृष्टो यौवराज्येऽभिषेचितुम्। यज्ज्ञात्वा कैकेयी देवी राज्ञः प्रेष्ठा कनीयसी॥ २४॥ सन्निवार्य हठात् तस्य पुत्रस्य तदरोचत।**' (नारदपु० उ० अ० ७५)

वाल्मीकीयके सभी प्राचीन टीकाकारोंने कैकेयीजीको कनिष्ठा ही माना है और वाल्मी० (३। १६। ३७) के 'मध्यमा' शब्दके विषयमें श्रीगोविन्दराजजीने यह लिखा है कि अन्य रानियोंकी अपेक्षा उनको मध्यमा कहा है। [कैकेयीजीके पश्चात् भी जिनका राजाने ग्रहण किया है चाहे वे अविवाहिता ही क्यों न हों उनमें भी श्रीरामजी माताभाव ही रखते थे इसीसे उन्होंने उन्हें मध्यमा कहा।]

पद्मपुराण उत्तरखण्डमें बहुत ही स्पष्टरूपसे पायस भागके समय बड़ी, छोटी और मध्यमाका निर्णय पाया जाता है। यथा—'**स राजा तत्र दृष्ट्वा च पत्नीं ज्येष्ठां कनीयसीम्। विभज्य पायसं दिव्यं प्रददौ सुसमाहितः॥ एतस्मिन्नन्तरे पत्नी सुमित्रा तस्य मध्यमा। तत्समीपं प्रयाता सा पुत्रकामा सुलोचना॥ तां दृष्ट्वा तत्र कौसल्या कैकेयी च सुमध्यमा। अर्द्धमर्द्धं प्रददतुस्ते तस्यै पायसं स्वकम्॥**' (अ० २४२। ५९—६१) अर्थात् श्रीशिवजी कहते हैं कि दशरथजीने अपनी ज्येष्ठा और कनिष्ठा स्त्रीको देखकर पायसका आधा-आधा भाग उन दोनोंको दे दिया। इसी बीचमें उनकी मध्यमा स्त्री श्रीसुमित्राजी भी उनके समीप पुत्रकामनासे आ गयीं। उनको देखकर श्रीकौसल्याजी और सुन्दर कटिवाली श्रीकैकेयीजीने अपने-अपनेसे आधा-आधा उनको दे दिया। यहाँ 'ज्येष्ठा' और 'कनीयसी' कहकर फिर उनके नाम कौसल्या और कैकेयी आगे स्पष्ट कर दिये और सुमित्राजीको स्पष्टरूपसे 'मध्यमा' कहा है।

इसी अध्यायमें श्रीदशरथजीके विवाहोंका भी उल्लेख है जिससे फिर मध्यमा और कनिष्ठामें संदेह रह ही नहीं जाता। यथा—'**कोसलस्य नृपस्याथ पुत्री सर्वाङ्गशोभना। कौसल्या नाम तां कन्यामुपयेमे स पार्थिवः॥ मागधस्य नृपस्याथ तनया च शुचिस्मिता। सुमित्रा नाम नाम्ना च द्वितीया तस्य भामिनी॥ तृतीया केकयस्याथ नृपतेर्दुहिता तथा। भार्याभूत्पद्मपत्राक्षी कैकेयीनाम नामतः॥ ताभिः स्म राजा भार्याभिस्तिसृभिर्धर्मसंयुता……**' (३७—३९) इस उद्धरणमें सुमित्राजीको द्वितीया और कैकेयीजीको तृतीया कहा है। और यह कहकर आगे '**तिसृभिः**' कहनेसे अनुमान होता है कि ये ही तीन विवाहिता स्त्रियाँ थीं।

स्कन्दपुराण नागरखण्डमें भी स्पष्ट लिखा है कि राजाकी सबसे छोटी रानी कैकेयीने भरत नामक पुत्र उत्पन्न किया और मझली रानी सुमित्राने दो महाबली पुत्रोंको जन्म दिया। यथा—'**कौसल्यानामविख्याता तस्य भार्या सुशोभना। ज्येष्ठा तस्यां सुतो जज्ञे रामाख्यः प्रथमः सुतः॥ तथान्या कैकेयी नाम तस्य भार्या कनिष्ठिका। भरतो नाम विख्यातस्तस्याः पुत्रो भवत्यसौ॥ सुमित्राख्या तथा चान्या पत्नी या मध्यमा स्थिता। शत्रुघ्नलक्ष्मणौ पुत्रौ तस्यां जातौ महाबलौ॥ तथान्या कन्यका चैका बभूव वरवर्णिनी। ददौ यां पुत्रहीनस्य लोमपादस्य भूपतेः॥**' (९८। १९—२२)

गौड़जी—मानसमें कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी यमज थे और दोनों सुमित्राजीके ही पुत्र थे। एक महात्मासे यह सुननेमें आया कि परात्परवाले अवतारमें भरत-शत्रुघ्न यमज थे और कैकेयीके पुत्र थे। कैकेयीहीकी पहली सन्तान शान्ता हुई थी जो राजा रोमपादको दे दी गयी थी और पीछे शृङ्गी ऋषिसे ब्याही गयी थी। कैकेयीजीके इस प्रकार तीन संतानें हुईं। इसीलिये इनका बड़ा आदर था। भगवान् रामचन्द्र सबसे बड़े कौसल्याजीसे सभी अवतारोंमें हुए। श्रीसाकेतविहारीके अवतारमें भरत कैकेयीसे हुए परंतु लक्ष्मणजीसे पहले हुए। फिर सुमित्राजीसे लक्ष्मणजी हुए। फिर कैकेयीजीसे शत्रुघ्नजी हुए। तीसरे दिन लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजीकी उत्पत्ति हुई। इसी क्रमसे छठी और बरहीके उत्सव बराबर तीन-तीन दिनतक होते रहे।

इस कथासे भरत-शत्रुघ्नके साथ ही ननिहाल जानेकी, दोनों भाइयोंकी साजिशवाला लक्ष्मणजीका संदेह, *'आए दल बटोरि दोउ भाई। सोवहु समर सेज दोउ भाई।' 'सानुज निदरि निपातहुँ खेता')* *'निज जननी के एक कुमारा'* वाली शंका सबका स्पष्टीकरण हो जाता है। कई कल्पोंकी कथामें भेद होनेके कारण ही मानसमें यमजवाले प्रश्नपर गोस्वामीजी वा स्वयं भगवान् शंकर चुप हैं।

नोट—४ यद्यपि पायस-भागके क्रमसे स्पष्ट है कि सुमित्राजीके दो पुत्र लक्ष्मण-शत्रुघ्नजी हुए। परन्तु स्पष्टरूपसे ग्रन्थमें यह बात नहीं आयी है, इसीसे कुछ लोग शक्तिके प्रसंगको लगानेके लिये यह कहते हैं कि लक्ष्मणजी एकलौता पुत्र थे। वाल्मीकीय और अध्यात्मरामायणोंसे स्पष्ट है कि लक्ष्मण-शत्रुघ्नजी श्रीसुमित्राजीके यमज पुत्र हैं।

ग्रन्थकारका मत यदि एक जगह स्पष्ट न हो तो उसके अन्य ग्रन्थोंको प्रमाण मानना चाहिये। शक्ति लगनेपर जब श्रीहनुमान्‌जी अयोध्या आये और शक्तिका समाचार सुनाया तब श्रीसुमित्राजीने कहा है—*'रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसरु जद्यपि धनु दुसरे हैं। तात! जाहु कपि संग रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं॥'* (गी० ६। १३) विनयपत्रिकामें और भी स्पष्ट है। श्रीशत्रुघ्नजीकी स्तुतिमें गोस्वामीजी कहते हैं—*'जयति सर्वांग सुंदर सुमित्रा-सुवन भुवन-बिख्यात भरतानुगामी।'* (पद ४०) श्रीरामाज्ञाप्रश्न सर्ग ७ में वे लिखते हैं—*'सुमिरि सुमित्रा नाम जग जे तिय लेहिं सुनेम। सुवन लषन रिपुदवन से पावहिं पति पद प्रेम॥'* (१८) इन उपर्युक्त उद्धरणोंसे श्रीलक्ष्मण-शत्रुघ्नजीका श्रीसुमित्राजीके पुत्र होना ग्रन्थकारका स्पष्ट मत सिद्ध है। फिर भी ग्रन्थकारने *'कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत भैं ओऊ॥'* (१९५। १) मैंने *'दोऊ'* को 'सुमित्रा' और *'सुंदरसुत जनमत भैं'* के बीचमें देकर यह भी प्रकट कर दिया है कि श्रीसुमित्राजीने 'लक्ष्मण, शत्रुघ्न' दोनों पुत्रोंको जन्म दिया। अब मानसके ही उद्धरण लीजिये जिनसे लक्ष्मण और शत्रुघ्नजीका सहोदर भ्राता होना पाया जाता है। (१) *'भेंटेउ बहुरि लषन लघु भाई। सोकु सनेहु न हृदय समाई॥'* (२। १६५। २) भरतजी अयोध्यामें कैकेयीजीके पाससे होकर जब श्रीकौसल्याजीके पास जाते हैं तब कवि माताका *'लषन लघु भाई'* से भेंट करना लिखते हैं। यहाँ कोई और कारण ऐसा लिखनेका नहीं जान पड़ता, सिवाय इसके कि शत्रुघ्नजी वस्तुतः लक्ष्मणजीके सगे भाई हैं। ऐसा न होता तो यहाँ *'भरत लघु भाई'* ही कहना सर्वथा उचित था। (२) *'भेंटेउ लषन ललकि लघु भाई।'* (२। २४२। १) में लक्ष्मणजीका (अपने) छोटे भाईसे मिलना कहा है। और भी चौपाइयाँ हैं जिनमें लक्ष्मणजीका लघुभाई उनको कहा है, पर उनमें गुणसम्बन्धी अर्थ लिया जा सकता है।

मानस आदिमें शत्रुघ्नजीके लिये जो 'भरतानुज' शब्दका प्रयोग हुआ है वह केवल भरतानुगामी होनेसे। इसी तरह 'रामानुज' शब्द प्रायः श्रीलक्ष्मणजीके लिये रूढ़ि हो गया है क्योंकि वे श्रीरामानुगामी

हैं। ऐसा न मानें तो लक्ष्मणजीको श्रीरामजीका सहोदर भ्राता अर्थात् कौसल्याजीका पुत्र कहना पड़ेगा जो सर्वथा असत्य है।

एहि बिधि गर्भ सहित सब नारी। भईं हृदय हरषित सुख भारी॥५॥

जा दिन तें हरि गर्भहि आए। सकल लोक सुख संपति छाए॥६॥

अर्थ—इस प्रकार सब स्त्रियाँ गर्भसहित अर्थात् गर्भवती हुईं। भारी सुख होनेसे हृदयमें हर्षित—आनन्दित हुईं॥ ५॥ जिस दिनसे हरि गर्भमें आये उसी दिनसे समस्त लोक सुख और संपत्तिसे छा गये॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) *'एहि बिधि'* अर्थात् पायस-भाग खा-खाकर। यह कहकर इनका गर्भाधान रज-वीर्यसे रहित जनाया। (स्मरण रहे कि स्त्रीके रज और पुरुषके वीर्यके संयोगसे गर्भकी स्थिति होती है, पर भगवान् गर्भमें नहीं आते। उनका जन्म पिण्डविधिसे, रज-वीर्यसे नहीं होता, यह बात प्रकट करनेके लिये ही *'एहि बिधि'* कहा। भगवान्‌का शरीर पाञ्चभौतिक नहीं है वरंच चिदानन्दमय, नित्य, दिव्य और देही-देह विभागरहित है; यथा—*'चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥'* तब 'गर्भसहित' कहनेका क्या भाव? भाव यह कि भगवान्‌का आविर्भाव जिसके द्वारा होना होता है उसके सब लक्षण गर्भवतीके-से हो जाते हैं, उसे यही जान पड़ता है कि मेरे गर्भमें बच्चा है या मैं गर्भिणी हूँ। **गर्भ**=पेटके भीतरका बच्चा; हमल; यथा—*'चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्त्रवहिं सुररवनी॥'* (ख) *'भईं'* शब्द दीपदेहलीन्यायसे दोनों ओर है। (ग) *'सुख भारी'* का भाव कि सुख तो तीनों लोकोंको हुआ पर रानियोंको सबसे अधिक सुख हुआ।

२—*'जा दिन तें हरि गर्भहि आए'* इति। 'हरि' गर्भमें नहीं आते और वहाँ ग्रन्थकार लिखते हैं कि हरि गर्भमें आये। यह कैसा? समाधान यह है कि यहाँ गर्भमें भगवान्‌का आना वैसा नहीं है जैसा कि जीवका। जीव कर्मोंके वश गर्भमें आता है, भगवान् कर्मके अधीन नहीं हैं, यथा—*'कर्म सुभासुभ तुम्हहिं न बाधा।'* (१३७। ४) वे अपनी इच्छासे आते हैं। जैसे वे सबके हृदयमें बसते हैं, यथा—*'सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ'* वैसे ही गर्भमें बसते हैं। [यथा—'**प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर्जायमानो बहुधा विजायते। तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।**' (शुक्ल यजुर्वेद ३१। १९) अर्थात् सर्वेश्वर ब्रह्म सबके अन्तःकरणमें रहते हुए भी गर्भमें आता है और अनेक रूपोंसे जन्म लेता है। उसके जन्म लेनेके कारणको ज्ञानी लोग ही जानते हैं कि उसीमें समस्त ब्रह्माण्ड स्थित है फिर भी वह क्यों गर्भमेंसे जन्म लेता है। (वै० भू०)] पुनः, दूसरा समाधान यह है कि 'वायु' गर्भमें आकर प्रतीति कराता है, यथा '**तस्या एवाष्टमो गर्भो वायुपूर्णो बभूव ह**' (अर्थात् देवकीजीका आठवाँ गर्भ वायुसे पूर्ण हुआ), यथा—*'अनेक बेष धरि नृत्य करै नट कोइ। सोइ सोइ भाव देखावै आपु न होइ न सोइ॥'*

'जा दिन तें हरि गर्भहि आए' इति।

पं० रामकुमारजीका मत टिप्पणीमें दिया गया। औरोंके मत ये हैं—

१—पंजाबीजी लिखते हैं कि 'अजन्माका गर्भमें आना शास्त्रविरुद्ध है। इसलिये *'हरि गर्भहि आए'* का अर्थ यों होगा कि गर्भयोनिके हरनेवाले हरि अर्थात् भक्तोंके गर्भ-संकट जन्म-मरणको छुड़ानेवाले प्रभु आये अर्थात् अवतार लेनेकी इच्छा की।' इतना लिखकर फिर वे यह प्रश्न करते हुए कि 'प्रभु गर्भमें न आये तो माताने क्योंकर जाना कि गर्भमें पुत्र है?' इसका उत्तर यह देते हैं कि 'जब अवतारकी इच्छा होती है तब पवनदेव उदरमें गर्भाधानवत् प्रतीति करा देते हैं। (प्रमाणमें वे ब्रह्मवैवर्त कृष्णखण्डका उद्धरण देते हैं जो टिप्पणीमें आ चुका है।) इसकी पुष्टि प्रकट होनेके समयके प्रसंगसे होती है कि पहले और रूपसे प्रकट हुए, फिर माताकी प्रार्थनासे बालकरूप हो गये।—'

२—श्रीलमगोड़ाजी लिखते हैं कि 'वास्तवमें बात वही है जो भगवान् कृष्णने गीतामें कही है कि '**जन्म कर्म च मे दिव्यम्।**' जो उन्हें न समझकर उन्हें भी साधारण मनुष्यकी तरह देहधारी मानते हैं उन्हें

मूर्ख ही कहा है। लेकिन उनकी विद्यारूपी लीलाशक्ति (जो मायाका उत्तम रूप है) सारी लीला ऐसी रचती है कि सब अनुभव करा देती है। *'भए प्रगट कृपाला'* से ज्ञात होगा कि भगवान् केवल 'प्रकट हुए' जन्में नहीं, लेकिन पहले कौसल्याजीको यही अनुभव होता रहा कि 'गर्भ' है। हाँ! जब ज्ञान हुआ तब उन्हें प्रतीत हुआ कि *'ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोमरोम प्रति बेद कहे। सो मम उर बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहे॥'* और तब तो *'प्रभु मुसुकाना'* वाली बातसे भगवान्‌ने अपनी लीलावाली बातका बोध कराकर फिर बालचरित प्रारम्भ किया—*'रोदन ठाना'*।

इन दोनों रहस्योंको न समझनेसे संसारमें भ्रम फैला है, नहीं तो कुरानवाली बात भी ठीक है कि 'न उससे कोई जन्मता है, न वह किसीसे जन्मता है' (लमयलिद व लमयलद) और फिर उसी कुरानमें भगवान् ईसाका दिव्य दूतद्वारा दिव्य जन्म लिखा है और इन्जीलमें स्वयं भगवान्‌का ही दिव्य पुत्ररूप जन्म हजरत ईसाका माना है—हमारे यहाँ रामायणमें दोनों सिद्धान्तोंका ठीक एकीकरण है।—'

३—कुछ लोगोंका यह भी मत है कि जो सर्वव्यापक है उसे गर्भमें आनेकी वा उसमें अपनी प्रतीति करा देनेका भी सामर्थ्य है, अतएव संदेह नहीं है।

४—संत श्रीगुरुसहायलालजी भी गीताके श्रीधरभाष्य और ब्रह्मवैवर्तादि ग्रन्थोंके प्रमाण देते हुए *'हरि गर्भहि आए'* का भाव यही कहते हैं कि 'उदर महावायुसे परिपूर्ण हुआ जिससे भगवान्‌की प्रतीति हुई। गर्भाधानकी, अवतारके समय यही रीति है। हरि=वायु, यथा—**'वैश्वानरेऽप्यथ हरिर्दिवाकरसमीरयोः'** इति (हेमकोश)।

बाबा हरिदासजी लिखते हैं कि 'भगवान् जन्मसमय कौसल्याजीके आगे खड़े हुए हैं तब उदरवास क्योंकर घटित हो? सो यहाँ बात यह है कि *'हरिरूप कारण हवि जानों।'* भगवान् कौसल्याके उदरमें तेजोमय प्रकाशवत् पवनरूप अंशमात्र ही रहे। हरि पवनका नाम है।'

५—श्रीदेवतीर्थस्वामीजी लिखते हैं—*'रामचरित कहीं काहि लखाय मुनिमतिहू भरमाय॥ त्रिभुवन भावहि प्रगट होइ कै राघवजन्म कहाय। भावनहू को राम प्रकासत ये तो पद ठहराय॥ कोप मुनिनको सियारूप धरि प्रगटि जनकपुर जाय। रामप्रिया बनि काज साधि पुनि बनमें गयो समाय॥ रामसियाको जन्मकर्म नहि नित्यहि उदित सुभाय। ते कैसे जनिहहिं जे मदिरा अचै रहे बड़राय॥ देवभाव बानर भालू तन धरि कै भए सहाय। त्रिभुवन भावहि त्रिभुवनपति बनि रहा अवधमें छाय॥'* (१—४) (रामरंगग्रन्थ इति) (पं० रा० कु०)

६—श्रीनंगे परमहंसजी लिखते हैं कि कोई-कोई संसारी बालकोंका दृष्टान्त देकर भगवान्‌को गर्भमें आना अर्थ नहीं करते। संसारी जीवकी समतामें भगवान्‌को लगाना भारी भूल है। देखिये, संसारी स्त्री जब गर्भवती होती है तब वह बदशक्ल और तेजहीन हो जाती है पर माता कौसल्याको देखिये कि जब भगवान् उनके गर्भमें आये तब उनकी शोभा, तेज तथा शील बढ़ गया, यथा—*'मंदिर महँ सब राजहिं रानी। सोभा सील तेजकी खानी॥'* भगवान् अपने तेज-प्रतापके सहित कौसल्याजीके गर्भमें आये थे, उनके शरीरको वैकुण्ठ बना दिया था। जैसे पराशरजीने मत्स्यगन्धाको योजनसुगन्धा बना दिया था [अर्थात् जिसमें मछलीकी गन्ध आती थी उस 'मत्स्यगंधा' को योजनभरतक सुगन्ध देनेवाली अर्थात् अपने अनुकूल बना लिया था। जिसको सत्यवती कहते हैं और जो व्यासजीकी माता थीं। भगवान् केवल अङ्गुष्ठमात्रका शरीर गर्भमें धारण किये थे, बाहर विस्तार किये। प्राकृतिक स्त्रियोंकी तरह प्रसव आदिका कष्ट कौसल्या माताको नहीं हुआ। अतः गर्भमें आना यथार्थ है।

७—संत श्रीगुरुसहायलालजी लिखते हैं कि गर्भाधानमात्र भगवान्‌का आवेश होता है। चरु वस्तुतः भगवान्‌की महिमा है जो अग्निद्वारा प्रकट हुई और वह अग्नि वस्तुतः अग्नि नहीं है किंतु प्रणव-तत्त्व है जैसा ब्रह्मविन्दूपनिषद्‌की दीपिकामें कहा है और गर्भकी प्रतीति इस हेतुके सूचनका नाटकमात्र है। प्रणवतत्त्वके वर्ण ही चारों पुत्र हैं, यथा—**'अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः'**—' (रा० ता० उप०) पुनः, अग्निको ओषधियों, वृक्षों, समस्त प्राणियों और जलका गर्भ शुक्ल यजुर्वेद अध्याय १२ में कहा गया है। अग्नि गर्भरूप है तब तत्रस्थ वस्तु भी गर्भ है। अतः गर्भसहित होना कहा।

८—रघुवंशमें कहा है कि वैष्णवतेज ही चरुरूपमें था, यथा—'**स तेजो वैष्णवं पत्न्योर्विभेजे चरुसंज्ञितम्। द्यावापृथिव्योः प्रत्यग्रमहर्पतिरिवातपम्।**' (१०। ५४) अर्थात् राजाने उस चरुरूप वैष्णवतेजको अपनी दो पत्नियोंमें बाँटा, जैसे सूर्य अपने नवीन तेजको आकाश और पृथ्वीको बाँट देता है। इस तरह भी गर्भाधान आवेशमात्र है। पद्मपुराणमें स्पष्ट उल्लेख है कि तीनों माताओंको भगवान्के आयुधादिका स्वप्नमें दर्शन होने लगा था।

नोट—१ गर्भवती होना वाल्मीकि आदिने भी लिखा है। यथा—'**ततस्तु ताः प्राश्य तमुत्तमस्त्रियो महीपतेरुत्तमपायसं पृथक्। हुताशनादित्यसमानतेजसोऽचिरेण गर्भान् प्रतिपेदिरे तदा॥**' (वाल्मी० १। १६। ३१) (अर्थात् महाराजकी पृथक्-पृथक् दी हुई हवि खाकर उन उत्तम रानियोंने अग्नि और सूर्यके समान तेजवाले गर्भ शीघ्र धारण किये।) पुनश्च यथा—'**उपभुज्य चरुं सर्वाः स्त्रियो गर्भसमन्विताः।**' (अ० रा० १। ३। १२) अर्थात् सभी रानियाँ पायसको खाकर गर्भवती हुईं। शुक्लयजुर्वेदका प्रमाण भी टिप्पणी २ में दिया जा चुका है।

वेदान्तभूषणजीने वेदका प्रमाण भी मुझे यह दिया है—'**य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं' ददर्श हिरिगिन्नु तस्मात्। स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश॥**' (ऋग्वेद १। १६४। ३२, अथर्ववेद ९। १०। १०, निरुक्त २। ८) अर्थात् जिस ब्रह्मने इस सारे विश्वकी रचना अपने मनसे (योगमायाद्वारा) संकल्पमात्रसे किया है, वह परमात्मा इस संसारके वृद्धि-विनाशजन्य दुःख-सुखकी भावनाको नहीं प्राप्त करता। और, जो परमात्मा इस सारे विश्वको सर्वप्रकारेण देखता है, (अर्थात् सर्वसाक्षी, सर्वद्रष्टा, सर्वान्तर्यामी तथा सर्वव्यापक है), तो भी इस सारे प्रपञ्चसे निश्चितरूपेण पृथक् है, निर्लिप्त है; वह परमात्मा माताके गर्भके मध्यमें जरायुसे वेष्टित होकर पृथ्वीपर आया। वह यहाँ आकर कैसे रहा, तो बहुत बड़ी प्रजा समस्त भूमण्डलका पालक होकर रहा—'*सप्त भूमि सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला॥*'

नोट—२ '*सकल लोक सुख संपति छाये।*' इति। भाव कि रावणके उपद्रवसे सब लोक दुःखी हो गये थे, उनकी सब सम्पत्ति हर ली गयी थी। जिससे सुख जाता रहा था, यथा—'*भए सकल सुर संपति रीते।*' वह सब फिर भरपूर हो गयी। मानो सुख-सम्पत्तिने यहाँ छावनी डाल दी। बाबा हरिदासजी लिखते हैं कि 'सुलक्षणी पुत्र जब माताके गर्भमें आता है तब घरमें मङ्गल होता है यह प्रत्यक्ष संसारमें देखा जाता है। यहाँ त्रैलोक्य रामजीका घर है इसीसे त्रैलोक्यमें सुखसम्पत्ति छा गयी।'

मंदिर महँ सब राजहिं रानी। सोभा सील तेज की खानी॥७॥
सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ॥८॥

अर्थ—सब रानियाँ महलमें सुशोभित हो रही हैं, सब शोभा, शील और तेजकी खानि हैं॥ ७॥ (इस प्रकार) कुछ समय सुखपूर्वक बीता और वह अवसर आ गया जिसमें प्रभुको प्रकट होना था॥ ८॥

प० प० प्र०—'*मंदिर*' इति। मानसमें यह शब्द ३५ बार आया है। इस शब्दका प्रयोग विशिष्ट हेतुसे किया गया है। गोस्वामीजीके इष्ट हरि-हर और हनुमान्जी हैं। अन्य देवताओंके स्थानके लिये मानसमें 'मंदिर' शब्द कहीं भी नहीं है। कौसल्याजीके गर्भमें श्रीरामजी हैं, अतः जिस महलमें वे हैं वह राममन्दिर बना। इसी प्रकार सुमित्राजीके गर्भमें श्रीमन्नारायण और शिवजी और कैकेयीजीके गर्भमें विष्णु भगवान्के होनेसे उनके भवन भी मन्दिर हो गये। भवानी-भवन, गिरिजागृह और गौरिनिकेत जो कहा है वह इसी हेतुसे। देखिये, जिस महलमें रामावतार हुआ उसको मन्दिर कहा पर जिस राजप्रासादमें श्रीदशरथजी हैं उसको गृह कहा है, यथा—'*मंदिर मनिसमूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इंदु उदारा॥*' जब श्रीरामजी अजिरविहारी हो दशरथमहलमें आने-जाने लगे तब उसे 'मन्दिर' कहा है, यथा—'*नृपमंदिर सुंदर सब भाँती।*' (७। ७६। ३) इस नियममें अपवाद नहीं है। [स्वामीजीने जो सुमित्रासदन और कैकेयीभवनको मन्दिर बनाया वह सम्भवतः '*संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना।*' (१४४। ६) के आधारपर हो।]

टिप्पणी—१ (क) '*सोभा सील तेज की खानी*' इति। खानि=उत्पत्तिस्थान=वह जिसमें या जहाँ कोई वस्तु अधिकतासे हो। चारों भाई शोभा, शील और तेजयुक्त हैं, यथा—'*चारिउ सील रूप गुन धामा*' और ये उन शोभाशील-तेजमय पुत्रोंकी जननी हैं, उनको उत्पन्न करनेवाली हैं, अतएव इनको शोभा, शील

और तेजकी खान कहा। [पुनः, पाण्डेजी इन विशेषणोंको क्रमसे श्रीकौसल्याजी, कैकेयीजी और सुमित्राजीमें लगाते हैं। उनके मतसे कौसल्याजी शोभाखानि हैं, कैकेयीजी शीलखानि हैं और सुमित्राजी तेजखानि हैं। यथा—*'सोभाधाम राम अस नामा' 'देखि भरत कर सील सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥' 'भरत सील गुन बिनय बड़ाई' 'धन्य भरत जीवनु जगमाहीं। सील सनेहु सराहत जाहीं' 'भरत सनेहु सील सुचि साँचा।' 'राजन राम अतुल बल जैसे। तेजनिधान लखन पुनि तैसे॥'* श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि 'यहाँ ऐश्वर्य गुप्त और माधुर्य प्रकट कहा गया है, शोभारूपरत्न श्रीराम कौसल्याजीके उदरमें हैं, अतएव वे शोभाकी खानि हैं। शीलरूप भरतजी और तेजरूप शत्रुघ्नजी और गुणरूप लक्ष्मणजी हैं, अतएव कैकेयीजी शीलकी और सुमित्राजी तेज और गुणकी खानि कही गयीं' (नोट—बैजनाथजी *'तेज गुन खानी'* पाठ देते हैं इसीसे गुणको लक्ष्मणजीमें लगाते हैं)। बाबा हरिदासजी और पाण्डेजीका एक मत है। वे लिखते हैं कि लक्ष्मणजी तेजनिधान हैं और तेज ही गुण शत्रुघ्नजीमें जानिये; क्योंकि *'जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥'* और रिपुका नाश तेजहीसे होता है, एक उदरमें बास एवं यमज होनेसे तेजगुण दोनोंमें है। प० प० प्र० पाण्डेजीसे सहमत हैं।] (ख) पुनः शोभा आदिकी खानि कहकर जनाया कि जिनकी शोभासे तीनों लोक शोभित हुए वे ही मन्दिरमें शोभित होती हैं, तात्पर्य कि तब उनकी एवं उस मन्दिरकी शोभाका वर्णन कौन कर सकता है? *'राजहिं रानी'* यथा अध्यात्म—'**देवता इव रेजुस्ताः स्वभासा राजमन्दिरे।**' (१। ३। १३) अर्थात् रानियाँ अपनी कान्तिसे देवताओंके समान शोभा पाने लगीं।

टिप्पणी—२ (क) *'सुख जुत कछुक काल—'* इति। 'सुख जुत' कहनेका भाव कि गर्भधारणमें क्लेश होता है, वह क्लेश इनको न हुआ, सब समय सुखसे बीता। (ख) *'कछुक काल'* इति गर्भ तो बारह मास (वाल्मीकीय मतसे) अथवा नवमास (अध्यात्मके मतसे) रहा, यथा—'**ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः। ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ।**' (वाल्मी० १। १८। ८) (अर्थात् यज्ञ समाप्त होनेसे जब छः ऋतुएँ बीत चुकीं और बारहवाँ मास लगा तब चैत्र मासकी नवमीको), '**दशमे मासि कौसल्या सुषुवे पुत्रमद्भुतम्।**' (अ० रा० १। ३। १३) अर्थात् दसवाँ महीना लगनेपर कौसल्याजीने एक अद्भुत बालकको जन्म दिया। तब *'कछुक काल'* कैसे कहा? इस प्रश्नका उत्तर प्रथम ही *'सुखजुत'* शब्दसे जना दिया। सुखका समय थोड़ा ही जान पड़ता है, इसीसे उतने समयको 'कछुक' ही कहा यथा—*'कछुक दिवस बीते एहि भाँती। जात न जानिअ दिन अरु राती॥'* (१९७। १) *'कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भए परिजन सुखदाई॥'* (२०३। २) *'नित नूतन मंगल पुर माहीं। निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं॥'* (३३०। १) सुखके दिन जाते जान नहीं पड़ते। ऐसा प्रतीत होता है कि अभी कुछ दिन भी तो नहीं हुए। (ग) *'जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर—'* यहाँसे *'सो अवसर बिरंचि जब जाना'* तक 'अवसर' का वर्णन है। [प्रभुका अवतार त्रेतायुगके तीन चरण अर्थात् नौ लाख बहत्तर हजार वर्ष बीत जानेपर जब चतुर्थ चरण लगा तब 'प्रभव' नामक संवत्सरमें हुआ। (वै०) किस कल्पके त्रेतायुगमें हुआ इसमें मतभेद है। जिस कल्पमें भी हो उसके बहत्तर चतुर्युगीके त्रेतामें यह अवतार हुआ। बैजनाथजीके मतानुसार यह प्रथम कल्पकी कथा है।]

दो०—जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥१९०॥

शब्दार्थ—**जोग** (योग)=फलित ज्योतिषमें कुछ विशिष्ट काल या अवसर जो सूर्य और चन्द्रमाके कुछ विशिष्ट स्थानोंमें आनेके कारण होते हैं और जिनकी संख्या सत्ताईस (२७) है। इनके नाम ये हैं—विष्कुंभक, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगंड, सुकर्मा, धृति, शूल, गंड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्ध, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र और वैधृति। **लगन** (लग्न)=ज्योतिषमें दिनका उतना अंश जितनेमें किसी एक राशिका उदय होता है। एक दिन-रातमें जितने समयतक पृथ्वी एक राशिपर रहती है, उतने समयतक उस राशिका 'लग्न' कहलाता है। राशि बारह हैं—मेष (यह भेंड़के समान

है और इसमें छाछठ तारे हैं), वृष (यह एक सौ एकतालीस ताराओंका समूह बैलके आकारका है), मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन। प्रत्येक तारासमूहकी आकृतिके अनुसार ही उसका नाम है। **ग्रह**=वे नौ तारे जिनकी गति, उदय और अस्तकाल आदिका पता प्राचीन ज्योतिषियोंने लगा लिया था। उनके नाम ये हैं—सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु। **बार**=दिन। **तिथि**=चन्द्रमाकी कलाके घटने या बढ़नेके क्रमके अनुसार गिने जानेवाले महीनेके दिन, जिनके नाम संख्याके अनुसार होते हैं। पक्षोंके अनुसार तिथियाँ भी दो प्रकारकी होती हैं। प्रत्येक पक्षमें पंद्रह तिथियाँ होती हैं—प्रतिपदा, द्वितीया आदि। कृष्णपक्षकी अन्तिम तिथि अमावस्या और शुक्लकी पूर्णिमा कहलाती है। इनके पाँच वर्ग किये गये हैं—प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशीका नाम 'नंदा' है, द्वितीया, सप्तमी और द्वादशीका नाम 'भद्रा' है, तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशीका नाम 'जया' है; चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशीका नाम 'रिक्ता' है और पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा या अमावस्याका नाम 'पूर्णा' है।

अर्थ—योग, लग्न, ग्रह, दिन और तिथि सभी अनुकूल हो गये। जड़ और चेतन (चराचरमात्र) हर्षसे भर गये (क्योंकि) श्रीरामजन्म सुखका मूल है॥ १९०॥

टिप्पणी—१ (क) ***'सकल भए अनुकूल'*** का भाव यह है कि योग, लग्न और ग्रह आदि ये सब-के-सब एक ही कालमें अनुकूल नहीं होते, अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही रहते हैं। तात्पर्य कि जो योगादि प्रतिकूल भी थे वह भी उस समय सब अनुकूल हो गये। इसका कारण बताया कि ***'रामजनम सुखमूल'*** है।

(ख) ***'अनुकूल'*** हुए अर्थात् सब शुभदायक हुए, यथा—***'मास पाख तिथि बार नखत ग्रह योग लगन सुभ ठानी।'*** (गी० १। ४) (ग) ***'चर अरु अचर हर्षजुत'*** इति। यहाँतक ***'भईं हृदय हरषित सुख भारी', 'सकल लोक सुख संपति छाए'*** और ***'चर अरु अचर हर्षजुत'*** इन सबों-(रानियोंका त्रैलोक्यका और जड़ एवं चेतन सभी-) का सुख कहकर तब अन्तमें सबके सुखका कारण रामजन्म बताया। श्रीरामजन्म सुखमूल है, इसीसे सबको सुख हुआ।

नोट—१ श्रीरामजीके अवतारके समय सुकर्मा योग [वा, प्रीतियोग—(मा० म०, वै०)], कर्क लग्न, मेषके सूर्य, मकरका मंगल, तुलाके शनिश्चर, कर्कके बृहस्पति, और मीनके शुक्र इन पाँच परमोच्च ग्रहोंका योग हुआ। यह मण्डलेश्वर योग है। मंगलवार, नवमी तिथि थी। विशेष १९१ (१-२) में देखिये। योग, लग्न, ग्रह आदिका एक धर्म 'अनुकूल होना' वर्णन 'प्रथम तुल्ययोगिता अलङ्कार' है।

नोट—२ यहाँ योगादिक पाँचके नाम देकर सूचित किया कि पञ्चाङ्गमें जो उत्तम विधि है वह सभी अनुकूल हुए।

नोट—३ अचरका हर्ष कहकर तेज, वायु, पृथ्वी, जल, आकाश इन पाँचों तत्त्वोंका प्रभुकी सेवामें तत्पर होना जनाया, जैसा आगे स्वयं ग्रन्थकार लिखते हैं।—***'मध्य दिवस अति सीत न घामा'*** में घामसे तेज, ***'सीतल मंद सुरभि बह बाऊ'*** से वायु, ***'बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा'*** से पृथ्वी और ***'गगन बिमल'*** से आकाश-तत्त्वकी सेवा सूचित करते हैं। (प्र० सं०)। विशेष व्याख्या १९१। ५-६ टि० २ में देखिये।

नौमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥ १॥
मध्य दिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा॥ २॥

शब्दार्थ—**मधुमास**=चैत्र मास। **अभिजित**—नीचे नोटमें देखिये।

अर्थ—नवमी तिथि, पवित्र चैत्रका महीना, शुक्लपक्ष और भगवान्‌का प्रिय अभिजित् नक्षत्र (मुहूर्त) था॥ १॥ दिनका मध्य अर्थात् दोपहरका समय था। न तो बहुत सरदी थी और न बहुत घाम (गरमी) थी। लोगोंको विश्राम देनेवाला पवित्र समय था॥ २॥

टिप्पणी—१ (क) ***'नौमी तिथि—'*** इति। ***'जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल'*** कहकर अब उसीका विवरण करते हैं कि नवमी तिथि थी, इत्यादि। प्रथम ***'नौमी तिथि'*** कहनेका भाव कि भगवान्‌के

अवतारमें तिथि प्रधान है, तिथि ही जयन्ती कहलाती है, तिथिको 'व्रत' होता है। इसीसे प्रथम *'तिथि'* कहा। *'बार'* प्रगट न कहा क्योंकि *'बार'* के सम्बन्धमें अनेक मत हैं—मेरुतन्त्रमें सोमवार है, वही देवतीर्थ स्वामीजी लिखते हैं, यथा—*'अंक अवधि नौमी शशि बासर नखत पुनर्वसु प्रकृति चरे।'* श्रीसूरदासजी अपने रामायणमें बुध लिखते हैं और गोस्वामीजीका मत मंगल है, यथा—*'नवमी भौमबार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥ जेहि दिन रामजन्म श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं॥ बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा।'* इस तरह ग्रन्थकुण्डली रामकुण्डलीसे मिलाकर युक्तिसे *'बार'* कह दिया। गीतावलीमें भी इसी प्रकार युक्तिसे कहा है, यथा—*'चैत चारु नौमी तिथि सित पख मध्य गगन गत भानु। नखत योग ग्रह लगन भले दिन मंगल मोद निधानु॥'* (गी० १। २) (वाल्मीकीय और अध्यात्ममें दिन नहीं लिखा है, केवल तिथि है। वैसे ही मानसमें इस स्थलपर दिनका नाम नहीं है)। (ख) मधुमास अर्थात् चैत्रमास। यह सब मासोंमें पुनीत है ऐसा पुराणोंमें लिखा है। [अध्यात्मरा० में जन्मके नक्षत्र आदि इस प्रकार कहे हैं—**'मधुमासे सिते पक्षे नवम्यां कर्कटे शुभे। पुनर्वस्वृक्षसहिते उच्चस्थे ग्रहपञ्चके॥ मेषं पूषणि संप्राप्ते पुष्पवृष्टिसमाकुले। आविरासीज्जगन्नाथः परमात्मा सनातनः॥'** (१। ३। १४-१५) अर्थात् चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमीके दिन शुभ कर्कलग्नमें पुनर्वसुनक्षत्रके समय जब कि पाँच ग्रह उच्च स्थान तथा सूर्य मेषराशिपर थे तब सनातन परमात्मा जगन्नाथका आविर्भाव हुआ। सन्त श्रीगुरुसहायलालजी लिखते हैं कि मेषराशिस्थित सूर्यके कारण 'पुनीत' कहा है] (ग) मासमें दो पक्ष होते हैं, अतः पक्षका नाम दिया कि शुक्लपक्षमें जन्म हुआ।

नोट—१ *'अभिजित'* इति। *'अभिजित'* का अर्थ है 'विजयी'। इस नक्षत्रमें तीन तारे मिलकर सिंघाड़ेके आकारके होते हैं। यह मुहूर्त ठीक मध्याह्न-समय आता है। बृहज्ज्योतिःसार-(नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ) में अभिजित् मुहूर्त दो प्रकारका बताया गया है। उनमेंसे एक यों है—**'अङ्गुल्याविंशतिः सूर्ये शङ्कुः सोमे च षोडश। कुजे पञ्चदशाङ्गुल्यो बुधवारे चतुर्दश॥ १॥ त्रयोदश गुरोर्वारे द्वादशार्कजशुक्रयोः। शङ्कुमूले यदा छाया मध्याह्ने च प्रजायते॥ २॥ तत्राभिजित्तदाख्यातो घटिकैका स्मृता बुधैः।'** अर्थात् रविवारके दिन बीस अंगुलका शंकु, सोमवारको सोलह अंगुलका, मंगलको पन्द्रह अंगुलका, बुधको चौदह, बृहस्पतिको तेरह, शुक्र और शनिको बारह अंगुलका शंकु (मेख वा खूँटा आदि) घाममें खड़ा करे। जब छाया शंकुमूलके बराबर (अर्थात् अत्यन्त अल्प) हो तबसे एक घड़ीपर्यन्त 'अभिजित्' मुहूर्त होता है।

दूसरे प्रकारके अभिजित् मुहूर्तका उल्लेख मुहूर्तचिन्तामणिमें भी है जो इस प्रकार है—**'गिरिशभुजगमित्राः पित्र्यवस्वम्बुविश्वेऽभिजिदथ च विधातापीन्द्र इन्द्रानलौ च। निर्ऋतिरुदकनाथोऽप्यर्यमाथो भगः स्युः क्रमश इह मुहूर्ता वासरे बाणचन्द्राः॥'** (विवाहप्रकरण ५०) अर्थात् दिनमानके पंद्रह भाग करनेपर लगभग दो-दो दण्डका एक-एक भाग होता है। इस प्रकार सूर्योदयसे प्रारम्भ करके जो दो-दो दण्डके एक-एक मुहूर्त होते हैं उनके क्रमशः नाम ये हैं—आर्द्रा (जिनका देवता गिरिश है), आश्लेषा (भुजग देवता), अनुराधा (मित्र), मघा (पितृ देवता), धनिष्ठा (वसु), पूर्वाषाढ़ा (अंबु), उत्तराषाढ़ा (विश्वे), अभिजित् रोहिणी (विधाता), ज्येष्ठा (इन्द्र), विशाखा (इन्द्रानल), मूल (निर्ऋति), शततारका (वरुण), उत्तराफाल्गुनी (अर्यमा) और पूर्वाफाल्गुनी (भग)। —इस प्रकार भी प्रायः चौदह दण्डके बाद मध्याह्नसमयमें 'अभिजित् मुहूर्त' होता है। अभिजित् मुहूर्त लिखनेका भाव यह है कि इस मुहूर्तमें जन्म होनेसे मनुष्य राजा होता है—**'जातोऽभिजिद् राजा स्यात्।'**

नोट—२ *'हरि प्रीता'* इति। इस शब्दके अर्थमें मतभेद है। (१) साधारण अर्थ तो है—'जो हरिको प्रिय है।' यह मुहूर्त भगवान्‌को प्रिय है इसीसे वे सदा इसी मुहूर्तमें अवतरते हैं। (पं०) (२) हरि=पुनर्वसु नक्षत्र। **प्रीता**=प्रीति नामक योगमें। (मा० म०, मा० त० वि०) वाल्मीकीय और अध्यात्म आदि रामायणोंसे यह स्पष्ट है कि श्रीरामावतार सदा पुनर्वसु नक्षत्रमें होता है, यह अवतारका एक प्रधान नक्षत्र माना जाता है। सम्भवतः इससे 'हरि' शब्दसे पुनर्वसु नक्षत्रका अर्थ लिया गया हो। परंतु ज्योतिषके पण्डितोंसे पूछनेसे यह ज्ञात हुआ कि 'हरि' शब्दसे ज्योतिष-शास्त्रमें श्रवण नक्षत्र ही अभिप्रेत होता है। 'प्रीतियोग' चैत्र शुक्लमें प्रायः द्वितीया वा तृतीयाको आता है और अधिक-से-अधिक षष्ठी और क्वचित् सप्तमीके आगे देखने या सुननेमें नहीं

आता। सुकर्मा योग प्राय: श्रीरामनवमीको रहता है। ☞ तब यह प्रश्न होता है कि फिर *'हरि प्रीता'* का अर्थ क्या है? उत्तर यह हो सकता है कि दो नक्षत्र मिलकर अभिजित् नक्षत्र वा मुहूर्त होता है। उत्तराषाढ़ाका चतुर्थ चरण और श्रवणका प्रथम पंद्रहवाँ भाग मिलकर अभिजित् होता है। यथा **'वैश्वप्रान्त्याङ्घ्रि श्रुतितिथिभागतोऽभिजित्स्यात्।'** (५३) (मुहूर्तचिन्तामणि विवाहप्रकरण)। जन्मके समय इस मुहूर्तका अन्तिम अंश (अर्थात् श्रवणका अंश) रहता है। श्रवण-नक्षत्रका देवता हरि अर्थात् विष्णु हैं; अत: *'हरि प्रीता'* से श्रवण-नक्षत्रका ग्रहण हुआ। इस तरह *'अभिजित हरिप्रीता'* का अर्थ है कि 'अभिजित् मुहूर्तके हरिप्रीता अर्थात् श्रवणांशमें जन्म हुआ अथवा, (३) *'हरि प्रीता'* श्लेषार्थी है। नवमी तिथि आदि सबके साथ भी यह लग सकता है। अर्थात् नवमी तिथि, मधुमास, शुक्लपक्ष और अभिजित् मुहूर्त ये सब हरिको प्रिय हैं। क्योंकि जब-जब श्रीरामावतार होता है तब-तब इसी योगमें होता है। अथवा, (४) हिरण्यकशिपु जो किसीसे जीता नहीं जा सकता था उसे भगवान्ने इसी मुहूर्तमें मारा, इससे इस मुहूर्तको हरिका प्रिय कहा। अथवा, **हरि**=चन्द्रमा। **हरिप्रीता**=जो चन्द्रमाको प्रिय है उस कर्कलग्नमें। (वै०)। वा (५) हरि अर्थात् चन्द्रहोरा भौमवार और प्रीता अर्थात् बालवकरण। चन्द्रहोराका फल है कि शीलवान् होंगे। भौमवारका फल है कि स्वरूपवान् होंगे और बालवकरणका फल है कि अतुलबलसींव होंगे। (वै०)। (६) हरि=सिंहलग्न। **प्रीता**=प्रीति योग। (शीलावृत्त)। और भी कुछ लोगोंने सिंहराशिमें जन्म लिखा है; परंतु कर्क ही प्राय: अन्य सबोंके मतसे निश्चित है।

टिप्पणी—२ *'मध्य दिवस……'* इति। (क) अब इष्टकाल लिखते हैं अभिजित् मुहूर्त ठीक मध्याह्नमें होता है। (ख) *'अति सीत न घामा'* इति। भाव कि शीत भी कम है, घाम भी कम है। *'अति शीत घाम'* से दु:ख होता है। (ग) *'पावन काल'* में जन्म कहकर जनाया कि सबको पवित्र करेंगे। (घ) लोक=लोग, यथा—**'लोकस्तु भुवने जने।'** (इत्यमर:) विश्रामकालमें जन्म कहनेका भाव कि सबको विश्राम देंगे। पुन: अति शीत-घाम नहीं है इसीसे यह काल सबको विश्रामदाता है। कालकी पावनता आगे लिखते हैं। पुन: *'मध्य दिवस'* कहकर *'अति सीत न घामा'* कहनेका भाव कि मध्याह्नकाल है इससे *'अति सीत'* नहीं है और *'अति घाम'* नहीं है इसका कारण आगे लिखते हैं कि *'सीतल मंद सुरभि बह बाऊ।'* शीतल वायु चलती है अतएव गरमी नहीं है।

वि० त्रि०—*'मध्य दिवस……'* इति। उजालेकी पराकाष्ठा दोपहरका समय। प्रात:काल होता तो शीत अधिक होता जाड़ेका शीत सह्य है पर चैत्रका शीत असह्य होता है, और मध्याह्नोत्तर गर्मी बढ़ जाती है। मध्याह्नका समय पवित्र है। इसमें संसार विश्राम करता है और प्रभु *'अखिल लोक दायक बिश्रामा'* हैं, अत: उनका जन्मकाल भी विश्रामदायक होना ही चाहिये।

नोट—३ श्रीदेवतीर्थस्वामीजी लिखते हैं—*'मंगलमय प्रभु जन्म समयमें अति उत्तम दस जोग परे। अपने-अपने नाम सदृश फल दसौ जनावत खरे-खरे॥ १॥ ऋतुपति ऋतु पुनि आदि मास मधु शुक्लपक्ष नित धर्म भरे। अंक अवधि नवमी ससिबासर नखत पुनर्वसु प्रकृति चरे॥ २॥ जोग सुकर्म समय मध्यं दिन रवि प्रताप जहँ अति पसरे। जयदाता अभिजित मुहूर्त बर परम उच्च ग्रह पाँच ढरे॥ ३॥ नवमि पुनर्वसु परम उच्च रवि कबहुँ न तीनो संग अरे। एहि ते देवरूप कछु लखिये गाय गाय गुन पतित तरे॥ ४॥'* (रामसुधायोगग्रन्थे)। अर्थात् मङ्गलमय श्रीरामजन्मसमयमें दस उत्तम योग पड़े थे। ये सब योग अपने-अपने नामके सदृश फल जना रहे हैं। इस तरह कि—(१) ऋतुपति वसन्त सब ऋतुओंका स्वामी वा राजा है और उसमें सर्दी-गर्मी समान रहती है। इससे जनाते हैं कि आप समस्त ब्रह्माण्डोंके राजा और सबको सम हैं, विषम किसीको नहीं। यथा—*'बैरिहु राम बड़ाई करहीं।'* (२) मधुमास अर्थात् चैत्रमास संवत्सरका आदि मास है, इसीसे संवत्का प्रारम्भ होता है। इससे जनाया कि काल, कर्म, गुण, स्वभाव, माया और ईश्वर जो जगत्के आदि हैं उन सबोंके भी ये आदि हैं। (अर्थात् ये आदिपुरुष हैं।) (३) शुक्लपक्ष स्वच्छ होता है, इससे जनाया कि आपके मातृ-पितृ दोनों पक्ष अथवा आपके निर्गुण और सगुण दोनों स्वरूप स्वच्छ हैं, स्वच्छ धर्मसे पूर्ण हैं। (४) 'नवमी' से जनाया कि जैसे 'नव' का अंक अंकोंकी सीमा है, इसके

आगे कोई अंक नहीं, वैसे ही श्रीरामजी सबकी हद्द हैं, सीमा हैं, सबसे परे हैं, आपसे परे कोई नहीं है। (५) *'ससि बासर'* (अर्थात् चन्द्रवार। श्रीकाष्ठजिह्वस्वामीके मतसे जन्म सोमवारको हुआ। मेरुतन्त्रका यही मत है)। चन्द्रवारका भाव कि जैसे चन्द्र आह्लादकारक, प्रकाशक और ओषधादिका पोषक है वैसे ही प्रभु सबके आनन्ददाता, प्रकाशक आदि हैं, यथा—*'जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।'* *'आनँदहू के आनँद दाता।'* (६) **'पुनर्वसु'** नक्षत्रका भाव कि यह पुनः धन-सम्पत्तिका देनेवाला अथवा पुनः बसानेवाला है; वैसे ही श्रीरामजीके द्वारा देवताओंकी सम्पत्ति बहुरैगी और सुग्रीवादि उजड़े हुए पुनः बसेंगे। *'प्रकृति चरे'* का भाव कि पुनर्वसु नक्षत्र अपने प्रकृतिसे चर अर्थात् विचरणशील प्रकृतिका है; वैसे ही श्रीरामजी विचर-विचरकर लोगोंको सुख देंगे। विश्वामित्रके साथ फिरते हुए उनको सुखी करेंगे, दण्डकारण्यमें विचरकर ऋषियों आदिको सुख देंगे—*'सकल मुनिन्हके आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह।'* (३। ९) इसी तरह लंकातक फिरेंगे और जलचर, थलचर, नभचर सभीको सुखी करेंगे। (७) *'सुकर्म योग'* से जनाया कि ये दुष्टोंका नाश करके सद्धर्मका प्रचार करेंगे, सदा सत्कर्ममें रत रहेंगे। अथवा जो इनको भजेगा वह सुकर्ममें लगेगा। (८) *'मध्यं दिन रबि प्रताप जहँ अति पसरे'* अर्थात् मध्याह्नकालमें सूर्यका प्रताप पूर्ण फैला रहता है। वैसे ही आपका प्रताप ब्रह्माण्डभरमें प्रसरित रहेगा। (९) अभिजित् मुहूर्त अत्यन्त जयदाता है, वैसे ही आप विजयी होंगे और अपने भक्तोंको सदा जय प्राप्त कराते रहेंगे। (१०) *'परम उच्च ग्रह पाँच ढरे'* इति। परम उच्च पाँच ग्रहोंके पड़नेका भाव यह है कि इनके नाम, रूप, लीला, गुण और धाम—ये पाँचों परम उच्च हैं। (उच्च ग्रहोंके नाम दोहा १९० में दिये जा चुके हैं)।

दस योगसे जनाया कि जो दसों दिशाओंमें व्याप्त है तथा चारों वेद और छहों शास्त्र जिसका यश गाते हैं, यह उन्हींका अवतार है। नवमी तिथि, पुनर्वसु और मेषके सूर्य कभी एकत्र नहीं होते। (इसका विशेष विवरण दोहा १९५ में देखिये)। यह योग श्रीरामजन्मके अवसरहीपर एकत्र हुए थे और कभी नहीं। इस योगसे प्रभुका 'अघटित घटनापटीयसी' होना सिद्ध हुआ और यह निश्चित हुआ कि इनके गुण गा-गाकर पतित तरे, तरते हैं और तरेंगे। (रा० प्र०)

वैजनाथजी लिखते हैं कि श्रीरामजन्ममें षोडश योग पड़े हैं—(१) प्रभवनामक संवत्सर (जिसका फल है कि 'लोककी उत्पत्ति-पालन करनेवाला होगा')। (२) उत्तरायण (जिसका फल है—'सहज मुक्तिदायक होनेवाला')। (३—७) नवमी, चैत्र, शुक्लपक्ष, अभिजित्, वसन्त (ऋतुराज)। (८) भौमवार। (९) चन्द्रहोरा। (१०) बालवकरण। (११—१३) पुनर्वसु, सुकर्मयोग, मध्याह्नकाल। (१४) मेषके सूर्य (जिसका फल है वीरोंमें शिरोमणि होना)। (१५) कर्कलग्न। (१६) पञ्चग्रह परमोच्च (फल मण्डलेश्वर होना है)।—षोडश योगसे जनाया कि पूर्ण षोडशकलाके अवतार हैं।

वाल्मीकीय भूषण टीकामें श्रीरामजन्मपर जो उच्च ग्रह पड़े थे, उनके फल इस प्रकार लिखे हैं—

जिसका एक ग्रह उच्चस्थानमें है उसके सर्व अरिष्टोंका नाश होता है। जिसके दो ग्रह उच्च हों वह सामन्त, तीन उच्च ग्रहोंवाला महीपति, चारवाला सम्राट् और जिसके पाँच ग्रह उच्च हों वह त्रैलोक्यनायक होता है। यथा—'**एकग्रहोच्चे जातस्य सर्वारिष्टविनाशनम्। द्विग्रहोच्च तु सामान्तस्त्रिग्रहोच्चे महीपतिः॥ चतुर्ग्रहोच्चे सम्राट् स्यात् पञ्चोच्चे लोकनायकः।**' श्रीरामजन्मपर सूर्य, मंगल, गुरु, शुक्र और शनि—ये पाँच ग्रह उच्चके पड़े थे। सूर्यके उच्च होनेसे मनुष्य सेनापति होता है, मंगल उच्च होनेसे धनमें राजा, गुरु उच्च होनेसे धनी और राज्याधिपति, शुक्र उच्च होनेसे राजश्रीको प्राप्त और शनिके उच्च होनेसे राजाके तुल्य होता है। जन्मके समय गुरु-चन्द्र-योग और रवि-बुध-योग पड़े हैं। प्रथम योगका फल है कि मनुष्य दृढ़ सौहृदवाला, विनीत, बन्धुवर्गका सम्मान करनेवाला, धनेश, गुणवान्, शीलवान् और देवता तथा ब्राह्मणोंका माननेवाला होता है। रवि-बुध-योगका फल है कि वेदान्तवेत्ता, स्थिर सम्पत्तिवाला, यशस्वी, आर्य, राजाओं तथा सज्जनोंको प्रिय, रूपवान् और विद्यावान् होता है। चैत्रमासमें जन्म होनेसे मधुरभाषी और अहंकार सुखान्वित होता है। नवमीका फल है कि भुविख्याता, इन्द्रियजित् , शूर, पण्डित, सर्वभूतोंसे निर्भय हो। पुनर्वसुका फल

है कि सहिष्णु (सहनशील), गूढ़वृत्ति (गम्भीर स्वभाव), लीला-प्रिय, निर्लोभ, अल्पमें संतोष और शीघ्र चलनेवाला हो। पुनर्वसुके चतुर्थ चरणमें जन्म होनेसे अत्यन्त रूपवान्, सज्जन, प्रिय दर्शन, लक्ष्मीवान् और प्रियवादी होता है। लग्नमें गुरु पड़नेसे कवि, गवैया, प्रियदर्शन, सुखी, दाता, भोक्ता, राजाओंसे पूजित पवित्रात्मा और देवद्विजाराधनमें तत्पर होता है। (सर्ग १८ श्लोक ८)

जन्मकुण्डली (वै०)

५ ४ ३ २ ६ रा. बृ. चं. बु. ७ श. १ सू. ८ १० मं. १२ शु.के. ९ ११
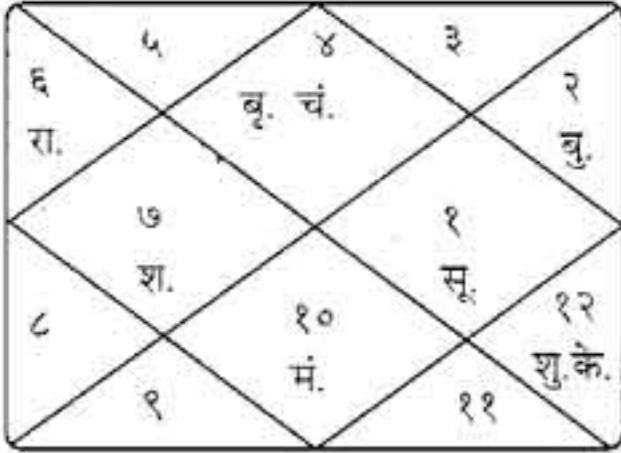
(पं० ज्वालाप्रसाद)
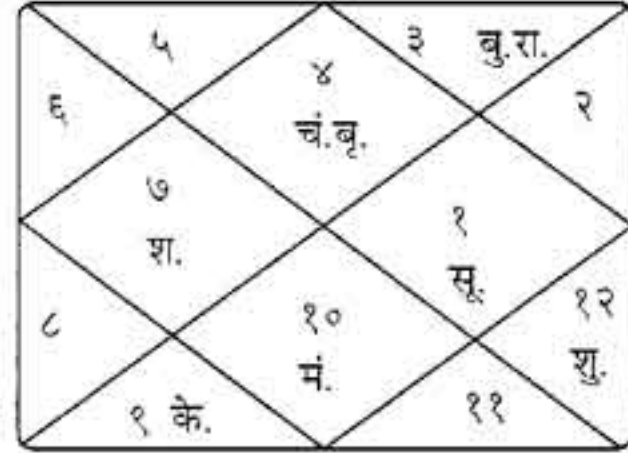
इन कुण्डलियोंसे पुष्य नक्षत्रमें जन्म होना चाहिये पर पुनर्वसु नक्षत्र ही वाल्मीकि आदिमें लिखा है। प्रभुकी कुण्डली भी अघटितघटनापटीयसी वसिष्ठजीने ही बनायी होगी, आजके ज्योतिषीके सामर्थ्यसे बाहरकी बात है। परंतु जो कुण्डलियाँ लोगोंने दी हैं वह हमने उद्धृत कर दी हैं।

प० प० प्र०-१ अभिजित् नक्षत्र चैत्रशुक्ल ९ को नहीं आ सकता, अतएव 'अभिजित मुहूर्त' ही यहाँ समझना चाहिये। यह १५ मुहूर्तोंमेंसे एक है। यथा— **'वैरागनामा विजयः सिताख्यः सावित्रमैत्रावभिजिद् बलश्च। सर्वार्थसिद्ध्यै कथिता मुहूर्ता मौहूर्तिकैरत्र पुराणविद्भिः॥'** (मुहूर्तसिन्धु) ये मुहूर्त सर्वकार्योंके लिये शुभ हैं। २-श्रीरामजन्मकालीन ग्रहादि योग। पुनर्वसु नक्षत्र, कर्कराशिस्थ सूर्य, नवमी तिथि और शुक्लपक्ष इत्यादि उल्लेख अनेक रामायणोंमें हैं पर आजकल जिस पद्धतिसे तिथि आदिकी गणना करते हैं, उससे इन चार बातोंका एक समय अस्तित्व असम्भव है।

एक तिथि १२ अंशोंकी होती है। सूर्य और चन्द्रमें १२ अंशोंका अन्तर होनेपर एक तिथि पूर्ण होती है। सूर्य और चन्द्रमें जब बिलकुल अंशकला, विकलात्मक अन्तर नहीं रहता तब अमावस्या पूर्ण होती है। अतः अष्टमीके पूर्ण होनेके लिये सूर्यके आगे ९६ अंश चन्द्रमा चाहिये, तत्पश्चात् नवमीका आरम्भ होगा। सूर्य मेषराशिके पहले अंशमें हैं, ऐसा माना जाय तो भी १+९६=९७ अंशमें चन्द्रमा होगा तब नवमीका आरम्भ हो सकता है, पर चन्द्र पुनर्वसु नक्षत्रमें कर्कराशिका है। मेष+वृषभ+मिथुन=९०° अंश हुए। अश्विनीसे पुनर्वसुके तीन चरण=९०° अंश होते हैं; पुनर्वसुके अन्तिम कलामें चन्द्र है, ऐसा माना जाय तो भी ९०°+३-२०=९३° अंश २० कला ही अन्तर पड़ता है; नवमीका आरम्भ नहीं हो सकता है। यह तब शक्य हो सकता है जब राशिविभागों और ग्रहोंकी गणना सायन पद्धतिसे की जाय और नक्षत्र-गणना नक्षत्र-विभागके अनुसार हो। यह शङ्का 'केसरी' पत्रमें एक बार इस दासने प्रकट की थी पर किसीने भी समाधान नहीं किया। हिन्दी ज्योतिषी इसपर विचार करके समाधान करनेका प्रयत्न करें तो अच्छा होगा।

वि० त्रि०-श्रीरामावतार क्या है, यह रामायणोंसे ही नहीं मालूम होता, जो कि उनके गुणानुवादके लिये बने ही हैं; बल्कि वह अलौकिकी ग्रहस्थिति बतलाती है जिसका फलादेश महर्षि भृगुने किया है। पाठकोंकी जानकारीके लिये हिन्दी-अनुवादसहित फलादेश निम्नलिखित है—

अथ वेदसागरस्तवः

(पूर्णत्रिंशत्क्षेपा च) कर्कटे चन्द्रवाक्पती। कन्यायां सिंहिकापुत्रस्तुलास्थो रविनन्दनः॥ १॥
पाताले मेदिनीपुत्रो वृषस्थश्चन्द्रमासुतः। आकाशे मेषभे सूर्यो झषस्थौ केतुभार्गवौ॥ २॥
सर्वग्रहानुमानेन योगोऽयं वेदसागरः। वेदसागरके जातः पूर्वजन्मनि भार्गव॥ ३॥
पूर्णब्रह्म स्वयं कर्ता सप्रकाशो निरञ्जनः। निर्गुणो निर्विकल्पश्च निरीहः सच्चिदात्मकः॥ ४॥

गिरा ज्ञानं च गोतीत इच्छाकारी स्वरूपधृक् । विना घ्राणं सदाघ्राणी विना नेत्रे च वीक्षकः॥ ५॥
अकर्णेन श्रुतं सर्वं गिराहीनं च भाषितम् । करहीनं कृतं सर्वं कर्मादिकं शुभाशुभम्॥ ६॥
पदहीना गतिः सर्वा कुशला सकलाः क्रियाः। स्वरूपे रूपहीनश्च समर्थः सर्वकर्मसु॥ ७॥
त्रैविद्यस्त्रिगुणः कालस्त्रिलोकी सचराचरः। महेन्द्रो देवताः सर्वा नागकिन्नरपन्नगाः॥ ८॥
सिद्धविद्याधरो यक्षा गन्धर्वाः सकलाः कवेः। राक्षसा दानवाः सर्वे मानवा वानराण्डजाः॥ ९॥
सागराश्च खगा वृक्षाः पशुकीटादयस्तथा। शैला नद्यः कलाः सर्वा मोहमायादिकाः क्रियाः॥ १०॥
इच्छा माया त्रिवेदाश्च निर्मिता विविधाः क्रियाः। शरण्यः सर्वदा शान्तः अलक्ष्यो लक्षकः सदा॥ ११॥
जरामरणहीनश्च महाकालस्य' चान्तकः। सर्वं सर्वेण हीनोऽपि सचराचरदर्शकः॥ १२॥
पूर्वापरक्रिया ज्ञानी शृणु शुक्र न चान्यथा। प्रेरितः सर्वदेवैश्च कालान्तरगते कवे॥ १३॥
धरित्री ब्रह्मणो लोको जगाम दुःखपीडिता। शिवो ब्रह्मा सुराः सर्वे प्रार्थयाञ्चक्रतुर्मुहुः॥ १४॥
सुदुःखं वचनं श्रुत्वा देववाणी भवेत् कवे। धैर्य्यमाध्वं सुराः सर्वे प्रार्थना सफला भवेत्॥ १५॥
श्रुत्वा हृष्टाः सुराः सर्वे जगाम क्षितिमण्डले। नरवानररूपं च धृत्वा ब्रह्मेच्छया कवे॥ १६॥
यत्र तत्र सुराः सर्वे हरिदर्शनमानसाः। अधर्मनिरताँल्लोकान् दृष्ट्वा कष्टेन पीडितान्॥ १७॥
तत इच्छा प्रभावेण गोब्राह्मणसुरार्थकम्। मायामानुषरूपेण जगदानन्दहेतवे॥ १८॥
आजगाम धरापृष्ठे कोशलाख्ये महापुरे। इक्ष्वाकुवंशे भो शुक्र भूत्वा मानुषरूपधृक्॥ १९॥
सरय्वा दक्षिणे भागे महापुण्ये च क्षेत्रके। मधुमासे च धवले नवम्यां भौमवासरे॥ २०॥
पुनर्वसौ च सौभाग्ये मातृगर्भात्समुद्भवः। मन्मथानां च कोटीनां सुन्दरः सागरोपमः॥ २१॥
श्यामाङ्गं मेघवर्णाभं मृगाक्षं कान्तिमत्परम्। भव्याङ्गं भव्यवर्णं च सर्वसौन्दर्यसागरम्॥ २२॥
सर्वाङ्गेषु मनोहरमतिबलं शान्तमूर्तिं प्रशान्तम्। वन्दे लोकाभिरामं मुनिजनसहितं सेव्यमानं शरण्यम्॥ २३॥
कोटिवाक्पतिश्रीमांश्च कोटिभास्करभास्वरः। दयाकोटिसागरोऽसौ यशःशीलपराक्रमी॥ २४॥
सर्वसारः सदा शान्तः वेदसारो हि भार्गव। दशवर्षसहस्राणि भूतले स्थितिमानसौ॥ २५॥
चतुर्दशसमाः शुक्र अभ्रमच्च वने वने। राक्षसानां वधार्थाय दुष्टानां निग्रहाय च॥ २६॥
प्रादुर्भूतो जगन्नाथो मायामानुषवत्कवे। अयोध्यानगरे शुक्र बहुवत्सरसहस्रकम्॥ २७॥
नानामुनिगणैर्युक्तो विहरन् धर्मवत्सलः। सर्वे साकं स्वमायाभिरन्तर्धानमियात्कवे॥ २८॥
इच्छया लीलया युक्तः स्वीये लोके वसेत्सदा। मायाक्रीडा पुनर्भूयात् काले काले युगे युगे॥ २९॥
लोकानां च हितार्थाय कलौ चैव विशेषतः। पठनाच्छ्रवणात्पुण्यं कल्याणं सततं भवेत्॥ ३०॥
निर्भयं नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं न संशयः।

श्रीभृगुसंहितायां श्रीभृगुशुक्रसंवादे षट्त्रिंशतिक्षेपान्तरे वेदसागरफलं समाप्तम्॥

वेदसागरस्तवका हिन्दी-अनुवाद—कर्कके चन्द्र और गुरु, कन्याके राहु, तुलाके शनि, मकरके मंगल, वृषके बुध, मेषके सूर्य, मीनके शुक्र और केतु—यह वेदसागरयोग है। हे भार्गव! वेदसागरमें उत्पन्न होनेवाला, पूर्वजन्ममें पूर्णब्रह्म, स्वयं कर्ता, स्वप्रकाश, निरञ्जन, निर्गुण, निर्विकल्प, निरीह, सच्चिदात्मा, गिराज्ञानगोऽतीत, इच्छानुकूल स्वरूप धारण करनेवाला था। बिना घ्राणके सूँघता था, बिना पैरके चलता था। स्वरूपसे रूपहीन होनेपर भी सब कार्योंमें समर्थ था। वही वेदत्रयीरूप था, त्रिगुण था, कालरूप भी वही था। चर और अचर तीनों लोकरूप भी वही था। महेन्द्र, देवता, नाग, किन्नर, पन्नग, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्वरूप भी वही था। राक्षस, दानव, मनुष्य, बन्दर, अण्डज, सागर, पक्षी, वृक्ष, पशु, कीटादिक, पर्वत, नदी—सब उसकी कला है, मोहादिक क्रियाएँ हैं। उसने इच्छा, माया, तीनों वेदों और क्रियाकलापको बनाया।

वह सदा शान्त, शरण्य, अलक्ष्य होनेपर भी सदा लक्षक है। वह जरा-मरण-विहीन है और महाकालका भी काल है। सबसे हीन होनेपर भी सब कुछ है, चराचरका दर्शक है। हे शुक्रजी! सुनो! वह पहिली-पिछली क्रियाओंको जानता है, इसमें सन्देह नहीं। हे कवि! पूर्वकालमें सब देवताओंसे प्रेरित होकर

दुःखी पृथ्वी ब्रह्मलोकको गयी। शिव, ब्रह्मा तथा सब देवताओंने बार-बार प्रार्थना की। हे कवि! आर्तवाणी सुनकर देववाणी हुई—हे देवताओ! धैर्य धारण करो, तुम लोगोंकी प्रार्थना सफल हुई! यह सुनकर देवतालोग प्रसन्न होकर पृथ्वीमण्डलमें गये। ब्रह्माजीकी इच्छासे सबने वानरका रूप धारण किया और जहाँ-तहाँ हरिदर्शनकी लालसासे ठहरे।

संसारमें अधर्ममें लगे हुए लोगोंको कष्टसे पीड़ित देखकर इच्छाके प्रभावसे गो, ब्राह्मण और देवताके लिये मायासे मनुष्यरूप धारण करके जगत्‌के आनन्दके लिये पृथ्वीपर—कोशलपुरमें, हे शुक्र! इक्ष्वाकुवंशमें सरयूके दक्षिण भागमें अवतीर्ण हुए। चैत्र सुदी नवमीको मंगलवार, पुनर्वसु नक्षत्रमें उत्पन्न हुए—कोटिकाम-सी सुन्दरता, मेघवर्ण, श्यामाङ्ग, मृगाक्ष, परम कान्तिमान्, भव्याङ्ग, भव्यवर्ण, सभी सुन्दरताओंके समुद्र, उनके सभी अङ्गोंमें मनोहरता थी, अति बलवान् थे, शान्त, अति प्रसन्न, लोकको सुख देनेवाले मुनिजनके सहित, सेव्यमान और शरण्यकी मैं वन्दना करता हूँ। वे करोड़ों वाक्पतिके समान श्रीमान् हैं, करोड़ों सूर्यके भी सूर्य हैं, करोड़ों दयाके समुद्रोंके समान हैं, बड़े यशस्वी, शीलवान् और पराक्रमी हैं। हे भार्गव! वे सर्वसार, सदा शान्त और वेदसार हैं। दस सहस्र वर्षतक पृथ्वीपर थे। हे शुक्र! चौदह वर्षोंतक वन-वनमें घूमते रहे। राक्षसोंके वध और दुष्टोंके निग्रहके लिये मायामानुषरूपसे जगन्नाथका प्रादुर्भाव हुआ था। अनेक सहस्र वर्षोंतक वे धर्मवत्सल मुनिलोगोंके साथ विहार करते थे। हे कवि! तत्पश्चात् सबके साथ अपनी मायासे अन्तर्धान हो गये। इच्छासे लीलायुक्त होकर अपने लोकमें सदा बसते हैं। लीला-मायासे फिर काल पाकर युग-युगमें लोकके हितके लिये विशेषतः कलियुगमें फिर होवेंगे।—इसके पढ़नेसे, सुननेसे सदा पुण्य और कल्याण होता है, निर्भयता प्राप्त होती है। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं।

सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। हरषित सुर संतन मन चाऊ॥ ३॥
बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा। स्रवहिं सकल सरितामृतधारा॥ ४॥

शब्दार्थ—**सुरभि**=सुगन्धित। **बाऊ**=वायु। **चाऊ**=चाव, उत्साह। **मनिआरा** (मणि-आकर)=मणियोंकी खानोंसे युक्त। **कुसुमित**=पुष्पित, फूलोंसे युक्त, फूले हुए। **स्रवना**=बहाना। **अमृत**=मधुर जल।

अर्थ—(सब लोगोंका विश्रामदाता पावन काल है यह कहकर अब वह विश्राम कहते हैं कि) शीतल, मन्द (धीमी) और सुगन्धित वायु चल रही है। देवता हर्षित (प्रसन्न एवं आनन्दित) हैं। सन्तोंके मनमें आनन्द उमँग रहा है॥ ३॥ वन फूले हुए हैं, पर्वतोंके समूह मणियोंकी खानों एवं मणियोंसे युक्त हो गये। अर्थात् पर्वतोंपर मणियोंकी खानें प्रकट हो गयीं (जिससे पर्वत भी जगमगाने लगे हैं)। सभी नदियाँ अमृतकी धारा बहा रही हैं॥ ४॥

नोट—१ पं० रामकुमारजी *'स्रवहिं सकल सरितामृतधारा'* का अर्थ करते हैं—'सब पर्वत अमृत अर्थात् मधुर जलकी नदी स्रवते हैं।' अमृत=मधुर जल, यथा—'**अमृतं मधुरं जलम् इत्यनेकार्थे**।'

नोट—२ '**मनिआरा**' का अर्थ शब्द-सागरमें 'देदीप्यमान, शोभायुक्त, सुहावना, चमकीला' दिया है। पर यहाँ यह अर्थ ठीक नहीं जँचते। मनिआरा शब्द मणि+आरा प्रत्ययसे मिलकर बना है। इस प्रकार, मणिआरा=मणियुक्त, मणिवाला। अथवा मणिआरा=मणिआकर वा मणिआकरयुक्त—यह अर्थ इस प्रसङ्गकी जोड़वाले श्रीगिरिजा-जन्म-प्रसङ्गसे मिलान करनेसे ठीक जान पड़ते हैं। वहाँ जो कहा है कि ***'प्रगटीं सुंदर सैल पर मनि आकर बहु भाँति'*** वही भाव ***'गिरिगन मनिआरा'*** का है।

टिप्पणी—१ (क) ऊपर जो कहा था कि ***'पावन काल लोक बिश्रामा'*** और ***'चर अरु अचर हर्ष जुत'*** उन्हींका यहाँ विवरण करते हैं। शीतल, मन्द और सुगन्धित वायुका चलना विश्राम और शान्तिका देनेवाला होता है। सुर और सन्त विशेष दुःखी थे, यथा—***'सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका', 'मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा', 'निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए॥'*** सो वे सब सुखी हुए। चाऊ (चाव)=प्रसन्नता, आनन्द, हर्ष, उमङ्ग,

अनुराग। दोहेमें प्रथम चर शब्द है तब अचर; उसी क्रमसे यहाँ प्रथम सुर और सन्तोंका सुख कहा। ये 'चर' हैं। आगे '*बन कुसुमित*—' यह अचरका हर्ष कहते हैं। (ख) सुर और सन्तोंके मनमें हर्ष है, इस कथनका तात्पर्य यह है कि सुरके विपर्ययमें असुर और सन्तके विपर्ययमें खल, ये दुःखी हुए; यथा—'***सुखी भए सुर-संत-भूमिसुर खलगन मन मलिनाई। सबइ सुमन बिकसत रबि निकसत कुमुद बिपिन बिलखाई॥***' (गी० १। १) '***अमर-नाग-मुनि मनुज सपरिजन बिगत बिषाद गलानी। मिलेहि माँझ रावन रजनीचर*** (रजधानी?) ***लंक संक अकुलानी।***' (गी० १। ४) [अथवा सुर हर्षित हुए क्योंकि राक्षसोंके नाशक प्रभु प्रकट हुए, अब रावणजनित क्लेश मिटेगा और सन्तोंके मनमें आनन्दकी वृद्धि हुई कि जिसको शिवादि ध्यानमें नहीं पाते उनके प्रत्यक्ष दर्शन होंगे। (वै०, रा० प्र०)] (ग) यहाँ प्रथम '***सीतल मंद सुरभि बह बाऊ***' लिखकर तब तीसरे चरणमें जाकर '***बन कुसुमित गिरिगन***—' इत्यादि लिखकर जनाया कि पवनके शीतल, मन्द और सुगन्धित होनेके कारण '***बन कुसुमित***' और '***सरितामृत धारा***' नहीं है अर्थात् यहाँ जो पवन चल रहा है वह वनकी आड़मेंसे आनेके कारण मन्द हो यह बात यहाँ नहीं है और न फूलोंका स्पर्श होनेसे वह सुगन्धयुक्त है तथा नदियोंके जलके स्पर्शसे उसमें शीतलता हो सो भी बात नहीं है; यह वायु स्वाभाविक ही शीतल, मन्द और सुगन्धित थी, किसी कारणसे शीतल आदि नहीं है। प्रभुकी सेवाके लिये वन कुसुमित हो गये, शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु चलने लगी, इत्यादि।

प० प० प्र०—१ 'शीतल मंद सुरभि वायु और वन कुसुमित' यह तो वसन्त ऋतुका सामान्य लक्षण है। इसमें अवतारका वैशिष्ट्य ही क्या है?' इस शंकाका समाधान '***संतन मन चाऊ***' से कहा है। वसन्त तो '***काम कृसानु बढ़ावनिहारा***' होता है, उससे सन्तोंके मनमें चाव नहीं होता, कामियोंमें चाव होता है। इस समय सन्तोंको ऐसा अनुभव हो रहा है कि 'शीतल मंद सुगन्ध वायु' भक्तिरसको बढ़ानेवाला है, अतः वायुका स्वभाव रामजन्मपर बदल गया है। २ कामदेवनिर्मित वसन्तवर्णनमें वृक्षोंका कुसुमित होना कहा गया है, यथा—'***कुसुमित नव तरु राजि बिराजा।***' (१। ८६। ६) इसी तरह अरण्यकाण्डमें भी वसन्त-वर्णनमें '***बिबिध भाँति फूले तरु नाना।***' (३। ३८। ३) कहा गया है। किन्तु यहाँ '***तरु कुसुमित***' न कहकर '***बन कुसुमित***' कहा गया। यह भेद करके जनाया कि वनके सभी वृक्ष फूलोंसे ऐसे लद गये हैं कि वृक्षादि कुछ देखनेहीमें नहीं आते, वनमें केवल फूल-ही-फूल दीखते हैं।

वि० त्रि०—'***हरषित सुर संतन्ह मन चाऊ***' से दैव सर्गका आनन्दोद्रेक कहा, आसुरका नहीं। '***चर अरु अचर हर्षयुत***' से सृष्टिमात्रका सत्वोद्रेक कहा।

टिप्पणी—२ (क) '***बन कुसुमित***—' इति। '***बन***' कथनसे अनेक जातिके वृक्षोंका ग्रहण हुआ। '***बन कुसुमित***' अर्थात् नाना जातिके वृक्ष फूले हैं, यथा—'*सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति।*' (१। ६५) *(ख)* '***स्रवहिं सकल सरितामृतधारा***' इति। पहाड़से नदीकी उत्पत्ति है, इसीसे पहाड़को कहकर तब नदीकी उत्पत्ति कही; यथा—'***भुवन चारि दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी॥ रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ आई।***' (२१)। '***अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहु रोष तरंगिनि बाढ़ी॥ पाप पहार प्रगट भइ सोई।***' (२। ३४) '***प्रगटीं सुंदर सैल पर मनि आकर बहु भाँति। सरिता सब पुनीत जलु बहहीं।***' (१। ६५) '***स्रवहिं सयल जनु निर्झर भारी। सोनित सर कादर भयकारी॥***' (६। ८६) इत्यादि—तथा यहाँ क्रमसे वर्णन किया। (ग) '***बन कुसुमित***' कहकर '***गिरिगन मनिआरा***' कहनेका भाव कि पर्वतोंपर वृक्षोंके ऊपर फूल फूले हैं और वृक्षोंके नीचे पहाड़पर मणियाँ बिथर रही हैं तथा पहाड़के नीचे अमृतधारा नदी बह रही है। (घ) [पुनः '***गिरिगन मनिआरा***' कहनेका भाव कि मणियोंके खानोंके प्रकट हो जानेसे सब लोग धनवान् हो गये और नदियोंमें अमृतजल बहनेसे सब स्नान-पानसे सुखी हुए। (वै०) अथवा, पुष्पाञ्जलि देनेके लिये वन कुसुमित हुए, श्रीरघुनाथजीको नजर-भेंट देनेके लिये गिरिगण मणिखानियुक्त हुए और अर्घ्य, आचमन आदि देनेके लिये नदियाँ अमृतसमान जल बहने लगीं। (रा० प्र०)] (ङ) यहाँ प्रथम उल्लास अलङ्कार है।

नोट—३ प० प० प्र०—इन सबोंमें वायु ही बड़भागी है, यह सूतिकागृहतक पहुँचेगा। वन और सरित

स्थावर हैं। वायु मन्द-मन्द चल रही है, इसलिये वे पुष्पोंको वहाँतक नहीं पहुँचा सकते, अतः वनने सुगन्ध भेंटमें भेज दिया और सरिताने अपने जलकी शीतलताको वायुके साथ प्रभुकी सेवामें भेज दिया।

नोट—४ वसन्तवर्णनमें प्रथम कुसुमित वृक्षोंका वर्णन होता है तब त्रिविध वायुका। १-८६-६, १। १२६। २-३, ३। ४०। ७-८ देखिये। पर यहाँ क्रमभंग है और बीचमें सुर-संतोंका वर्णन है। इससे जनाया कि ब्रह्मलोकसे त्रिविध वायु तथा इन्द्रलोक और नन्दनवनकी वायु जब नीचेकी तरफ बहने लगी तब ब्रह्मलोकसे इन्द्रलोकतकके सुरोंने जान लिया कि भगवान्‌के प्राकट्यका अवसर आ गया। अतः उनको हर्ष हुआ, केवल त्रिविध वायुसे हर्ष नहीं हुआ क्योंकि वह तो वहाँ सदा सुखद बहता ही है। जब वह वायु श्रीअयोध्याजीमें पहुँचा और भक्तिरस बढ़ानेवाला ठहरा तब संतोंने जान लिया जिससे उनके मनमें उत्साह बढ़ा।

सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि बिमाना॥ ५॥

गगन बिमल संकुल सुर जूथा। गावहिं गुन गंधर्ब बरूथा॥ ६॥

अर्थ—जब ब्रह्माजीने वह (प्रभुके प्रकट होनेका) अवसर जाना तब (वे और उनके साथ) समस्त देवता विमान सजा-सजाकर चले॥ ५॥ निर्मल आकाश देवसमाजोंसे भर गया, गन्धर्वोंके दल गुणगान करने लगे॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) यहाँतक प्रभुके प्रगट होनेका अवसर कहा। *'जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ'* उपक्रम है और *'सो अवसर बिरंचि'* उपसंहार है। (ख) *'बिरंचि जब जाना'* का भाव कि ब्रह्माजीके जाननेसे ही वह अवसर निश्चित हुआ। *'सकल सुर'* कहनेका भाव कि सभी देवता भगवान्‌के सेवक हैं। (ग) *'सो अवसर'* अर्थात् जिसका उल्लेख ऊपर करते आ रहे हैं। अर्थात् जिस अवसरमें काल, पञ्चतत्त्व और चराचरमात्र प्रभुकी सेवा करने लगते हैं, उस अवसरमें उनका आविर्भाव होता है। इस समय ये सब सेवामें तत्पर हैं।—*'जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।'* (१९०) यह कालकी सेवा कही, आगे टिप्पणी २ में पञ्चतत्त्वकी सेवा दिखायी है। *'सीतल मंद सुरभि बह बाऊ।'* से लेकर *'सरितामृतधारा।'* तक चराचरकी सेवा कही, इत्यादि—उस समयकी विलक्षणतासे विरञ्चि समझ गये कि प्रभु प्रकट होनेको हैं, उनके ही प्रकट होनेके समय यह सब बातें होती हैं। (घ) *'चले'* अर्थात् देवलोकसे श्रीअवधको चले। (ङ) *'सकल सुर साजि बिमाना'* इति। इससे देवताओंके मनका परम उत्साह दिखाया। (च) *'साजि'* कहकर जनाया कि विमानोंको पताका, माला आदिसे आभूषित किया, अपनी-अपनी सेवाकी वस्तुएँ उनमें रख लीं, गन्धर्वोंने गानेके बाजे साथ ले लिये, फूल बरसानेवालोंने फूल रख लिये, नगाड़े बजानेवालोंने नगाड़े रख लिये। इत्यादि। (च) *'सकल सुर चले'* इसीसे *'गगन संकुल सुर'* कहा।

टिप्पणी—२ (क) *'जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल'* से पाँचों तत्त्वोंका अनुकूल होना कहा। *'मध्य दिवस अति सीत न घामा'* इसमें अग्नि वा तेज तत्त्वका अनुकूल होना कहा। *'घाम'* अर्थात् तेज अत्यन्त नहीं है परंच सुखद हो गया। *'सीतल मंद सुरभि बह बाऊ'* से पवन-तत्त्वकी; *'बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा'* से पृथ्वी-तत्त्वकी, (क्योंकि गिरि पृथ्वी-तत्त्व है); *'स्रवहिं सकल सरितामृतधारा'* से जल-तत्त्व और *'गगन बिमल ·····'* से आकाश-तत्त्वकी अनुकूलता कही। पञ्चतत्त्व अनुकूल हुए; यथा—*ब्योम पवन पावक जल थल दिसि दसहु सुमंगल मूल।'* (गीतावली १। २) (ख) संकुल=व्याप्त= संकीर्ण=भरा हुआ। निर्मल आकाश सुरयूथोंसे व्याप्त है, यह कहकर आगे इनकी सेवा कहते हैं। गन्धर्वोंके दल गुण गाते हैं, कोई फूल बरसाते हैं, कोई नगाड़ा बजाते हैं, कोई स्तुति कर रहे हैं। प्रथम गन्धर्वोंका गाना लिखा, क्योंकि समस्त सेवाओंमें भगवत्-गुणगान विशेष सेवा है। बरूथ-के-बरूथ गा रहे हैं, यह कहकर जनाया कि सभी सेवा कर रहे हैं; यही आगे कहते भी हैं—*'बहु बिधि लावहिं निज निज सेवा।'* इस समय सब भगवान्‌की स्तुति करने आये हैं इसीसे भगवान्‌के गुण गाते हैं। (ग) *'गगन बिमल'* यह आकाशकी शोभा कही। *'संकुल सुरजूथा'* यह भी आकाशकी शोभा है। (घ) *'गगन बिमल संकुल ·····'* इति। तात्पर्य कि देवलोकोंसे देवता चलकर श्रीअयोध्याजीके ऊपर आये, तब भारी भीड़ हो गयी, अवधके ऊपर जितना आकाश है वह सब भर गया। (आकाशके) बीचमें व्याप्त होना नहीं कहा क्योंकि बीचमें

आकाश बहुत है और देव-बरूथ बराबर चले आ रहे हैं। अयोध्याजीके ऊपर आकाश कम है और सब देवताओंके विमान वहाँ ठहर गये हैं, इसीसे भारी भीड़ हो गयी, अतः *'गगन संकुल'* कहा। जब श्रीअयोध्याजीके ऊपर आये तब गन्धर्वगण गुणगान करने, पुष्प बरसाने, नगाड़े बजाने और स्तुति करने लगे। [गीतावलीमें भी कहा है—*'सुर दुंदुभी बजावहिं गावहिं हरषहिं बरषहिं फूल।'* (१। २)]

प० प० प्र०—प्रारम्भमें विरञ्चि और अन्तमें गन्धर्वोंको कहकर जनाया कि ब्रह्मलोकसे लेकर गन्धर्वलोकतकके सब देवगण उपस्थित हुए। गन्धर्वलोक समस्त सुरलोकोंके नीचे है, यह तैत्ति० उ० ब्रह्मानन्दवल्लीसे ज्ञात होता है। नीचेसे ऊपरको क्रमशः लोक इस प्रकार हैं—मनुष्यलोक, मनुष्यगन्धर्वलोक, देवगन्धर्वलोक, पितृलोक, आजान देवलोक, कर्मदेवलोक, सूर्यादि और दिक्पाललोक, बृहस्पतिलोक, ब्रह्मलोक। अभीतक नागों और मुनियोंका उल्लेख न होनेसे सूचित हुआ कि इनको समाचार पीछे मिला।

बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी। गहगह गगन दुंदुभी बाजी॥ ७॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहु बिधि लावहिं निज निज सेवा॥ ८॥

शब्दार्थ—**गहगह**=बड़ी प्रफुल्लता वा आनन्दके साथ, घमाघम, धूमधामसे, बहुत अच्छी तरह। **लावहिं**=लगाते हैं। लाना व लावना=लगाना।=करना। यथा—*'तजि हरिचरन सरोज सुधारस रबिकर जल लय लायो।'* (वि० १९९) *'गई न निजपर बुद्धि सुद्ध ह्वै रहे न राम लव लायो।'* (वि० २०१) *'इहै जानि चरनन्ह चित लायो।'* (वि० २४३) *'बिषय बबूर बाग मन लायो।'* (वि० २४४)

अर्थ—सुन्दर अञ्जलियोंमें फूलोंको सजा-सजाकर पुष्पोंकी वर्षा करते हैं। आकाशमें नगाड़े घमाघम बज रहे हैं॥ ७॥ नाग, मुनि और देवता स्तुति कर रहे हैं और बहुत प्रकारसे अपनी-अपनी सेवा लगाते हैं॥ ८॥

टिप्पणी—१ (क) *'बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी'* इति। *'बरषहिं'* से जनाया कि निरन्तर पुष्पवृष्टि कर रहे हैं, अन्तर नहीं पड़ने पाता। *'गहगह'* से जनाया कि जोर-जोरसे बजा रहे हैं। *'साजी'* का भाव कि जो फूल भारी हैं या कठोर हैं। उनकी कली बनाकर बरसाते हैं जिसमें किसीके लगे नहीं। *'सुअंजुलि साजी'* से जनाया कि विधिपूर्वक पुष्पकी वृष्टि करते हैं। फूलोंकी पाँखुरी अलग-अलग करके हाथोंकी अञ्जलियोंमें भर-भरकर बरसाना देवविधि है जिसे 'पुष्पाञ्जलि' कहते हैं। पुष्पवृष्टिद्वारा अपने हर्ष और माङ्गलिक समयकी सूचना दे रहे हैं। (ख) *'अस्तुति करहिं—'* इति। प्रथम स्वर्गवासी देवताओंका आगमन कहा और अब पातालवासी नाग देवताओंका स्तुति करना कहते हैं; इसका तात्पर्य यह है कि आनेमें दोनोंका साथ न था। ब्रह्माजीके साथ जो देवता चले वे स्वर्गसे आये, पुष्पवृष्टि करने तथा नगाड़े बजाने लगे, इतनेहीमें नाग पातालसे आ गये; अतः स्तुति करते समय सबका संग और समागम हो गया था; इसीसे वहाँ नाग, मुनि और स्वर्गके देवता सबको साथ लिखते हैं।

वि० त्रि०—जबतक देवतालोग मार्गमें रहे तबतक प्रभु प्रकट नहीं हुए। जब देवता अपने-अपने लोकोंमें पहुँच गये तब प्रकटे, अर्थात् उनके भी विश्राम पानेपर प्रकटे। *'जगनिवास'* का प्रकट होना मायाका पर्दा हटनेपर ही सम्भव है।

नोट—१ अभी तो प्रभु प्रकट नहीं हुए तब स्तुति अभीसे कैसी? यह शंका उठाकर उसका समाधान भी लोगोंने कई प्रकारसे किया है। सन्त उन्मनी टीकाकार लिखते हैं कि 'देवताओंने देखा कि नौ माससे अधिक हो गये, प्रभु अभीतक प्रकट न हुए, अतएव घबराकर वे पुनः गर्भस्तुतिमें उद्यत हुए। इस प्रकार भगवान्को सुरति करा रहे हैं। यद्वा आश्चर्य प्रभावका उदय देख अपने कार्यके होनेकी प्रतीति हुई तो हर्षके अतिरेकसे अवतारसे पहिले ही स्तुति करने लगे। तीसरा समाधान यह किया जाता है कि यह सनातन रीति है कि जब-जब श्रीरामावतार होता है तब-तब प्रथम स्तुति होती है तब भगवान् प्रकट होते हैं।

टिप्पणी—२ *'बहु बिधि लावहिं निज निज सेवा'* इति। *'बहु बिधि'* अर्थात् फूल बरसाकर, नाच-गाकर, स्तुति करके, इत्यादि। यही सेवा है जो उपहाररूपसे स्वामीकी भेंटमें लगा रहे हैं।

दोहा—सुर समूह बिनती करि पहुँचे निज निज धाम।
जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम॥ १९१॥

शब्दार्थ—**जगनिवास**=जिनका विश्वमात्रमें और जिनमें विश्वमात्रका निवास है।

अर्थ—समस्त देववृन्द विनती कर-करके अपने-अपने धाममें पहुँचे। जगत्-मात्रमें जिनका निवास है, जो समस्त लोकोंके विश्रामदाता हैं वे प्रभु प्रकट हो गये*॥ १९१॥

टिप्पणी—१ पूर्व सब देवताओंका आगमन लिखा—***'चले सकल सुर साजि बिमाना।'*** इसीसे अब उनका जाना लिखते हैं—***'पहुँचे निज निज धाम।'*** पूर्व लिखा था कि ***'सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले……'*** जिससे यह समझा जाता है कि ब्रह्मलोकके सब देवता आये, अन्यत्रके नहीं; यह संदेह निवारण करनेके लिये यहाँ ***'पहुँचे निज निज धाम'*** लिखा। अर्थात् समस्त देवलोकोंके देवता आये थे। ब्रह्मलोक सब लोकोंके ऊपर है, जब ब्रह्माजी श्रीअवधको चले तब सब लोक बीचमें पड़े। ब्रह्माजी सब लोकोंके देवताओंको साथ लेते हुए अवधपुरीके ऊपर आये।

टिप्पणी—२ (क) ***'जगनिवास प्रभु प्रगटे'*** इति। अर्थात् प्रभु कहींसे आये नहीं, वे तो जगत्में सर्वत्र पूर्ण (रूपेण) हैं; यथा—***'देशकाल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।'*** (१८५। ६) तात्पर्य कि वहींसे प्रकट हो गये। श्रीरामजी ब्रह्मके अवतार स्वयं ब्रह्म हैं, यथा—***'जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भएउ कोसलपुर भूपा॥'*** इसीसे उनका कहींसे आना न लिखा, ब्रह्म कहींसे आता नहीं। [(ख) मनु-शतरूपाजीके सामने प्रकट होनेपर कहा था कि ***'भगतबछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥'*** (१४६। ८) वही प्रभु इस समय प्रकट हुए हैं यह निश्चय करानेके लिये यहाँ भी ***'जगनिवास प्रभु प्रगटे'*** कहा। विश्वास और जगनिवास पर्याय शब्द हैं। इसी प्रकार मंदोदरीने ***'बिस्वरूप रघुबंसमनि।'*** (६। १४) ***'जगमय प्रभु'*** और ***'बास सचराचर रूप राम भगवान।'*** (६। १५) कहा है। (ग) ***'जगनिवास'*** का प्रकट होना 'बिधि' अलंकार है। ***'प्रगटे'*** शब्दमें ईश्वरप्रतिपादनकी 'लक्षणामूलक गूढ़ व्यंग' है कि भगवान् जन्मे नहीं, स्वतः प्रकट हुए। (वीरकवि)] (घ) ***'अखिल लोक बिश्राम'*** का भाव कि प्रभुके आविर्भावका समय लोक-विश्रामदाता है, यथा—***'पावन काल लोक बिश्रामा।'*** और स्वयं प्रभु 'अखिल लोक विश्रामदाता' हैं। [पुनः, भाव कि विश्वमें तो प्रभुका सदा निवास रहता ही है, गुप्त भावसे प्रत्यक्ष भावमें प्राप्त हुए जिसमें सम्पूर्ण लोकोंको भी विश्राम हो। (मा० त० वि०)]

नोट—१ यहाँ देवताओंका चला जाना कहते हैं और आगे १९६ (२) में पुनः कहते हैं कि ***'देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निज भागा॥'*** बीचमें कहीं दुबारा आना वर्णन नहीं किया गया। तब दुबारा घर जाना कैसे कहा गया? इस शंकाके समाधानके लिये कुछ लोग इस प्रकार अर्थ करते हैं कि 'देववृन्द अपने-अपने धाम-(लोक-) से विनती करते हुए (श्रीअयोध्या) पहुँचे (उसी समय) जगनिवास प्रभु प्रकट हुए।' और किसीका मत है कि सब नहीं चले गये थे, जो विशेष वैभववाले थे वे स्तुति करके चले गये, वैभव त्यागकर याचक बनकर निछावर लेनेके लिये शीघ्र ही फिर आवेंगे और सबोंके साथ मिलकर उत्सव देखेंगे। यथा—***'राम निछावरि लेन हित हठि होहिं भिखारी।'*** (वै०) जो सामान्य थे वे रह गये थे, उनका जाना दूसरी जगह कहा; क्योंकि आनेपर लिखा था कि ***'चले सकल सुर'*** और यहाँ केवल ***'सुर समूह'*** पद देते हैं। मा० त० वि० कार स्तुति करके चले जानेका कारण यह लिखते हैं कि इतनेहीमें रावणके खबर पानेका भय मानकर चल दिये और पाँड़ेजीका मत है कि प्रभुका अवतार प्रकट न हो जाय इस विचारसे (विशेष विभववाले) देवता चले गये। जैसा पूर्व कहा भी है, ***'गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ।'*** (४८)

* अर्थान्तर—जब जगन्निवास अखिललोक विश्रामदाता प्रभु प्रकट हुए तब सब देवसमूह विनती करके अपने-अपने धाममें पहुँचे। (पं०)

श्रीरामदास गौड़जी—'टीकाकारोंने लिखा है कि देवता अपने-अपने लोकको चले गये। परंतु क्या देवताओंके चले जानेका यह मौका है? कौन अभागा ऐसे अनुपम अवसरपर अवधसे चला जायगा? 'सरकारके शरीरके एक-एक परमाणु देवताओं और पार्षदोंके ही बने हैं। यह अवसर प्रकट होनेका है। *'सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि बिमाना॥'* फिर सब देवता विनती करते हैं कि हमें शीघ्र ही अपने-अपने धामपर पहुँचनेकी आज्ञा हो, फिर आज्ञा पाते ही उस दिव्य शरीरके सभी अवयव निज-निज धामपर पहुँच जाते हैं। यही दिव्य शरीरका प्रकट होना है। *'जगनिवास'* और *'अखिल लोकबिश्राम'* साभिप्राय शब्द हैं, जो प्रकट होनेकी विधि बताते हैं और विराट् प्रभुके विचित्र विग्रहका पता देते हैं। इस तरह *'निज निज धाम'*= 'सरकार (प्रभु) के अङ्ग-अङ्गमें।'

प० प० प्र०—प्रो० गौड़जीने जो लिखा है वह सत्य है। **'सर्वदेवमयो हरिः'** जिनके रोम-रोममें अनन्त ब्रह्माण्ड हैं उन प्रभुके प्रकट होनेवाले विग्रहमें देवोंने अपने-अपने अंशसे अपने-अपने धाम-(स्थान-) में प्रवेश किया। चन्द्र मनमें, आदित्य नेत्रोंमें, शिव अहंकारमें, ब्रह्मा बुद्धिमें, इन्द्र पाणिमें, वायु त्वचामें, वरुण जिह्वामें और अग्नि वाणीमें—इस प्रकार निज-निज धाम पहुँचे। मानसमें ही प्रमाण है। यथा—*'लोक-कल्पना बेद कर अँग-अँग प्रति जासु।' 'अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।' 'पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अंग-अंग बिश्रामा॥'*—'यहाँ 'धाम' शब्द ही है। जिस-जिस अङ्गमें जिस-जिस धामको विश्राम है, उस-उस धामके देवता पहुँचे। ब्रह्मधामसे लेकर पातालतकके सभी धाम भगवान्‌के विग्रहमें हैं। (भा० १०। १४। ३३) ब्रह्मस्तुतिपर श्रीधरी टीका देखिये।

प० प० प्र०—इस दोहेके आगे एक भी चौपाई नहीं है। दोहा १९२ का प्रारम्भ छन्दसे ही हुआ है। मानसमें ऐसे स्थान १३ हैं—दोहा १८६ ब्रह्मस्तुति, दो० १९२ कौसल्यास्तुति, दोहा २११ अहल्या-स्तुति, अरण्य दोहा ४ अत्रिस्तुति, अरण्य दो० २० खरदूषणयुद्ध तथा वध, लं० १०१ रावण युद्ध तथा वध, लं० १११ ब्रह्मस्तुति, लं० ११३ इन्द्रस्तुति, उत्तर १३ वेदस्तुति, उ० १४ शिवस्तुति, उ० १०१ कलिवर्णन; उ० १०२ कलिवर्णन और रुद्राष्टक दो० १८०। ☞ अहल्यास्तुति और लं० ११५ में जो शिवकृत स्तुति है वह चौपाई छंदमें है, इससे उसे इस गणनामें नहीं लिया। इन स्थानोंमें चौपाई एक भी नहीं होनेका कारण पाठकोंकी बुद्धिपर छोड़ता हूँ।

छंद—भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी॥ १॥

अर्थ—दीनोंपर दया करनेवाले, कौसल्याजीके हितकारी, कृपालु प्रभु प्रकट हुए। मुनियोंके मनको हरनेवाले उनके अद्भुत रूपको विचारकर माता हर्षित हो रही हैं॥ १॥

टिप्पणी—१ (क) *'भए प्रगट'* इति। प्रभुने प्रथम ही मनुजीसे 'प्रकट' होनेका एकरार किया था, यथा—*'होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे।'* (१५२। २) अतएव *'प्रगट'* हुए। (ख) *'कृपाला'* का भाव कि अवतारका मुख्य कारण कृपा है, कृपा करके ही अवतार लेते हैं, यथा—**'मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्'** (शाण्डिल्य सूत्र ४९), *'हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।'* (१। १२१) *'कृपासिंधु मानुष तनु धारी।'* (५। ३९) *'कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं।'* (१। १२२) *'सो प्रगट करुनाकंद सोभाबृंद अगजग मोहई।'* इत्यादि। (१। १३। ५) देखिये। (ग) *'कृपाला दीनदयाला'* इति। भाव कि सब लोग रावणके अत्याचारसे दीन और दुःखी हैं, अतः सब लोगोंको आनन्द देनेके लिये कृपा करके प्रकट हुए, यथा—*'प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम।'* [पुनः भाव कि प्रभु कृपाल हैं, 'सबके ऊपर समताका पालन करनेवाले हैं' अर्थात् सबको समान भावसे देखते हैं, वे ही दीनोंपर दया करके प्रकट हुए। (पां०) वा, जो समस्त लोकोंपर कृपालु हैं तथापि दीनोंपर विशेष दयालु हैं वे प्रकट हुए। (रा० प्र०) अथवा, *'कृपाला दीनदयाला'* कौसल्याजीके विशेषण हैं। (रा० प्र०)]

पाठान्तर—रा० प०, पं० भागवतदासजीका पाठ *'परमदयाला'* है, पर १६६१ वाली पोथीमें *'दीनदयाला'* पाठ है। *'परमदयाला'* पाठमें भाव यह होगा कि अखिल लोकपर दया की और इनपर 'परम' दयालु

हुए। दर्शन देनेको प्रकट हुए, यह 'परम' दया है। गौड़जीका मत है कि ***'परमदयाला'*** पाठ उत्तम है, क्योंकि कौसल्याजीको विवेक देनेका वादा है, उसे पूरा कर रहे हैं, इसीलिये यहाँ उन्हींके हितकारी भी हैं। ***'दीनदयाला'*** में कौसल्याके लिये कोई विशेषता नहीं है। कौसल्याको दीन कौन कहेगा? ***'दसरथघरनि राममहतारी', 'कीरति जासु सकल जग माची'*** इत्यादि प्रमाण हैं। श्रीलमगोड़ाजी कहते हैं कि मेरी समझमें कृपाला और दीनदयाला शब्दोंका सम्बन्ध सारे विश्वसे है, कौसल्याजीके सम्बन्धवाला ***'हितकारी'*** शब्द आगे मौजूद है। त्रिपाठीजी कहते हैं कि ब्रह्मदेवने जो स्तुति की थी ***'जेहि दीन पियारे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना',*** उनकी उस प्रार्थनानुसार दीनोंपर दया करके कौसल्या हितकारी, कौसल्याकी कीर्ति दिगन्तव्यापिनी करने तथा वात्सल्य प्रकट करनेके लिये प्रकट हुए।

बैजनाथजी लिखते हैं कि जैसे ब्रह्माजीकी स्तुतिमें चारों कल्पोंका परिचय है, वैसे ही यहाँ भी चारों अवतारोंका हेतु जनाया गया है। प्रथम वैकुण्ठवासीके दोनों अवतारोंका हेतु कहते हैं। क्योंकि ब्रह्माजीकी स्तुतिमें भी ***'कृपाला' 'दीनदयाला'*** यही दोनों शब्द आये हैं, यथा—***'जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई।'*** (१८६) उन दोनों अवतारोंमें अदितिजी कौसल्यामाता हुईं। दोनोंमें (अर्थात् जब जलंधर रावण हुआ और जब जय-विजय रावण-कुम्भकर्ण हुए, दोनों समय) देवता दीन-दु:खी थे। उनपर कृपा करके प्रकट हुए।

टिप्पणी—२ ***'कौसल्या हितकारी'*** इति। (क) ***'कौसल्या हितकारी'*** का अर्थ आगे स्पष्ट किया है। ***'करुना-सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता। सो मम हित लागी जन अनुरागी प्रगट भए श्रीकंता॥'***—यही हित है। कृपा करके सूतिकागार-(सौरी) में ही दर्शन देनेके लिये प्रकट हुए जहाँ केवल श्रीकौसल्याजी ही थीं। इस रूपका दर्शन केवल इन्हींको हुआ। [पुन:, (ख) माताका हित पुत्रद्वारा विशेषकर होता है। अथवा, पूर्व शतरूपा-शरीरमें अलौकिक विवेकका वरदान प्रभुने दिया ही है, इसीसे 'कौसल्याजीके हितकारी' कहा। (पं०) अथवा, कौसल्याजीका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये उनके कहते ही बालकरूप होनेको उद्यत हो गये इससे उनका हितकारी कहा। वा, कौसल्याजी कैकेयीजीके सवत भावसे सदा क्लिष्ट रहीं जैसा उन्होंने वाल्मीकीयमें दशरथजीसे कहा है, आजहीसे उन्हें उस क्लेशसे निवृत्त करनेवाले हुए, अत: हितकारी कहा। वा, जिस रूपके विषयमें भगवान्‌ने नारदसे कहा कि '**सर्वभूतगुणैर्युक्तं नैवं मां ज्ञातुमर्हसि**' और अर्जुनसे भी कहा कि '**न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।**' (गीता ११। ८) उस रूपको एक स्त्रीको अनिच्छित स्वयं ही दृष्टिगोचर करानेसे हितकारी कहा। (मा० त० वि०) अथवा, रावणने कौसल्याजीके जन्मसे ही उनके मरणके अनेक उपाय किये जैसा विश्रामसागर आदि ग्रन्थोंसे सिद्ध है, पर आप बराबर परोक्ष रहकर रक्षा करते आये और अब उनके लिये पुत्रभाव ग्रहण किया, अत: ***'कौसल्या हितकारी'*** कहा। (मा० त० वि०) (ग) यहाँ कौसल्या हितकारी कहा, दशरथ हितकारी क्यों न कहा? इसका कारण यह है कि पितासे माताको बाल-सुख विशेष होता है। अथवा श्रीकौसल्याजीने सूतिकागारमें चतुर्भुजरूप देखा, फिर कुलदेव श्रीरङ्गजीकी पूजा-समयमें युगल शिशुलीला भी देखी और फिर विराट्‌रूपका भी दर्शन किया। इस तरह शीघ्र ही थोड़े ही दिनोंमें इनको तीन बार ऐश्वर्यरूपसे दर्शन दे प्रभुने इनके अलौकिक विवेकको दृढ़ किया, जिससे ये जन्मभर ईश्वर-भाव और पुत्र-भाव दोनों सुखोंका आनन्द लूटेंगी और श्रीदशरथजी पुत्रभावमें ही मग्न रहेंगे, साथ ही इनको थोड़े ही कालतक श्रीरामजीका साथ होगा और कौसल्याजीको बहुत कालतक पुत्रसुख मिलेगा। अतएव ***'कौसल्या हितकारी'*** कहा। (बाबा हरिदासजी) ज्ञानी भक्तोंमें प्रथम कौसल्याजीका हित किया। इसी किशोररूपसे ज्ञानी लोगोंके पास जा-जाकर उनका हित करेंगे। हितका अर्थ प्रीति कर लें तो शंका-समाधानकी आवश्यकता ही न रहेगी। (प० प० प्र०) (पर मेरी समझमें ***'हितकारी'*** का अर्थ प्रीतिकारी करना खींचतान होगा। ऐसा प्रयोग इस प्रमाणमें नहीं पाया जाता)। (१। १४६। ८) में जो ***'भगतबछल'*** कहा है वही यहाँ ***'हितकारी'*** शब्दमें दिखाया। (प० प० प्र०)]

टिप्पणी—३ (क) ***'जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भएऊ।'*** (१९०। ८) पर प्रसङ्ग छोड़ा था। बीचमें

'अवसर' का वर्णन करने लगे, देवताओंकी सेवा और गर्भस्तुति कही, अब प्रभुका प्रकट होना कहते हैं। (ख) *'हरषित महतारी मुनि मन हारी'* का भाव कि जिस रूपका ध्यान मुनि मनसे करते हैं, उसी रूपको श्रीकौसल्या अम्बा प्रत्यक्ष देख रही हैं। (ग) यह रूप मुनियों अर्थात् मननशीलों, स्वाभाविक ही उदासीन, विषयरसरूखे महानुभावोंके भी मनको हरण कर लेता है, यथा—*'सो प्रगट करुनाकंद सोभाबृंद अगजग मोहई',* इसीसे *'अद्भुत'* कहा। तात्पर्य कि ऐसा सुषमानिधान कमनीय रूप दूसरा नहीं है। अथवा, आयुधादि धारण किये हुए प्रकट हुए, इससे *'अद्भुत'* कहा। (घ) रा० प्र० कार कहते हैं कि जो सबके पिता कहलाते हैं वे हमारे पुत्र हुए, यह विचारकर हर्षित हैं। अ० रा० में भी *'अद्भुत'* शब्द आया है, यथा—'**दशमे मासि कौसल्या सुषुवे पुत्रमद्भुतम्**।' (१। ३। १३) अर्थात् कौसल्याजीने एक अद्भुत बालकको जन्म दिया। प्र० स्वामी लिखते हैं कि श्रीकौसल्याजी समझी थीं कि उनके उदरसे शिशुका जन्म होगा सो न होकर एक किशोरावस्थाका धनुर्बाणधारी (वा, शङ्खचक्रगदाम्बुजधारी) रूप ही सामने देखा, तब बड़ा आश्चर्य हुआ। वे स्तम्भित-चकित हो गयीं। इससे अद्भुत कहा। यह तो अलौकिक आश्चर्यकारक घटना ही है कि प्रसूतिके समय बच्चा हुआ ही नहीं और ऐसा रूप प्रकट हुआ।

पाठान्तर—*'बिचारी'* का पाठान्तर *'निहारी'* है। सं० १६६१, १७०४ और भा० दा० की प्रतियोंमें बिचारी है। यही पाठ उत्तम है, क्योंकि विचारका उनकी दयासे उदय हुआ और मुनिमनहारी अद्भुत रूप 'विचार' करके उन्होंने परात्परकी स्तुति की। *'निहारी'* पाठमें *'बिचारी'* का-सा चमत्कार नहीं है। (गौड़जी)

लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभा सिंधु खरारी॥ २॥

नोट—*'अर्धभाग कौसिल्यहि दीन्हा'* (१९०। १) से *'नयन बिसाला सो'* तक १६६१ की प्रतिमें नया पत्रा है।

अर्थ—नेत्रोंको आनन्द देनेवाला श्याम मेघोंके समान श्याम शरीर है। भुजाओंमें अपने आयुध धारण किये हुए (वा, चारों भुजाओंमें अपने आयुध लिये हुए) हैं, भूषण और वनमाला पहिने हैं, बड़े-बड़े नेत्र हैं, शोभाके समुद्र और खरके शत्रु हैं॥ २॥

टिप्पणी—१ (क) *'लोचन अभिरामा'* कहकर जनाया कि भगवान्‌का अद्भुतरूप देखकर कौसल्याजीके नेत्रोंको अभिराम मिला। आगे *'तनु घनस्यामा'* से रूपका वर्णन है। घनश्याम शरीर नेत्रोंको अभिरामदाता है, यह कहकर जनाया कि शरीर 'मेघ' है, नेत्र 'चातक' हैं, यथा—*'लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥'* (२। १२८) [पुनः, *'लोचन अभिरामा'* का भाव कि सभीके नेत्रोंको सुखी करनेवाले हैं, यथा—*'चले लोक लोचन सुखदाता।'* (२१९। १) *'करहु सुफल सबके नयन सुंदर बदन देखाइ।'* (२१८) '**कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभिरामम्**' के अनुसार यहाँ *'लोचन अभिरामा'* और *'नयन बिसाला'* कहा गया है। पं० रामचरण मिश्र लिखते हैं कि 'मन आदिको त्यागकर नेत्रहीको अभिराम क्यों कहा? उत्तर—मेघवत् श्यामतनके सजातीय भावसे निजरूपकी राशि देखकर, नेत्र आनन्दित हुए। भाव यह है कि इसी श्याम-राशिमेंसे तिलमात्र श्यामता पाकर हम (नेत्र) सबको देखते हैं। दूसरे, दर्शन-क्रियाका आनन्द नेत्र ही जान सकते हैं। यह श्यामरूप ही नेत्रोंकी *'निज निधि'* है, इसका अणुमात्र भाग पाकर नेत्रोंको देखनेकी शक्ति है। (२३२। ४)*'हरषे जनु निज निधि पहिचाने।'* में देखिये। (ख) *'घनस्यामा'* इति। यहाँ मणि वा कमलकी उपमा न देकर घन-सदृश श्याम कहनेमें भाव यह है कि मणि और नीलकमल सबको प्राप्त नहीं हो सकते और मेघ सबको स्वयं आकर प्राप्त होते हैं। पुनः, मेघ शत्रु-मित्र, भले-बुरे सबको एक-सा देखते हैं। अमृत और विष दोनों प्रकारकी औषधको जल पहुँचाते हैं। इसी प्रकार प्रभुकी सबपर बराबर दया है, यथा—*'सब पर मोहि बराबरि दाया।'* (७। ८७) उन्होंने कृपा करके *'सकल मुनिन्हके आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह'* और शत्रुको भी वही मुक्ति दी जो शरभंगादि ऋषियोंको दी थी।]

'निज आयुध भुज चारी' इति।

मयंककार इसका यह अर्थ करते हैं कि 'धनुष-बाण और दोनों भुजाएँ—ये चारों शोभायमान हैं।' श्रीशतरूपाजीको द्विभुजरूपका दर्शन हुआ, अतएव यदि उनके सामने चतुर्भुजरूप प्रकट होता तो परतम प्रभुका वचन अविश्वसनीय हो जाता और वे व्याकुल हो जातीं, जैसे सुतीक्ष्णजीके हृदयमें चतुर्भुजरूप आते ही वे व्याकुल हो गये थे। कौसल्याजीके प्रतीतिहीके लिये द्विभुजरूपसे प्रकट होना आवश्यक था और पं० रामकुमारजी आदि कुछ महानुभावोंका मत है कि 'जैसे ब्रह्मस्तुति और आकाशवाणीमें चार कल्पका प्रसंग है, वैसे ही यहाँ भी चार कल्पोंकी स्तुति है। तीन कल्पके अवतार चतुर्भुजीसे द्विभुजी हुए। उनमें चतुर्भुजरूप प्रकट हुए। क्योंकि कश्यप-अदितिको, इन्हींने वरदान दिया था। उनके सम्बन्धमें 'चारों भुजाओंमें चार आयुध शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये', ऐसा अर्थ होगा। और, साकेतविहारी परतमप्रभुका नित्य द्विभुज षोडश वर्षका स्वरूप है। जिसका दर्शन मनु-शतरूपाजीको हुआ था, इनके सम्बन्धमें निज आयुध धनुषबाण हैं जो भुजाओंमें प्राप्त हैं।' शब्दसागरमें '*चारी*' का अर्थ इस प्रकार दिया है—'वि० [सं० चारिन्] (१) चलनेवाला। जैसे, आकाशचारी। (२) आचरण करनेवाला। व्यवहार करनेवाला। जैसे, स्वेच्छाचारी। विशेष—इस शब्दका प्रयोग हिंदीमें प्रायः समासहीमें रहता है।' इनके अतिरिक्त और भी अर्थ दिये हैं। कोई इसका अर्थ 'प्राप्त हैं' ऐसा करते हैं। और, करुणासिंधुजी लिखते हैं कि '**चर गतिभक्षणयोः**' धातु है, अर्थात् भुजाओंमें प्राप्त हैं यह अर्थ है। यहाँ ऐसे क्लिष्ट शब्दोंका प्रयोग किया गया है जो चारों कल्पोंके प्रसंगमें घट सकें। पं० रामकुमारजीने भी द्विभुज धनुर्धारी भगवान्‌के अवतारवाले कल्पमें '*चारी*' का अर्थ 'प्राप्त है' किया है। और पाँडेजी '*भुजचारी*' का अर्थ 'निज आयुध धनुषको भुजा जिनकी खींचे हुए है' ऐसा करते हैं।

श्रीगौड़जी लिखते हैं कि 'आयुध-समेत चारों भुजाओंका दर्शन इसलिये हुआ कि भगवान् साकेतविहारीजीका प्रथम आविर्भाव नारायण और सृष्टिके रक्षार्थ विष्णुरूपमें है, जिस विग्रहमें दो भुजाएँ अधिक हैं और अधिक पार्षदोंको सायुज्य होनेका गौरव मिलता है। ऐसे अवसरपर सबका हौसला रखना है, और साथ ही नारायण, विष्णु और परात्पर ब्रह्मका अभेद भी दिखाना है, वस्तुतः कौसल्याजीको। क्यों? इसलिये कि शतरूपाने अन्तिम तपस्या तो परात्परके दर्शनोंके लिये की थी और वासुदेव नारायणके लिये तप करके फिर परात्परके लिये तप किया था। विधि-हरि-हरमें और परात्पर ब्रह्ममें भेद समझा। उनकी खुशामदमें नहीं आये सरकारको और जगज्जननीको बुलाके ही छोड़ा। परंतु वर माँगनेमें शतरूपाने 'विवेक' भी माँगा। इसीलिये चारों भुजाओंमें आयुध धारण किये अभेद दिखाने, श्रुतिके प्रमाण '**पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥**' को सार्थक करने और कौसल्याको इस अभेदता, पूर्व वर और अवतारका प्रयोजन बतानेके लिये भगवान् इस प्रकार प्रकट हुए।' श्रीलमगोड़ाजी लिखते हैं कि गौड़जीके अर्थसे मैं भी सहमत हूँ। अन्य अर्थोंमें भुजचारीकी खींचातानी हो जाती है।

म० त० वि०—कार लिखते हैं कि—(१) अथवा, माताकी परीक्षाके लिये चार भुजाएँ दिखायीं। भाव यह कि द्विभुजमें वरदान दिया था, अब चतुर्भुज होनेपर पहचानती हैं या नहीं। अथवा, इससे सूचित करते हैं कि हे माता! तुम्हारे इष्टदेव जो चतुर्भुज श्रीरङ्गजी हैं वह मैं ही हूँ। अथवा, (२) इस ग्रन्थमें गुप्तचरित है, यथा—'*रामचरितसर गुप्त सुहावा।*' (७। ११३) अतः गर्भ और जन्मलीलासे विश्वामित्रागमनतक कश्यप-अदिति दशरथ-कौसल्या रहे जहाँ विष्णुभगवान्‌का वरदान था। अतः '*कोसलपुरी प्रगट नरभूपा*' गगन-गिरा है। विवाहसे वनगमनतक स्वायम्भुव मनु-शतरूपा दशरथ-कौसल्यारूप परिकर रहे, क्योंकि युगल-स्वरूप देखकर पुत्र होनेका वरदान चाहा था। इत्यादि।

श्रीजानकीशरणजी लिखते हैं कि 'चर' का अर्थ 'गमन' है। इस प्रकार अर्थ है कि 'निज आयुध धनुष-बाण दोनों हाथोंमें फेरते और मन्द-मन्द मुसकाते प्रकट हुए'। फेरनेकी बान सदासे है ही, यथा—'*कर कमलन्हि धनु सायक फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत॥*' '*दुहुँ कर कमल सुधारत बाना।*' अथवा '**भुज पालनाभ्यवहारयोः**' अर्थात् अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन चारोंको जो भोगे वह भुजचारी। पुनः धामपरत्व, रूपपरत्व, यशपरत्व

और नामपरत्व इन चारों परत्वोंसे जो जगत्‌को पाले वह '*भुजचारी*' है। अगले चरणमें '*सोभासिंधु खरारी*' कहा है। खरारि विशेषण श्रीरामचन्द्रजीका है। इस गुणविशिष्ट नामसे द्विभुजका प्रकट होना निश्चय किया। विष्णुभगवान्‌के नाममें मुरारिके सिवा खरारि विशेषण कहीं नहीं है। (मानस अ० दीपक)

अ० रा० में श्रीमन्नारायण वा विष्णुभगवान्‌के अवतारकी कथा है, उससे भगवान् माताके सामने प्रथम चतुर्भुजरूपसे प्रकट हुए हैं, यथा—'**पीतवासाश्चतुर्भुजः॥ १६॥''''शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविराजितः॥**' (१।३।१७) वाल्मीकिजी '**कौसल्याजनयद्रामम्॥**'(१। १८। १०) लिखते हैं अर्थात् कौसल्याजीने रामको जन्म दिया, जिससे द्विभुजरूपहीका प्रकट होना पाया जाता है।

किसीका मत है कि वस्तुतः यहाँ '*चारी*' पाठ लोगोंने बना दिया है। सं० १६६१ की पोथीका यह पन्ना नया है। '*धारी*' को '*चारी*' पढ़कर लिखा गया है। '*धारी*' के अर्थसे शङ्का नहीं उठती। परन्तु यह पाठ किसी पोथीमें सुना नहीं गया है जिसके आधारपर ऐसा अनुमान किया जाय। किसीका मत है कि '*चारी*' को'*धारी*' बनानेकी चेष्टा की गयी है।

नोट—१ '*निज आयुध*' कहनेमें भाव यह है कि 'यदि शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म कहें तो केवल विष्णुका बोध होता है और ग्रन्थकार द्विभुज परात्परको भी कहना चाहते हैं। यदि धनुष-बाण कहें तो केवल परात्परका बोध होता है और ग्रन्थकार केवल परात्परको भी नहीं कहना चाहते। इसी हेतु दोनोंका प्रबोधक '*निज आयुध*' पद दिया। इससे दोनों काम बन गये। (पं० रामकुमारजी)

पं० रामकुमारजीके भाव अरण्यकाण्ड ३२ (१) में देखिये। वहाँ छप चुके हैं अतः यहाँ नहीं दुहराये जाते।

नोट—२ पंजाबीजी यह शङ्का उठाकर कि 'चक्र और गदा तो आयुध हैं पर शङ्ख और पद्मको आयुध कैसे कहा?' उसका समाधान यह करते हैं कि इनको आयुध कहकर जनाया कि ये अन्तर्मुखी शत्रु (कामादि) के नाशक हैं, जैसे चक्र और गदा बाहरके शत्रुओंके। शङ्खके दर्शनसे मायाका बल जाता रहता है और कमलके प्रभावसे अविद्याका नाश होकर ब्रह्मभावकी प्राप्ति होती है। (मा० त० वि०, भक्तिरसबोधिनी टीका भक्तमाल)

टिप्पणी—२ (क) '*भूषन बनमाला*' इति। रूप कहकर अब आभूषण कहते हैं। 'भूषण' शब्दसे आभूषणोंका ग्रहण हुआ। यदि कुछ नाम गिनाते तो उतनेहीका ग्रहण होता, इसीसे केवल 'भूषण' शब्द दिया। 'वनमाल' कई प्रकारके फूलों तथा तुलसीमञ्जरी आदिसे बनाया हुआ है, यथा—'*सुंदर पट पीत बिसद भ्राजत बनमाल उरसि तुलसिकाप्रसून रचित बिबिधबिधि बनाई॥*' (गीतावली) [अ० रा० में इससे मिलता हुआ श्लोक यह है—'''' **वनमालाविराजितः॥ करुणारससम्पूर्णविशालोत्पललोचनः। श्रीवत्सहारकेयूर-नूपुरादिविभूषणः॥**' (१। ३। १७-१८) अर्थात् करुणरसपूर्ण कमलदलके समान विशाल हैं तथा जो श्रीवत्स, हार, केयूर और नूपुर आदि आभूषणोंसे विभूषित हैं। वनमाला विराजमान है।] (ख) '*सोभासिंधु खरारी*' का भाव कि आपके शोभा-समुद्रमें खर भी डूब गया था अर्थात् शत्रु भी मोहित हो गया था। यथा—'*हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥*' (३। १९) तीन कल्पोंमें जिनमें चतुर्भुज भगवान्‌का अवतार है उनमें '**खरारी**'=खल वा 'दुष्टों' के अरि। और द्विभुज धनुर्धारी भगवान्‌के अवतारमें '*खरारी*' का अर्थ 'खरदूषणके अरि' है। 'ल' की ठौर 'र' का प्रयोग बहुत जगह ग्रन्थकारने किया है; यथा—'*बिनु जर जारि करै सोइ छारा॥*' '*अस्थि सैल सरिता नस जारा॥*' (६। १५। ७)

नोट—३ ☞ अत्यधिक शोभा वा सुन्दरताको लक्ष्य कराना यहाँ अभिप्रेत है; अतएव शोभासिंधुके साथ ही 'खरारी' शब्द दिया गया। '*खरारी*' शब्दमें 'भाविक अलंकार' है, क्योंकि अभी 'खर' राक्षसका वध नहीं हुआ किंतु अभीसे भविष्यकी बात कह दी गयी। (वीरकवि) अथवा, उन्होंने भगवान्‌से विवेकका वरदान माँगा था; यथा—'*सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहिं कृपा करि देहु॥*' (१। १५०) और भगवान्‌ने उनको अलौकिक विवेक दिया भी; यथा—'*मातु बिबेक अलौकिक तोरे। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे॥*' (१५१। ३) प्रभुकी कृपासे कौसल्याजीको अलौकिक विवेक है, अतएव भविष्यकी बात यहाँ स्तुतिमें कहती हैं। जब कि ये जानती ही हैं कि ये परतम प्रभु हैं जो भक्तोंके लिये लीलातन धारण किया करते हैं,

तब तो वे यह भी अवश्य समझती हैं कि पूर्व जब-जब रामावतार हुआ है तब-तब खरदूषण इनकी शोभासे मोहित हुए हैं। इस अवतारमें भी आगे चलकर उनको मोहित कर लेंगे; और इनका युद्धमें वध भी करेंगे; यह भविष्य जानती हैं और यह भी जान गयी हैं कि इन्हींका नाम सत्ययुग-त्रेतामें प्रह्लादने गाया था। यदि ये पहिलेसे *'खरारी'* न थे तो इनका *'राम'* नाम कैसे पूर्वहीसे जपा जाता था?

☞ *'खरारी'* में कोई असंगति नहीं है। खरदूषणादिके वधके समय भगवान्‌ने अनुपम मोहन रूप धारण किया था। इस रूपका जहाँ कहीं निर्देश है वहाँ कवि *'खरारी'* शब्दका प्रयोग करता है। असंगति समझनेवाले (खर+अरि=) 'कोमल, मंजु' इस तरह अर्थ कर सकते हैं। मिलान कीजिये—*'सखर सुकोमल मंजु दोषरहित दूषनसहित॥'* यह भी स्मरण रहे कि भगवान्‌के समस्त नाम अनादि हैं—*'कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जिय जानि॥'* (१। १००) पं० रामकुमारजी खर्रेमें यह भी लिखते हैं कि जहाँ-जहाँ अनेक रूप धारण करते हैं वहाँ-वहाँ *'खरारी'* शब्दका प्रयोग प्रायः किया गया है। यहाँ चतुर्भुजसे द्विभुज हुए, अतः *'खरारी'* कहा।

१ शंका—*'प्रथमहि बालकरूप धरि प्रगटे किन सुरराउ। अद्भुत रूप दिखावनो याको लख्यो न भाउ॥'*

समाधान—

'परखत पूरब ज्ञान मनु है धौं भूली माय। निज स्वरूप ते प्रगट गए अवरहु भाव सुहाय॥
बर दीन्हो जेहि रूप ते जो नहिं देखै मातु। मानै सुत सब जगत सम होइ न ज्ञान को घात॥
भावी बिरह न राखिहै प्राण रूप यह जान। कौसल्या हितकारि पद देत ध्वनी यह मान॥
जिमि अद्भुत मम रूप तिमि अद्भुत करिहौं गाथ। जनमकाल सब लखन मनो रूप दिखायो नाथ॥

२ शंख कमलको शस्त्र कैसे कहा? उत्तर—*'मोह रूप दसमौलि दर नासत बेदस्वरूप। कमल प्रफुल्लित हृदय करि नासत शोक अनूप॥'* अर्थात् ये बाह्यान्तर-शत्रुओंका विनाश करनेवाले हैं।

३. *'कल्प चतुर्थ प्रसंग में रामजन्म को हेतु। मनु स्वयंभु तप देखि प्रभु आए तजि साकेतु॥*
तेइ दसरथ अरु कौसिला भए अवध महँ आइ। जन्मकाल केहि हेतु प्रभु विष्णुरूप दरसाइ?'
उत्तर—*'विष्णु आदि त्रयदेवता सोऊ मेरेहि रूप। निज माता के बोधहित धर्‍यो चतुर्भुज रूप॥*
यहै बोध दृढ़ करन पुनि द्वै करि विश्वसरूप। विष्णु आदि सब देव से लखु मम रूप अनूप॥
चारि भुजा ते सूच हरि चतुर्व्यूह मोहि जान। वासुदेव आदिक तथा विश्वादिक हूँ मान॥
मात्रा चारि जो प्रणवके चारि भुजा मम अंग। अंगी पूरण ब्रह्म तिमि लखु ममरूप अभंग॥
चारौ कर ते नाशिहौं चारौ दुख के हेतु। कालरु कर्म स्वभाव गुण जनु प्रभु सूची देतु॥
त्रेता त्रय पद धरमके यद्यपि हैं जग माहिं। चारों पद पूरन करौं चारौं कर दरसाँहिं॥
चारि भुजा ते सूच प्रभु नृप नयके पद चारि। सो सब मेरे हाथ हैं जानत बुध न गँवार॥
चारिहु बिधि मोहि भजत जन चारि भुजा तेहि हेतु। हरत दुःख दै ज्ञान पुनि धन दै मोक्षहु देतु॥
भक्ति परीक्षा करन हित प्रभु निजरूप दुराइ। द्विभुज राम साकेत मनु भए चतुर्भुज आइ॥
(यथा) *'भूपरूप तब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा॥'*
सूचत प्रभु धरि चारि भुज चारि बेद मोहि ग्रीव। तेहि प्रतिकूलहि मारिहौं राखौं तिनकी सीव॥
निज भक्तनको चारि फल चारि भुजा ते देहुँ। चारि रूप अति चपल मन ध्याताके हरि लेहुँ॥
सूचत प्रभु भुज चारि ते चारि खानि मैं कीन। जारज अंडज स्वेदज उद्भिज सो कहि दीन॥

कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
मायागुनज्ञानातीत अमाना बेद पुरान भनंता॥ ३॥

करुनासुखसागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भए प्रगट श्रीकंता॥४॥

अर्थ—दोनों हाथ जोड़कर बोलीं—'हे अनन्त! मैं आपकी स्तुति किस विधिसे (प्रकार) करूँ। वेद-पुराण आपको माया, गुण और ज्ञानसे परे और परिमाणरहित कहते हैं॥ ३॥ जिसको श्रुति और सन्त करुणा और सुखका समुद्र तथा समस्त गुणोंका धाम (घर) कहते हैं वही अपने भक्तोंपर अनुराग करनेवाले 'श्री' जीके पति आप मेरे हितार्थ प्रकट हुए हैं॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) ***'केहि बिधि करौं अनंता'*** अर्थात् आप 'अनन्त हैं, जब आपका अन्त ही नहीं है तब स्तुति किस विधिसे बन सकती है, किसी भी विधिसे तो नहीं बन सकती; यथा—***'कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कवनि बिधि तोरी॥ महिमा अमित मोरि मति थोरी॥'*** (३। ११) (ख) ***'मायागुनज्ञानातीत अमाना'*** यह निर्गुण ब्रह्मका स्वरूप है। उसीका अवतार और अवतारका हेतु आगे कहते हैं। माया आदिसे परे हैं, यथा—***'ज्ञान गिरा गोतीत अज मायागुनगोपार। सोइ सच्चिदानंदघन कर नर चरित अपार॥'*** मायासे भिन्न कहनेसे ही तन-मनसे परे हो चुके, क्योंकि मनहीतक माया है, यथा—***'गो गोचर जहँ लग मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥'*** (३। १५। ३) [(ग) **अमाना**=मानरहित; अर्थात् ***'मीन कमठ सूकर नरहरी'*** इत्यादि, ऐसे रूप भी धारण कर लेते हैं, उसमें किंचित् अपनी प्रतिष्ठाहीनता की परवा नहीं करते। साकेत वा वैकुण्ठादि लोकोंसे उतरकर पृथ्वीपर आकर नरवत् लीला करते हैं, यह भी भगवान्‌के लिये हीनताकी बात है। पुनः, **अमाना**=मान (अर्थात् परिमाण) रहित, अतुलित, जिसका माप, अन्दाज, वा तोल न हो। **अनंत**=जिसका अन्त न हो। **भनंत**=कहते हैं।] (घ) ***'करुनासुखसागर……'*** यह सगुण स्वरूप है। करुणा अवतारका हेतु है—'**मुख्यं तस्य हि कारुण्यं**' इति। (शाण्डिल्यसूत्र)। सुखसागर हैं, अतः अपने भक्तोंको सुख देनेके लिये अवतार लेते हैं। ***'सब गुन आगर'*** हैं, अतः भक्तोंके लिये जगत्‌में प्रकट होकर अपने गुणोंको प्रकट करते हैं—***'सोइ जसु गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जनहित तनु धरहीं॥'*** प्रथम मायागुणज्ञानातीत कहा। जबतक निर्गुण हैं तबतक गुणोंसे परे हैं, जब सगुण हुए तब करुणा आदि दिव्य गुणोंके आगार हैं। निर्गुण ब्रह्ममें गुण नहीं हैं; इसीसे ***'मायागुनज्ञानातीत अमाना'*** इतना ही वेद कहते हैं। सगुण ब्रह्ममें गुण हैं, वाणीका प्रवेश है, इसीसे श्रुति और संत सगुण ब्रह्मके गुण गाते हैं—***'करुना……गावहिं श्रुति संता।'*** 'श्रुति संत' कहनेसे श्रुति और स्मृति सूचित हुए, क्योंकि स्मृतियाँ सन्तोंकी बनायी हैं। पुनः, [(ङ) भगवान्‌में अनेक गुण हैं; यहाँ केवल करुणासागर, सुखसागर और गुण-आगर विशेषण देनेमें भाव यह है कि जो गुण श्रीकौसल्याजीने दर्शन पानेपर स्वयं अनुभव किये, 'अपने-(हृदय-)में देखे' उन्हींको वे कहती हैं। जैसे कि—कौसल्याजीपर श्रीरामजीने बड़ी करुणा की, इसीसे करुणासागर कहा। दर्शन देकर बड़ा सुख दिया, इसीसे सुखसागर कहा और कौसल्याजीको प्रभुने दिव्य गुण दिये अतएव गुन-आगर कहा। (च) माया-गुण-ज्ञानातीत=कार्यकारण माया, रज-तम-सत्त्वादि गुणों और विवेक-वैराग्यषट्सम्पत्ति मुमुक्षुतादि ज्ञानसे परे। (वै०)=त्रिगुणात्मिका मायाजनित ज्ञानसे परे। (रा० प्र०)]

टिप्पणी—२ 'श्रीकंत' पद भी चारों कल्पोंके प्रसङ्गोंमें घटित होता है। श्रीरामतापिनी-उपनिषद्, श्रीजानकीसहस्रनाम और अध्यात्मरामायणादिमें सीताजीका एक नाम 'श्री' भी है। वाल्मीकिजी भी यह नाम देते हैं और आनन्दरामायणमें तो यह लिखा है कि यह नाम सीताजीका ही है, लक्ष्मीजीको यह नाम पीछे मिला। गोस्वामीजीने भी बहुत स्थानोंपर श्रीजानकीजीके अर्थमें ही 'श्री' शब्दका प्रयोग किया है, यथा—***'उभय बीच श्री सोहइ कैसी।'*** (३। ७) ***'श्रीसहित दिनकरबंस-भूषन काम बहु छबि सोहई।'*** (७। १२), ***'तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम काननचारी॥'*** (३। ११। १८) इत्यादि।

टिप्पणी—३ ☞ (क) माताको अलौकिक विवेक है, यथा—***'मातु बिबेक अलौकिक तोरें। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें॥'*** इसीसे वेद-पुराण-श्रुति-स्मृतिका प्रमाण देकर उन्होंने भगवान्‌की स्तुति की। यथा—***'मायागुनज्ञानातीत अमाना बेदपुरान भनंता'***, ***'करुनासुखसागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता'***

और 'ब्रह्मांड निकाया निरमित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।' (ख) यहाँ कौसल्याजीकी मन-तन और वचनसे भक्ति दिखायी है। मूर्ति देखकर हर्षित हुईं,—'हरषित महतारी मुनिमनहारी अदभुत रूप बिचारी', यह मनकी भक्ति है। दोनों हाथ जोड़ना यह तनकी भक्ति है। और 'कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं' यह वचनकी भक्ति है।

नोट—बैजनाथजी लिखते हैं कि 'बेद पुरान भनंता' तक वैकुण्ठवासी भगवान्‌के जो दो अवतार हुए उनकी स्तुति अदितिरूप कौसल्याद्वारा कही गयी। आगे 'करुना सुख सागर……' यह स्तुति हरगण रावणके लिये जो क्षीरशायी भगवान्‌का अवतार हुआ उसकी है।

ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥ ५॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाइ मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥ ६॥

शब्दार्थ—उर=कोख; गोद। (मंगलकोश)।=उदर। उरवासी=पुत्रभावसे प्राप्त होनेवाले।

अर्थ—वेद कहते हैं कि मायाके रचे हुए ब्रह्माण्डोंके समूह आपके रोम-रोममें है। वही आप मेरे उरमें रहे, यह उपहास-(हँसी-) की बात है। यह सुनकर 'धीर बुद्धि' थिर नहीं रहती॥ ५॥ जब (माताको) ज्ञान उत्पन्न हुआ तब प्रभु मुस्कुराये (क्योंकि वे तो) बहुत प्रकारके चरित किया चाहते हैं। (उन्होंने) सुन्दर कथा कहकर माताको समझाया कि जिस प्रकारसे वह पुत्रका प्रेम प्राप्त करे अर्थात् जिससे वह पुत्रभावसे प्रेम करे और वात्सल्यसुखका आनन्द ले॥ ६॥

श्रीलमगोड़ाजी—'उपहास' भाव हास्यरसका वह भाव है जिसे हास्यचरित्र स्वयं अनुभव करके अपने ऊपर भी हँसता है। इसीको Sense of Humour कहते हैं। आलोचनाओं और शङ्कासमाधानोंमें बहुधा यह देखा जाता है कि हास्यरसको नीचा समझा जाता है। तुलसीदासजीने ऐसा नहीं समझा। देखिये, प्रकट होनेके समयसे ही हास्यरस भी मौजूद है और 'प्रभु मुसुकाए' में और भी साफ है।

टिप्पणी—१ (क) 'ब्रह्मांडनिकाया निर्मित माया……' इति। अर्थात् आपका ऐसा सूक्ष्म रूप है कि कोई जान नहीं सकता, सो आप मुझे दर्शन देनेके लिये प्रकट हुए। पुनः, आपका इतना भारी स्वरूप है कि करोड़ों ब्रह्माण्ड एक-एक रोममें हैं सो मेरे उदरमें बसे। तात्पर्य कि मुझपर कृपा करके मुझको दर्शन देनेके लिये सूक्ष्मातिसूक्ष्मसे बड़े हुए और मेरे उदरमें निवास करनेके लिये बड़ेसे सूक्ष्म हुए। (ख) पूर्व कहा कि आप मायासे भिन्न हैं—'मायागुनज्ञानातीत……।' और यहाँ मायाके कार्यसे भी पृथक् होना कहा अर्थात् मायाके बनाये हुए ब्रह्माण्डोंमें आप नहीं हैं, वरञ्च ब्रह्माण्ड आपमें हैं। ['ब्रह्मांड निकाया……' कहकर आपको अनेक विराटोंका कारण जनाया। (रा० प्र०)]

टिप्पणी—२ (क) 'मम उर सो बासी यह उपहासी……' इति। भाव कि जो सुनेगा वह यही कहेगा कि कौसल्याका उदर कितना भारी था कि जिसमें इतना बड़ा ब्रह्म रह सका, एवं इतना बड़ा ब्रह्म कैसे अति छोटा होकर कौसल्याके गर्भमें रहा?

(ख) 'धीर मति थिर न रहै' इति। यहाँ 'न रहै' यह वर्तमान क्रिया कैसे दी, भविष्यक्रिया देनी थी कि 'न रही' अर्थात् सुनकर धीरोंकी मति स्थिर न रहेगी? इस शंकाका समाधान यह है कि यहाँ कौसल्याजी अपनेको कहती हैं कि करोड़ों ब्रह्माण्ड आपके रोम-रोममें हैं यह सुनते ही मेरी धीर बुद्धि स्थिर नहीं रह जाती अर्थात् चलायमान होती है कि करोड़ों ब्रह्माण्डोंको धारण करनेवाले मेरे उदरमें कैसे रहे। [पर, पंजाबीजी, पाँड़ेजी, बैजनाथजी और सन्त श्रीगुरुसहायलालजी 'धीर मति' से 'अन्य धीरों धैर्यवानों-की बुद्धि' ऐसा अर्थ करते हैं।] अर्थात् उनकी बुद्धि डगमगा जाती है, जैसे सतीजी भ्रममें पड़ गयी

थीं कि *'ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद। सो कि देह धरि होइ नृप जाहि न जानत बेद।'* संत श्रीगुरुसहायलालजी लिखते हैं कि 'अजन्मा ब्रह्मके प्राकृतवत् उत्पन्न होनेसे उपहास होगा इसका भाव यह है कि आप तो मेरे लिये केवल प्रकटमात्र हुए हैं पर कहलायेंगे कि अजन्मा होकर कौसल्यागर्भसंभूत हुए, इससे आपकी निन्दा होगी। यहाँतक कि धीर लोगोंकी भी बुद्धि बिगड़ जायगी। अर्थात् वे नास्तिक हो जायँगे। कहेंगे कि अज होकर वह प्राकृतोंके समान स्त्रीके मर्मस्थानका विषय होकर कैसे जन्म ले सकता है? वे इस बातको असत्य ठहरायेंगे अथवा ऐसा कहनेवालोंको शाप देने लगेंगे।

नोट—१ इससे मिलता हुआ श्लोक यह है—'**जठरे तव दृश्यन्ते ब्रह्माण्डाः परमाणवः॥ त्वं ममोदरसम्भूत इति लोकान्विडम्बसे। भक्तेषु पारवश्यं ते इष्टं मेऽथ रघूत्तम॥**' (अ० रा० १। ३। २५-२६) अर्थात् आपके उदरमें अनेकों ब्रह्माण्ड परमाणुओंके समान दिखायी देते हैं। तथापि आपने मेरे उदरसे जन्म लिया ऐसा जो आप लोगोंमें प्रकटकर उन्हें मोहित कर रहे हैं उससे मैंने आपकी भक्तवत्सलता देख ली।

नोट—२ यह श्रीसाकेतविहारीके अवतारवाले कल्पकी स्तुति है जो शतरूपा-कौसल्याजीने की है। (वै०)

टिप्पणी—३ *'उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना'* इति। (क) *'प्रभु'* का भाव कि समर्थ हैं जब जैसा चाहें वैसा बना दें, ज्ञानीको मूढ़, मूढ़को ज्ञानी। यथा—*'भलेहि मंद मंदेहि भल करहू।'* (१३७। २)—*'ग्यानी मूढ़ न कोइ। जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ॥'* (१२४) *'मसकहि करहिं बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।'* (ख) हास्य आपकी माया है। यथा—*'माया हास।'* (६। १५) *'बोले बिहसि चराचरराया।'* (१२८। ६) देखिये।—'**हासो जनोन्मादकरी च माया।**' आप तो अनेक नरनाट्य करनेको हैं, ज्ञान बना रहेगा तो माधुर्य लीलामें विघ्न होगा, अतएव हँसकर इनपर माया डाल दी, ज्ञानको ढक दिया, यथा—'**ग्वालोऽयं मे हरिः साक्षादिति ज्ञानमयी स्वभूत्। तदा जहास श्रीकृष्णो मोहयन्निव मायया**' इति। ('गर्गसंहिता')

ज्ञानीके निकट चरित्रकी शोभा नहीं रहती, जैसे स्वाँगके जाननेवालेके निकट स्वाँगकी शोभा नहीं रहती। इसीसे ज्ञान न रहने पाया। *'बहुत बिधि'* अर्थात् जन्मसे लेकर परधामयात्रातकके समस्त चरित्र। [पुनः *'मुसुकाना'* का भाव कि अभी तो ज्ञान बघारती हो, आगे जब वात्सल्यरसमें पगोगी तब यह सब भूल जाओगी। बैजनाथजी लिखते हैं कि यह मुस्कान दयादृष्टिमय है। विद्यामायाके वशसे शान्तरसमय रूक्ष ज्ञान मिटाकर वात्सल्यरसमय-बुद्धि कर दी।]

टिप्पणी—४ (क) *'कथा सुहाई—'* इति। तीन कल्पोंमें यह कथा सुनायी कि तुम पूर्वजन्ममें कश्यप अदिति थीं और चौथे कल्पमें सुनायी कि तुम मनु-शतरूपा थीं। तुमने हमारे लिये तप किया। हम तुम्हारे पुत्र हों यह वर तुमने माँगा और हमने दिया। अतएव हम तुम्हारे पुत्र हुए। तुमको पुत्रसुख देनेको प्रकट हुआ हूँ। तुम वह सुख लूटो। (ख) किसी कथाका नाम न दिया जिसमें सब कल्पोंकी कथाओंका ग्रहण हो जाय। (ग) तपसे भगवान् प्रसन्न होकर पुत्र हुए, इसीसे कथाको *'सुहाई'* कहा। (घ) *'बुझाई'* से जनाया कि माताको पूर्वजन्मकी सुध नहीं रह गयी थी। (ङ) ज्ञान उपजा तब मुस्कुराकर उसे दबा दिया और *'सुहाई'* कथा कहकर अपनेमें माताको प्रेम कराया, क्योंकि प्रेमीके निकट लीला बनती है, ज्ञानीके निकट नहीं।

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसु लीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥७॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥८॥

शब्दार्थ—**डोली**=फिर गयी, डिग गयी, चलायमान हुई, चलती हुई। *'सीला'* (शील)=शुद्ध पवित्र आचरण, स्वभाव, व्यवहार, यथा—'**शुचौ तु चरिते शीलम्**' इति। (अमरकोश) दोहा १९८ (६) भी देखिये।

अर्थ—(जब) माताकी वह (ज्ञान) बुद्धि परिवर्तित हो गयी, (तब) वह पुनः (यों) बोली—हे तात! यह रूप छोड़िये और अत्यन्त प्रियशील बालचरित कीजिये (क्योंकि) यह सुख परम अनुपम है॥ ७॥

माताके वचन सुनकर वे सुजान देवताओंके स्वामी बालक (रूप) होकर रोने लगे। इस चरितको जो लोग गाते हैं वे संसाररूपी कूएँमें नहीं पड़ते, हरिपद प्राप्त करते हैं॥ ८॥

टिप्पणी—१ (क) *'माता पुनि बोली'* इति। भाव कि प्रथम बोली थीं, यथा—*'कह दुइ कर जोरी'*, पर भगवान्‌ने हँसकर उनका ज्ञान हटा दिया। माताको सुन्दर कथा सुनाने लगे थे तब वह चुप हो गयी थीं, जब भगवान् बोल चुके, तब पुनः बोलीं। (ख) *'सो मति डोली'* इति। पूर्व इतना ही कहा था कि *'उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना'* और अब कहते हैं कि—*'सो मति डोली'*, इससे जनाया कि 'हास' और 'बुझाना' तथा *'कथा सुहाइ'* कथन करना, यह सब ज्ञानको अपहरण करनेके निमित्त था। अब ज्ञान दूर हो गया और पुत्रभाव प्राप्त हो गया, इसीसे वह रूप तज देनेको कहती हैं, अब बाललीला देखना चाहती हैं। सुतभाव प्राप्त हुआ इसीसे 'तात' सम्बोधन करती हैं। पूर्व ईश्वरभाव था तब 'श्रीकंत' 'अनंत' इत्यादि कहकर सम्बोधन किया था। [(ग) शिशुलीलाको *'अति प्रियसीला'* कहा, क्योंकि यह महा-महा-अलभ्य सुख है, ब्रह्मादि देवता इसके लिये तरसते हैं। यथा—*'बिधि महेस मुनि सुर सिहात सब देखत अंबुद ओट दिये।'* (गी० १। ७) *'जा सुखकी लालसा लटू सिवसुकसनकादि उदासी। तुलसी तेहि सुखसिंधु कौसिला मगन पै प्रेम पियासी॥'* (गी० १। ८) उसमें मग्न रहनेपर भी तृप्ति नहीं होती, अतः *'अति प्रियसीला'* कहा] पुनः, *'अति प्रियसीला'* का भाव कि प्रियशील तो ऐश्वर्य भी है पर माधुर्य्यलीला अति प्रियशील है *'परम अनूपा'* का भाव कि अनुपम सुख आपके रूपमें है, और परम अनुपम सुख आपकी बाललीलामें है, यथा—*'सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहु लहेउ। ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहि सज्जन सुमति'*, *'सोउ जानेकर फल यह लीला।'* रूप त्यागकर चरित करनेको कहा क्योंकि भक्तोंको हरिसे अधिक हरिचरित प्रिय है। [पाँड़ेजी लिखते हैं कि यह परम अनूप सुख है, इसलिये कि आपको बाललीलाका सुख हो और हमको माता होनेका सुख मिले। *'परम अनूपा'* क्योंकि ऐसा सुख किसी औरको नहीं प्राप्त हुआ और जिन्होंने इन चरितोंको देखा अथवा जो चरितोंको सुनेंगे वे सब समस्त सुकृतोंके पात्र हो जायेंगे। यथा—*'तुलसिदास ऐसो सुख रघुपति पै काहू तो पायो न बिये।'* (गी० १। ७) *'ह्वैहैं सकल सुकृत सुख भाजन, लोचन लाहु लुटैया। अनायास पाइहैं जन्म फल तोतरे बचन सुनैया॥ भरत राम रिपुदवन लषनके चरित सरित अन्हवैया। तुलसी तब के से अजहुँ जानिबे रघुबर नगर बसैया॥'* (गी० १। ९)]

नोट—१ इससे मिलता हुआ श्लोक यह है—'**उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्। दर्शयस्व महानन्दबालभावं सुकोमलम्॥**.....' (अ० रा० १। ३। २९) अर्थात् हे विश्वात्मन्! आप अपने इस अलौकिक रूपका उपसंहार कीजिये और परम आनन्ददायक सुकोमल बालभावका सुख दीजिये। अतिप्रियशीला में '**महानन्दबालभावं सुकोमलम्**' का भी भाव है।

टिप्पणी—२ *'सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना.....'* इति। (क) *'सुजाना'* का भाव कि प्रेम पहिचाननेमें आप 'सुजान' हैं—(*'नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ'*, *'जानसिरोमनि कोसलराऊ'*)। प्रथम माताको समझाकर प्रेम प्राप्त किया, यथा—*'कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै।'* प्रेम प्राप्त होनेपर उस प्रेमको पहिचाना, अन्तःकरणका सुतविषयक प्रेम देखा, अतएव 'सुजान' कहा। यथा—*'अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुरलभ गति दीन्हि सुजाना॥'* (अ० २७) *'देखि दयाल दसा सबही की। राम सुजान जानि जन जी की॥'* (२। ३०४) *'स्वामि सुजान जान सबही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की॥'* (२। ३१४) (ख) *'रोदन ठाना होइ बालक'* इति। माताके वचन हैं कि यह रूप तजकर बाललीला कीजिये, अतएव बालक होकर रुदन करने लगे, क्योंकि जब बालक उत्पन्न होता है तब रोने लगता है। [श्रीलमगोड़ाजी लिखते हैं कि *'ठाना'* शब्दमें एक ओर हास्यरस है तो दूसरी ओर *'जस काछिय तस चाहिय नाचा'* वाली लीलाका प्रारम्भ है] (ग) *'सुरभूपा'* अर्थात् सुरोंके रक्षक हैं। सुररक्षानिमित्त ही बालक हुए हैं, क्योंकि रावणकी मृत्यु नरके हाथ है, यथा—*'नरके कर आपन बध बाँची।'* और बालककी प्रथम लीला रुदन है, अतः रोने लगे हैं। इस तरह *'सुजाना'* कहकर यह भी जनाया कि लीला करनेमें परम चतुर हैं, कब क्या करना चाहिये यह सब जानते हैं। अतएव अत्यन्त प्रिय वाणीसे रुदन करने

लगे, जैसा आगे स्पष्ट कहते हैं। [बाबा हरीदासजी लिखते हैं कि सुजान होते हुए अजानकी तरह रोने लगे, इसीसे 'सुरभूप' कहा। सुरभूप हैं अर्थात् मायावी देवताओंके राजा हैं। *'रोदन ठाना'* इस लीलासे पुत्रके प्रसव होनेका सबको निश्चय कराया।]

प्र० सं०—*'होइ बालक सुरभूपा'* इति। *'होइ बालक'* से स्पष्ट है कि षोडशवर्षके नित्य किशोररूपसे आपने माताको दर्शन दिया था, अब नित्यकिशोररूप छोड़कर बालक बन गये। इसके साथ *'सुरभूपा'* का भाव यह है कि आपके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है, देवता रूप बदल सकते हैं और आप तो देवताओंके भी स्वामी हैं। पुनः भाव कि आप प्राकृत बालक नहीं हैं। किन्तु प्रकृतिपार हैं। प्राकृत बालक 'नरभूप' होते हैं, न कि सुरभूप। देवता दिव्य होते हैं और ये देवभूप हैं, इनका शरीर दिव्य चिदानन्दमय है।

टिप्पणी—३ *'यह चरित जे गावहिं'* इति। (क) स्तुतिके अन्तमें ग्रन्थकार उसका फल वा माहात्म्य कहते हैं कि श्रीरामजीके जन्मचरित्र गान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता, यथा—*'जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सियसमेत दोउ भाइ। भव मग अगम अनंदु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ॥'* (२। १२३) पथिकके दर्शनसे भवमार्ग दूर हुआ। जैसा चरित्र है वैसा ही विकार दूर करता है। (☞यह स्तुति प्रायः सभी वैष्णवमन्दिरोंमें आरतीके समय प्रातःकाल गायी जाती है। (ख) *'ते न परहिं भवकूपा'* का भाव कि यद्यपि उन्होंने भवकूपमें पड़ने योग्य कर्म किये हैं तथापि इस चरित्रके गानसे वे भवकूपमें नहीं पड़ते परं च हरिपद पाते हैं।)

नोट—२ इसी तरह अ० रा० में भी यहाँपर माहात्म्य कहा है। यथा—**'संवादमावयोर्यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि। स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत्॥'** (१। ३। ३४) अर्थात् जो इस संवादको पढ़े या सुनेगा वह मेरी सारूप्य मुक्ति पावेगा और मरणकालमें उसे मेरी स्मृति बनी रहेगी।

वीरकवि—१ यहाँ दो असम वाक्योंका समतासूचक भाव 'प्रथम निदर्शना अलंकार' है। २—*'ठाना'* शब्दसे लक्ष्यक्रम विवक्षितवाच्यध्वनि है, जिसमें सबको बालकोत्पत्तिकी एक साथ ही सूचना हो जाय।

दो०—बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥१९२॥

अर्थ—ब्राह्मण, गो, देवता और संतोंके हितार्थ (प्रभुने) मनुष्य-अवतार लिया। शरीर स्वेच्छारचित है, माया (सत्त्व, रज, तम तीनों) गुणों और इन्द्रियोंसे परे है॥१९२॥

टिप्पणी—१ विप्र आदिके हितार्थ अवतारकथनमें तात्पर्य यह है कि ये सब राक्षसोंद्वारा पीड़ित हैं, यथा—*'करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥ तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जनपीरा॥'* (१। १२) [श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि ब्राह्मण समीचीन शुभकर्मका स्थापन करते हैं, (धेनु यज्ञ तथा पूजनहेतु दूध, दही, घृत आदि देती है। गाय बछड़ा और दूध-घीसे संसारका हित करती है, उसके दूध, मूत्र, गोबर आदिसे पञ्चगव्य बनता है), सुर सेवा-पूजा लेकर जगत्की रक्षा करते हैं और संत तो सहज-स्वभावसे ही परहितनिरत होते ही हैं। अतएव इनके हितार्थ अवतार लेना कहा। पुनः धेनुसे धेनुरूप पृथ्वीका भी ग्रहण है, क्योंकि अवतारहेतुमें यह मुख्य है]

टिप्पणी—२ विप्र-धेनु-सुर-संत-हित अवतार लिया पर अवतारसे कुछ इन्हींका हित नहीं हुआ अपितु सबका हित है। पूर्व कह आये हैं कि *'जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिललोक बिश्राम।'* विप्रको प्रथम कहा क्योंकि अवतार लेते ही इन्हींका प्रथम हित हुआ कि असंख्य द्रव्य मिला, यथा—*'हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह।'* (१९३) मनुजसे यह भी भाव निकल सकता है कि यह अवतार 'मनु' दशरथके लिये है।

टिप्पणी—३ *'निज इच्छा निर्मित तनु'''''*', शरीर स्वेच्छारचित है अर्थात् यह शरीर कर्मोंके सम्बन्धका नहीं है जैसा कि मनुष्योंका होता है, यथा—*'जेहि जेहि जोनि करमबस भ्रमहीं।'* जीवोंके शरीर माया-गुण-इन्द्रियमय होते हैं और प्रभुका शरीर इन तीनोंसे परे है—*'चिदानंदमय देह तुम्हारी'* एवं *'अवतरेउ अपने भगत हित निज-तंत्र नित रघुकुलमनी।'* भगवान्‌ने श्रीमनुशतरूपाजीसे कहा था कि *'इच्छामय नरबेष सँवारे।*

होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे॥' (१५२। १) वही 'इच्छामय' तन बनाकर प्रकट हुए। मनुज-अवतार लिया क्योंकि विप्रधेनु-सुरसंतहित मनुज-तनसे ही हो सकेगा—*'रावन मरन मनुज कर जाचा।'* मनुजके भाव पूर्व आ चुके हैं। [*'निज इच्छा'* अर्थात् अपने संकल्पमात्रसे, प्राकृत पुरुषोंकी तरह नहीं। *'माया-गुनगोपार'* कहनेका भाव कि परम ऐश्वर्य त्यागे हुए नहीं है। यहाँ शङ्का होती है कि इच्छा वा संकल्पमात्रसे तो चराचरमात्र सभी रूप हुए, यथा—**श्रुतिः** '**एकोऽहं बहु स्याम्**' तब यहाँ *'मनुज अवतार'* लेनेमें *'निज इच्छा'* कहा सो क्यों? मनुष्य अवतार क्यों हुआ? इस शङ्काके निवारणार्थ कहा कि *'बिप्र धेनु सुर संत हित'''''* अर्थात् इन्होंने रावणके वधके लिये अवतार लेनेकी प्रार्थना की थी और उसको वर था कि नरके हाथ मरेगा। (मा० त० वि०)]

नोट—१ पूर्वार्द्धमें साधारण बात कहकर उत्तरार्द्धमें उसीका विशेष सिद्धान्तसे समर्थन करनेका भाव 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार है। २ श्रीबैजनाथजी यह शङ्का उठाकर कि 'गरीबके घर ऐसे अवसरपर ऐसी अवस्थामें दो-एक स्त्रियाँ अवश्य रहती हैं और यहाँ तो चक्रवर्तीमहाराजकी पटरानियाँ हैं, फिर भला कैसे सम्भव है कि यहाँ (सूतिकागारमें और उसके निकट) कोई और न था? तो फिर भी किसी औरने न जाना, किसीने स्तुति करते न सुना, दर्शन केवल कौसल्याजीको हुए यह कैसे मान लें?' उसका समाधान करते हैं कि यह भगवत्-लीला है—*'सो जानइ जेहि देहु जनाई।'* (भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसमय भी देखिये, कितने पहरेदार वहाँ थे। माता-पिता बन्धनमें थे तो भी उस समय सब सो गये। इनकी बेड़ियाँ खुल गयीं, इत्यादि। *'अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोग।'* भगवान् जिसपर कृपा किया चाहें उसपर लाखोंके बीचमें भी कृपा कर देते हैं और दूसरेको कुछ भी पता नहीं चलता। यह बात तो अनुभवी भगवत्कृपापात्र ही जानते-बूझते हैं, दूसरोंकी समझके बाहर है।)

ब्रह्मस्तुति (दोहा १८६ छंद) और कौसल्यास्तुति (प० प० प्र०)

श्रीब्रह्माजी		श्रीकौसल्याजी		श्रीब्रह्माजी		श्रीकौसल्याजी
सुरनायक	छंद १	*१ सुरभूपा*	छंद ४	*ब्यापक*	छंद २	*१४ अमाना (अप्रमेय)*
जनसुखदायक	,,	*२ जन अनुरागी*	,, २	*चरित पुनीत*	,,	*१५ यह चरित जे गावहिं....*
असुरारी	,,	*३ खरारि*	,, १	*मुकुंदा, भवभयभंजन*		*१६ ते न परहिं भवकूपा*
सिंधुसुता प्रियकंता	,,	*४ श्रीकंता*	,, २	*बिगतमोहमुनि*	छंद २	*१७ मुनिमनहारी (सगुनरूप)*
गोद्विजहितकारी	,,	*५ बिप्रधेनुसुर''''हितकारी*		*बृंदा''''ध्यावहिं*		
अद्भुतकरनी	,,	*६ अद्भुतरूप*	छंद १	*जेहि सृष्टि उपाई*	छंद ३	*१८ ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया*
मरम न जानै कोई	,,	*७ मम उर सो बासी, थिर न रहै*		*अतिअनुरागी*	२	*१९ जन अनुरागी*
सहज कृपाला दीन दयाला		*८ प्रगटकृपाला दीनदयाला*		*भगवाना*		*२० प्रभु*
करहु अनुग्रह	,,	*९ तजहु तात यह रूपा परम अनूपा*		*जाकहँ कोउ नहिं जाना*		*२१ ज्ञानातीत*
अबिनासी	,, २	*१० अनंता*		*बेद पुकारे*		*२२ जेहि गावहिं श्रुति*
गोतीतं	,,	*११ गोपार, गुन (इन्द्रिय) अतीता*		*गुनमंदिर*		*२३ सब गुन आगर*
मायारहित	,,	*१२ मायातीता*		*सब बिधि सुंदर*		*२४ सोभासिंधु*
परमानंदा	छंद २	*१३ यह सुख परम अनूपा*		*सुखपुंजा*		*२५ सुखसागर*

☞ मनुशतरूपाको जो दर्शन हुआ है, उससे भी पाठक मिलान कर लें। शब्दोंके भाव स्पष्ट हो जायँगे। प० प० प्र०—कौसल्या-स्तुति भरणी नक्षत्र है। साम्य इस प्रकार है—(१) यह दूसरी स्तुति है और भरणी दूसरा नक्षत्र है। (२) इस स्तुतिसे ही रामकथाका आरम्भ है। *'राम कथा कलिपन्नग भरनी'* कहा ही गया है। सकल विश्व आनन्द और उत्साहसे भर गया है और '**ध्रियते अनया इति भरणी।**' (३) भरणी नक्षत्रमें तीन तारे हैं। यहाँ *'मायागुनग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता', 'करुनासुखसागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता'* और *'ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै',* ये तीन तारे हैं। भाव यह कि रामकथारूपिणी भरणी वेद-पुराण-श्रुति-संतोंके वचनोंको

लक्ष्य करके ही कही है। (४) भरणी नक्षत्रका आकार योनिसदृश है; तीनों तारे एक ही प्रतिके (4th. dimention) हैं। वेद, पुराण और संतोंके वचन समान महतीके हैं यह जनाया। योनि=जन्मस्थान, कारण। और यह स्तुति अजन्माके जन्मका कारण है। (५) भरणीका देवता यम है और यह स्तुति दुष्टोंका शमन, संयमन करनेवाले प्रभुकी ही है। '**यमो दण्डधरः कालः**' और '***कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता***' ऐसे जो प्रभु हैं उनकी यह स्तुति है। यमका अर्थ विष्णु भी है। (६)'***दानि मुकुति धन धरम धामके***' यह नक्षत्रकी फलश्रुति है और स्तुतिकी फलश्रुति है—'***यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं***' (अर्थात् धाम पाते हैं) और '***ते न परहिं भव कूपा***' (अर्थात् मुक्त हो जाते हैं)। बिना धर्मके मुक्ति वा हरिपद नहीं मिलता, और '***मुनिधन जन सर्बस***' तो इस स्तुतिमें ही सबको साक्षात् दिया है। इसकी फलश्रुति है '***दानि मुकुति धन धरम धाम के।***' सो '***खरारि***' कहकर प्रभुद्वारा धर्मस्थापन कहा '***श्रीकंता***' कहकर धनदाता कहा, '***हरिपद***' से धाम और '***न परहिं भव कूपा***' से मुक्ति कही। (वि० त्रि०)

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी॥ १॥
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँद मगन सकल पुरबासी॥ २॥

शब्दार्थ—**संभ्रम**=आतुरतासे। शीघ्रतासे। हर्षकी त्वरासे। यथा—'**संभ्रमोऽसाध्वसेऽपि स्यात्संवेगादरयोरपि।**' इति (**मेदिनी**) '***सहित सभा संभ्रम उठेउ रबिकुल कमल दिनेसु॥***' (२। २७४)

अर्थ—बच्चेके रोनेका परम प्रिय शब्द सुनकर सब रानियाँ आतुरतासे वहाँ चली आयीं॥ १॥ दासियाँ हर्षित होकर जहाँ-तहाँ दौड़ी गयीं। सभी पुरवासी आनन्दमें मग्न हो गये॥ २॥

टिप्पणी—१ (क) '***सिसु रुदन***' पर प्रसंग छोड़ा था, यथा—'***सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक ……।***' बीचमें इस चरितके गानका माहात्म्य कहने लगे, यथा—'***यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भव कूपा।***' फिर अवतारका हेतु कहा—'***बिप्र धेनु सुर संत हित ……।***' अब पुनः उसी जगहसे प्रसंग उठाते हैं—'***सुनि सिसु रुदन ……।***' (ख) '***सिसु रुदन***' को '***परम प्रिय बानी***' कहनेका भाव कि पूर्व बाललीलाको '***अति प्रिय सीला***' कहा था—'***कीजै सिसुलीला अति प्रिय सीला ……।***' शिशुरुदन बाललीला है। अतएव उसे परमप्रिय कहा। सम्भ्रम अर्थात् जल्दी आनेसे सब रानियोंका हर्षित होना सूचित किया। सब रानियाँ '***चलि आईं***' इससे जनाया कि प्रथम वहाँ कोई नहीं था। एकान्तमें भगवान्‌ने कौसल्याजीको दर्शन दिये। ['***सुनि***' और '***चलि आईं***' इन शब्दोंसे प्रतीत होता है कि सबको यही जान पड़ा कि बालक हमारे निकट ही रो रहा है। यह भगवत्-लीला है कि सबको अपने-अपने महलोंमें या जो जहाँ थीं वहीं रुदनका शब्द सुनायी पड़ा। बाबा हरीदासजी लिखते हैं कि '**संभ्रमस्त्रयमिच्छति भयमुद्वेगमादरम्**' अर्थात् सम्भ्रम पद तीनकी इच्छा करता है—भय, उद्वेग और आदर। जहाँ जैसा देश-काल हो वहाँ वैसा अर्थ जानना चाहिये। यहाँ आदर और प्रीतिका देश है। बैजनाथजी '***संभ्रम***' का भाव यह लिखते हैं कि सबको अत्यन्त चाह थी कि राजाके पुत्र हो, इससे पुत्रकी रोदन-वाणी अत्यन्त प्रिय लगी, अतएव वात्सल्यरस-वश हर्षके मारे विह्वलतासे उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी, इससे वे सूतिका-गृहमें ही चली आयीं। सब रानियोंने रोना सुना, इस कथनसे यह भी सूचित होता है कि गर्भाधानके समयसे सब दिन गिनती रहीं, सबको मालूम था कि आज-कलमें पुत्रजन्म होनेहीवाला है, सबका ध्यान उसी ओर था, इसीसे सर्वप्रथम उन्हींने रोना सुना और सबने सुना।]

वि० त्रि० सब महलोंतक वाणी (रुदन) पहुँची और फिर भी परम प्रिय है। परम उत्कण्ठा है, अतः रानियाँ स्वयं चली आ रही हैं, दासी भेजकर कोई समाचार नहीं पुछवा रही हैं। पहिलेसे प्रसवकालकी वेदनाका कोई समाचार नहीं मिला। एकाएक शिशुरुदन ही सुनायी पड़ा।

टिप्पणी—२ (क) '***हरषित जहँ तहँ धाईं दासी***' इति। जब सब रानियाँ आयीं तब उनके साथ-ही-साथ दासियाँ भी आयीं। दासियोंको काम करनेकी आज्ञा हुई, तब वे जहाँ-तहाँ दौड़ी गयीं। इन्हींके द्वारा पुरवासियोंको खबर मिली। दासियाँ हर्षित हैं। उनके हर्षका कारण पुरवासी उनसे पूछते हैं, यथा—'**कहु**

कारन निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बयन।' [दासियाँ हर्षसे फूली हुई उस समयके आवश्यक व्यवहारियोंको बुलानेके लिये दौड़ी चली जा रही हैं, लोग इस तरह जाते हुए देख पूछते भी हैं और स्वयं भी जहाँ-तहाँ कहती हैं। राजाके पुत्र न होनेसे सब दुःखी थे; अग्निदेवके वाक्यसे सबको आशा लगी थी, वह सफल हुई। अतएव सभी आनन्दमें मग्न हो गये हैं।] (ख) *'आनँद मगन सकल पुरबासी'* इति। यह कहकर जनाया कि सब पुरवासी आनन्दमें मग्न होकर जन्मोत्सव करने लगे; जैसे राजाने सुननेपर आनन्दमग्न हो जन्मोत्सव किया, यथा—*'परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा॥'* तथा *'सींचि सुगंध रचैं चौकें गृह आँगन गली बजार। दल-फल-फूल दूब दधि रोचन घर घर मंगलचार॥'* (गी० १। २) (ग) [रोना सुनकर रानियों, दासियों, पुरवासियों सभीका आनन्दमग्न होना अर्थात् कारण-कार्यका एक संग होना 'अक्रमातिशयोक्ति अलङ्कार' है]

प० प० प्र०—जैसे मानसमें केवल तीन रानियोंके नाम हैं, वैसे ही गीतावली, वाल्मी० रा०, अ० रा० और पद्मपुराण आदिमें हैं। मानसमें तीनसे अधिक रानियोंका उल्लेख कम-से-कम ३० बार मिलता है। भेद इतना ही है कि सर्वमत-संग्रह-हेतु ३५०, ७००, ७५० इत्यादि कोई निश्चित संख्या मानसमें नहीं दी। दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे।—(१) *'प्रथम राम भेंटी कैकेयी। भेंटी रघुबर मातु सब॥'* (२। २४४) *'गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु भेंटी संपति अति रंका॥ पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता। परे पेम ब्याकुल सब गाता॥'* (२। २४५। ४)—यहाँ कैकेयी, रघुवर-मातु सब, सुमित्रा और (राम) जननी (कौसल्या) सबका स्पष्ट उल्लेख है। (२) *'सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी॥'* (१। १९३। १) कौसल्याजी इन रानियोंमें नहीं हैं। यदि केवल तीन ही रानियाँ होतीं तो *'सब'* दो ही रही थीं, अतः कह सकते थे कि *'चलि आईं दुइ रानी'* पर कहा *'सब'*। इससे सिद्ध हुआ कि और अनेक रानियाँ थीं। (३) *'पूछिहहिं दीन दुखित सब माता।'''पूछिहि जबहिं लखन महतारी। कहिहउँ कवन सँदेस सुखारी॥ राम जननि जब आइहि धाईं।'* (२। १४६। १—३)—यहाँ 'सब माता', *'सुमित्रा'* और *'कौसल्या'* जीका स्पष्ट निर्देश है।

प्र० स्वामीके विचार पूर्व दोहा १८८ के नोट २ (प्र० सं०) को पुष्ट और उसके अन्तिम विचारोंका खण्डन करते हैं।

दसरथ पुत्र जन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना॥ ३॥
परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा॥ ४॥

अर्थ—श्रीदशरथजी पुत्रका जन्म कानोंसे सुनकर मानो ब्रह्मानन्दमें समा गये॥ ३॥ मनमें परम प्रेम है, शरीर पुलकित (रोमाञ्चको प्राप्त) है, बुद्धिको धीरज देकर उठना चाहते हैं॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) *'पुत्र जन्म सुनि'* इति। *'हरषित जहँ तहँ धाईं दासी'* जो पूर्व कह आये, उन्हींमेंसे कुछ दासियोंने राजाको खबर दी। जो प्रथम खबर देगा वही विशेष कृपाका पात्र होगा। बखशीशके लिये तुरत दासियोंने खबर दी। (ख) *'ब्रह्मानंद समाना'* इति। अर्थात् ऐसा भारी आनन्द हुआ जैसा *'ब्रह्मानंद मगन'* को होता है। अथवा यह कहें कि पुत्र-जन्मका शब्द जो कानमें पड़ा वह मानो शब्द नहीं है, वरंच ब्रह्मानन्द ही है जो कानोंमें समा गया है। जब श्रीरामजीके जन्मका सन्देश ब्रह्मानन्दके समान है, तब श्रीरामजीकी प्राप्तिके आनन्दको क्या कहा जाय? खीर (हविष्यान्न) से भगवान्की प्राप्ति हुई, इसीसे हविकी प्राप्तिमें ब्रह्मानन्द हुआ था, यथा—*'परमानंद मगन नृप हरष न हृदयँ समाइ॥'* (१८९) वही आनन्द जन्म सुनकर हुआ''' *'मानहु ब्रह्मानंद समाना'* ब्रह्मानन्द और परमानन्द एक ही हैं।

नोट—१ श्रीलमगोड़ाजी लिखते हैं कि 'सच है, सगुण-साकाररूपका आनन्द ऐसा ही है। मुसलमान कवि सर मुहम्मद इकबालसे भी न रहा गया। वे कहते हैं—*'कभी ऐ हक़ीक़ते मुन्तज़र नज़र आ लिबासे मजाज़में। कि हज़ारों सिजदे तड़प रहे हैं मेरे जबीन नियाज़में।'* अर्थात् ओ असीम सत्ता! जिसकी तीव्र प्रतीक्षा हो रही है, कभी तो भौतिक आवरणमें प्रकट हो, हजारों सिजदे मेरी पेशानीमें तेरे चरणोंपर अर्पित

होनेके लिये तड़प रहे हैं।—यह तो एक रूप है। वेदकी १६०० श्रुतियोंमें उपासनाके उतने रूप दिखाये और भक्तिने *'जाकी रही भावना जैसी'* के अनुसार भक्तके लिये *'प्रभु मूरति'* वैसी प्रकट कर दी, फिर भी किसीने पार न पाया। बात वही है जो मौलाना रूमके इस पदसे प्रकट है—*'बनामे आं कि ऊ नामे न दारद। बहर नामे कि ख्वानी सर बरआरद॥'* अर्थात् मैं उसके नामसे प्रारम्भ करता हूँ जिसका कोई नाम नहीं है, पर जिस भी नामसे उसे पुकारो वह प्रकट हो जाता है।'

नोट—२ श्रीबैजनाथजी इस प्रकार भी अर्थ करते हैं कि 'मानो ब्रह्मानन्द कानोंके द्वारा आकर हृदयमें समा गया।' और श्रीपंजाबीजी लिखते हैं कि 'रामचन्द्रजी ब्रह्म ही हैं परंतु राजाका उनमें पुत्रभाव भी है, इसलिये यहाँ उत्प्रेक्षा की गयी'। श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि 'पुत्र होनेका सुख प्रवृत्तिमार्ग है और ब्रह्मानन्द निवृत्तिमार्ग है। पुत्र होना लौकिक विषयी सवासिक सुख है, पर यहाँ यह बात नहीं है। राजा निर्वासिक श्रीरामप्रेमानन्दमें मग्न हैं, पर यहाँ प्रत्यक्ष प्रेमानन्द न कहा, क्योंकि प्रेममें उमंग उठती-बैठती है जैसे जलमें लहर और यहाँ एकरस थिर प्रेम है। पुनः (वह प्रेम) वासनारहित है। अतएव कहा कि ऐसा सुख हुआ मानो ब्रह्मानन्दमें डूब गये।' कुछ लोग *'समाना'* का अर्थ सामान्य करते हुए यह भाव कहते हैं कि 'जन्मका सन्देशा ऐसा है कि उसके आगे ब्रह्मानन्द सामान्य जान पड़ने लगा, यथा—*'जेहि सुख लागि पुरारि असुभ बेष कृत सिव सुखद। अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महँ संतत मगन॥'*(७। ८८) अथवा, ब्रह्मानन्द लज्जावश समुद्रादिमें समा गया'। (रा० प्र०)

नोट—३ योगी जब ब्रह्मानन्दमें मग्न हो जाते हैं तब उनको शरीरकी सुध-बुध नहीं रह जाती, वैसी ही राजाकी दशा है। प्रेम और हर्षमें उनके सारे अङ्ग शिथिल हो गये, इसीसे वे उठ नहीं पाते। यहाँ **'उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार'** है। बाबा हरीदासजीका मत है कि श्रीदशरथजी महाराज दधिकाँदोके लिये धीरज धरकर उठना चाहते हैं। और, पंजाबीजी तथा पं० रा० कु० जीका मत है कि पुत्रके दर्शनके लिये मतिको धीर कर रहे हैं कि प्रभुका दर्शन अवश्य चलकर करना चाहिये। बैजनाथजीका मत है कि 'दर्शनके लिये बार-बार उठना चाहते हैं, पर लोकलज्जासे मतिको धीर करके रह जाते हैं। (मेरी समझमें पं० रामकुमारजीका मत ठीक है।) अब आगे क्या करना है इस निश्चयके लिये बुद्धिको स्थिर कर रहे हैं।',(वि० त्रि०)

टिप्पणी—२ (क) *'परम प्रेम मन—'* इति। यहाँ राजाके तन, मन और वचन तीनोंका व्यवहार वर्णन किया है। बालकके लिये मनमें *'परम प्रेम'* है, तनमें पुलकावली हो रही है, वचनसे बाजा बजानेको कहा—*'कहा बोलाइ बजावहु बाजा।'* (ख) ब्रह्मानन्दको प्राप्त हुए, इसीसे *'परम प्रेम'* हुआ कि चलकर बालकको देखें, इसीसे उठना चाहते हैं और बालकके 'विषे' लिये बुद्धिको धीर अर्थात् स्थिर करते हैं जैसा आगे लिखते हैं—*'जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई॥'* जैसे ब्रह्मानन्द नहीं कहते बनता, वैसे ही परम प्रेम भी कहते नहीं बनता, यथा—*'पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेम कछु जाइ न बरना॥'* (१०२। ७) इसीसे दोनोंकी *'समता'* कही। (ग) पुनः *'चाहत उठन—'* अर्थात् नान्दीमुख-श्राद्धादि कृत्य कर्म करनेके लिये उठना चाहते हैं, बुद्धिको धीर करते हैं, इस कथनसे पाया गया कि बुद्धि ब्रह्मानन्दमें मग्न है, कहती है कि 'सुनकर जो ब्रह्मानन्द हुआ उसे भोगिये, कहाँ जाइयेगा' और उठने नहीं पाते।

नोट—४ मिलता हुआ श्लोक यह है—**'अथ राजा दशरथः श्रुत्वा पुत्रोद्भवोत्सवम्। आनन्दार्णवमग्नोऽसावाययौ गुरुणा सह॥'**(अ० रा० १। ३। ३६) अर्थात् श्रीदशरथजीने पुत्रोत्पत्तिरूप उत्सवका शुभ समाचार सुना तो वे मानो आनन्दसमुद्रमें डूब गये और गुरु वसिष्ठके साथ वे राजभवनमें आये। अ० रा० में भी यह नहीं बताया कि किससे सुना, वैसे ही मानसमें भी नहीं लिखा है। परंतु रानियोंका सुनना कहकर, दासियोंका इधर-उधर जाना कहकर उसके पश्चात् दशरथजीका सुनना कहनेसे अनुमान हुआ कि किसी दासीने कहा होगा। *'सुनि काना'*—क्या सुना? 'पुत्रजन्म'। यहाँ *'सिसु रुदन'* सुनना नहीं कहते हैं, इससे दासी आदिसे सुनना पाया जाता है। वै० भू० जीका मत है कि 'जब कोई उत्तम समाचार किसीके द्वारा मिलता है तब उसको बखशीश दी जाती है, यदि दासीसे सुना होता तो बखशीश देना भी लिखा जाता, अतः यहाँ *'सुनि काना'* का भाव यही

है कि शिशुका रुदन सुनकर ही पुत्रजन्मका निश्चय किया और परमानन्दसे भर गये, तब परिचारिकाओंको *'कहा बुलाइ बजावहु बाजा।'* खबर देने कोई गया होता तो उसे पुरस्कार देते और उसीसे बाजा बजवानेके सम्बन्धमें आज्ञा देते।' यह भी हो सकता है और यह भी कि सुननेवालेका जब नाम नहीं दिया तब पुरस्कार देना कैसे लिखते। दासीने सुननेपर सेवकोंको बुलाकर बाजाके सम्बन्धमें आज्ञा दी हो यह भी हो सकता है। अथवा, *'जहँ तहँ धाईं दासी'* वे दौड़ती जा रही हैं, जो मिलते हैं उनसे शुभसंवाद कहती जाती हैं (कि बड़ी महारानीके पुत्र हुआ)। यही शब्द राजाके कानमें पड़ा। अतः *'पुत्रजन्म सुनि काना'* कहा।

जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई॥५॥
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा॥६॥

अर्थ—जिसका नाम सुनते ही मंगल-कल्याण होता है, वही प्रभु मेरे घर आये हैं॥ ५॥ राजाका मन परमानन्दसे परिपूर्ण हो गया। उन्होंने बाजेवालोंको बुलाकर कहा कि बाजे बजाओ। (वा, उन्होंने कहा कि बाजेवालोंको बुलाकर बाजे बजवाओ)॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) *'जाकर नाम सुनत सुभ होई।'* इति। राजाने तो मनु-तनमें वर माँगा था कि *'सुत बिषयक तव पद रति होऊ।'* (१५१। ५) तब यहाँ ऐश्वर्यका ज्ञान कैसे हुआ? इसमें बात यह है कि वसिष्ठजीने राजाको ऐश्वर्यज्ञान कराया था कि *'धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी॥'* (१८९। ४) *'कहि बसिष्ठ बहुबिधि समुझायउ।'* (१८९। ३) में भी पूर्व वरदान आदि कहकर समझाना पाया जाता है। इसीसे अभी राजाको वह ऐश्वर्यज्ञान बना हुआ है, आगे पुत्रके दर्शनके पश्चात् न रह जायगा। (ख) *'सुनत सुभ होई',* यथा—*'जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहिं सम गति अबिनासी॥'* शङ्करजी नाम सुनाकर मुक्ति देते हैं। इस प्रकार *'सुभ'* का अर्थ यहाँ मुक्ति है। (ग) राजाके चतुष्टय अन्तःकरण भगवान्में लगे यह इस प्रसङ्गमें दिखाया है—*'परम प्रेम मन पुलक सरीरा।'* सुनकर मनमें प्रेम हुआ, चित्तसे दर्शनार्थ *'चाहत उठन',* बुद्धि भगवान्में स्थिर कर रहे हैं—*'करत मति धीरा'* और *'मोरे गृह आवा प्रभु सोई'* वही प्रभु मेरे घर आया यह अहंकार है। [(घ) *'मोरे गृह आवा'* अर्थात् पुत्रभावसे प्राप्त हुआ। अतः चलकर दर्शन करना चाहिये। (वै० रा० प्र०)]

टिप्पणी—२ (क) *'परमानंद पूरि मन राजा'* इति। प्रथम तो कानोंमें ब्रह्मानन्द समाया, अब ब्रह्मानन्दसे मन परिपूर्ण हो गया। (ख) *'कहा बोलाइ बजावहु बाजा'* इति। बाजा बजनेसे सबको सूचना हो जाती है, दूसरे मङ्गल-अवसरपर बाजे बजाये ही जाते हैं। यह आनन्दोत्सवका द्योतक है, इसीसे प्रथम बाजा बजानेकी आज्ञा दी तब वसिष्ठजी और विप्रवृन्दके बुलानेको कहा, उसी क्रमसे कह रहे हैं। (ग) पुरवासियोंके सम्बन्धमें *'आनँद मगन सकल पुरबासी'* और राजाके सम्बन्धमें *'परमानंद पूरि मन राजा'* कहकर जनाया कि राजाको सबसे अधिक सुख हुआ। (घ) [श्रीकरुणासिंधुजी लिखते हैं कि 'परमानन्दमें मन-कर्म-वचनके व्यवहार स्थिर हो जाते हैं, फिर बजानेकी आज्ञा क्योंकर दी? उत्तर—व्यवहारके दो भेद हैं—स्वार्थिक और पारमार्थिक। स्वार्थिक व्यवहार विषयानन्दमय है और पारमार्थिक परमानन्दमय। राजा दशरथका व्यवहार परमानन्दहीमें है।'] (ज्ञानीको ब्रह्मानन्द होता है और भक्तको परमानन्द होता है। राजाको क्रमसे दोनों हुए। पहले ब्रह्मानन्दमें डूबा-डूब हो गये, जब अपनेको सँभाला, मतिधीर किया तो परमानन्दसे पूर्ण हो उठे।—वि० त्रि०)

गुर बसिष्ठ कहँ गएउ हँकारा। आए द्विजन सहित नृपद्वारा॥७॥
अनुपम बालक देखिन्हि जाई। रूप रासि गुन कहि न सिराई॥८॥

शब्दार्थ—हँकारना=बुलाना, यथा—*'आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हँकारहीं॥'* (७। २९) त्रिपाठीजी लिखते हैं कि राजाके यहाँ किसी आनन्दमें सम्मिलित होनेके लिये जब बुलाहट आती है तो उसे आज भी 'हँकार' कहते हैं।

अर्थ—गुरु वसिष्ठजीको बुलावा गया। वे ब्राह्मणोंसहित राजद्वारपर आये॥ ७॥ उन्होंने जाकर उपमारहित बालकको देखा, जो रूपकी राशि है और जिसके गुण कहनेसे नहीं चुक सकते अर्थात् जो अनन्त गुणवाला है॥ ८॥

टिप्पणी—१ (क) वसिष्ठजी पुरोहित हैं। जो पुरोहितका काम है वही करनेके लिये बुलाये गये हैं। (ख) *'आए द्विजन सहित नृपद्वारा'* नृपद्वारपर आना कहकर जनाया कि आकर प्रथम उन्होंने राजासे भेंट की। तत्पश्चात् राजाके साथ सब लोग भीतर गये। राजाने तो वसिष्ठजीको बुलवाया पर वे ब्राह्मणसहित आये, यह कहकर जनाया कि धर्मके काम सब वसिष्ठजीके ही अधीन हैं, जो वे चाहें सो करें, इसीसे राजाका ब्राह्मणोंको बुलाना नहीं लिखा। वसिष्ठजी सबको बुलाकर साथ लेते आये। श्राद्धादि कर्मोंके अन्तमें दान देना पड़ता है। यदि साथ न लाते तो फिर बुलवाना पड़ता, कार्यमें विलम्ब होता। गुरुदेव सब रीति जानते हैं, अतः साथ लाये। आगे दक्षिणा देनेका उल्लेख स्वयं कविने किया है—*'हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह।'* यथा—*'अब सब बिप्र बोलाइ गोसाईं। देहु धेनु सब भाँति बनाईं॥ सुनि गुर करि महिपाल बड़ाई। पुनि पठए मुनिबृंद बोलाई॥'* इत्यादि।

टिप्पणी—२ (क) *'अनुपम बालक देखिन्हि जाई'* इति। गुरुको बुलावा गया और वे आये। आनेके साथ ही पहला काम उन्होंने यही किया कि जाकर बालकके दर्शन किये, इससे सूचित हुआ कि उनको भी बालकके दर्शनकी बड़ी उत्कण्ठा है, क्योंकि वे जानते हैं कि स्वयं भगवान् अवतरे हैं। रूपकी राशि हैं और रूपकी कोई उपमा नहीं है, इसीसे *'अनुपम'* कहा। (ख) *'रूप रासि गुन कहि न सिराई'* यहाँ यह शङ्का होती है कि अभी तो बच्चा जन्मा है (उसके कोई गुण प्रकट होनेका अवसर भी नहीं आया तब) बालकमें कौन गुण हैं जो कहे नहीं चुकते। समाधान यह है कि यहाँ 'गुण' से *'लक्षण'* अभिप्रेत हैं। 'सूती' के बालकमें अनेक लक्षण हैं। यथा—*'कहहु सुताके दोष गुन मुनिबर हृदय बिचारि॥'* (६६) *'सब लच्छन संपन्न कुमारी॥'* (६७। ३) *'सैल सुलच्छनि सुता तुम्हारी॥'* (६७। ७) [*'देखिन्ह जाई'* यह देखना ऐश्वर्य-सम्बन्धमें है] (ग) रूपराशि अर्थात् यहाँ सौंदर्यका ढेर है, इसी खलियानके दाने जो इधर-उधर कुछ छिटके उसीसे संसारकी सुन्दरता है। [बिना भूषणके ही भूषितवत् देख पड़े उसे 'रूप' कहते हैं। यथा—'**अङ्गानि भूषितान्येव निष्काद्यैश्च विभूषणैः। येन भूषितवद्भाति तद्रूपमिति कथ्यते॥**' उस रूपकी ये राशि हैं। रूपराशिमें द्युति, लावण्य, सौन्दर्य, रमणीयता, कान्ति, माधुरी और सुकुमारतादि गुण, अथवा उदारता, सुशीलतादि अनेक गुण हैं। (वै०)]

दो०—नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह॥१९३॥

अर्थ—तब राजाने नान्दीमुख-श्राद्ध करके सब जातकर्म-संस्कार किये और ब्राह्मणोंको स्वर्ण, गऊ, वस्त्र और मणि दिये॥ १९३॥

टिप्पणी—१ नान्दीमुख-श्राद्ध करके तब जातकर्म किया जाता है। जातकर्मके पश्चात् दान दिया, यथा—*'जातकरम करि कनक बसन मनि भूषित सुरभि समूह दये।'* (गी० १। ३) *'जातकरम करि पूजि पितर सुर दिये महिदेवन्ह दान।'* (गी० १। २)

'नान्दीमुखश्राद्ध।' 'जातकर्म'

जीवकी सद्गतिके लिये दस कर्म कहे गये हैं—गर्भाधान, सीमन्तक, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, यज्ञोपवीत, विवाह और मृतककर्म। जातकर्मसे लेकर विवाहतक सब कर्मोंके आदिमें आभ्युदयिक नामक प्रसिद्ध नान्दीमुखश्राद्धका अधिकार है। जन्मपर जातकर्म होता है, उसके आदिमें नान्दीमुख-श्राद्ध चाहिये। (बैजनाथजी) निर्णय-सिंधुमें लिखा है कि जन्म, यज्ञोपवीत इत्यादिपर यह श्राद्ध पहले पहरमें होता है, परन्तु पुत्रजन्ममें समयका नियम नहीं है। यह श्राद्ध माङ्गलिक है; इसलिये पिताको पूर्वमुख बिठाकर

वेदिकापर दूब बिछाकर चौरीठा, हरदी, तिल, दही और बेरीके फल मिलाकर इनके नौ पिण्ड बनाकर पिण्डदान कराया जाता है, फिर दक्षिणा दी जाती है। (बैजनाथजी) 'नान्दीमुख' नामका कारण यह है कि पितृगण इस पिण्डको लेनेके लिये नाँदकी भाँति मुख फैलाये रहते हैं।—(करुणासिन्धुजी)

☞'जातकर्म' इस संस्कारमें बालकके जन्मका समाचार सुनते ही पिता मना कर देता है कि अभी बालककी नाल न काटी जाय। तदुपरान्त वह पहने हुए कपड़ोंसहित स्नान करके कुछ विशेष पूजन वृद्धि-श्राद्ध आदि करता है। इसके अनन्तर ब्रह्मचारी, कुमारी, गर्भवती या विद्वान् ब्राह्मणद्वारा धोई हुई सिलपर लोहेसे पीसे हुए चावल और जौके चूर्णको अँगूठे और अनामिकासे लेकर मन्त्र पढ़ता हुआ बालककी जीभपर मलता है। फिर मधु और घृत मिलाकर पिता उसे चार बार सोनेके पात्रसे बालककी जीभपर लगाता है। फिर कुश और जलसे बालकका प्रोक्षण करके आचार्य दहिने कानमें आठों कण्डिकाएँ सुनाते हैं। माता दहिना स्तन धोकर नाल और बालकपर डालती है। गणेशादिका पूजन करके, वेदी बनाकर सरसों, पीपल और घीकी आहुति देते हैं, शिवमन्त्रसे सूत बाँधा जाता है, फिर छुरेका पूजन करके नाल काटा जाता है।

☞ ये दोनों कर्म सूतिकागारहीमें होते हैं, पर आजकल प्रायः देखनेमें नहीं आते। सूतिकागृहमें जाकर देखनेकी भी रीति अब प्रचलित नहीं है।

श्राद्ध=शास्त्रके विधानके अनुसार जो कृत्य पितरोंके उद्देश्यसे श्रद्धापूर्वक किया जाता है। जैसे तर्पण, पिण्डदान, विप्रभोजन, होम, दान इत्यादि। श्राद्ध शुभ कार्योंके आरम्भमें भी होता है और पिता आदिके मरणतिथिपर भी। श्राद्ध ५ वा १२ प्रकारके माने गये हैं। 'नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि, पार्वण, सपिण्डन, गोष्ठी, शुद्ध्यर्थ, कर्मांग, दैविक, यात्रार्थ और पुष्ट्यर्थ'—(श० सा०)

नोट—१ जातकर्म, नालच्छेदन और उस समयके दानके सम्बन्धमें 'शुक्ल-यजुः शाकीय कर्मकाण्ड प्रदीप' (निर्णयसागर) में 'जातकर्म-निर्णय' प्रकरणमें यह विधान लिखा है कि सन्तानका जन्म सुनते ही पिता आदि कर्म करनेवाला वस्त्रसहित स्नान करके नालच्छेदनके पूर्व अथवा यदि उस समय न हो सका हो तो नामकरणके समय जातकर्म करे। चाहे रात्रिमें प्रसव हो, चाहे दिनमें, चाहे ग्रहणमें, मृताशौचमें, जननाशौचमें ही जन्म क्यों न हो, जातकर्म करना चाहिये। यथा—'**श्रुत्वा पुत्रं जातमात्रं सचैलं स्नात्वा कुर्याज्जातकर्मास्य तातः। नालच्छेदात्पूर्वमेवाथवा स्यान्नाम्नायुक्तं पुत्रिकाया अपीदम्॥ रात्रौ शावाशौचके जात्यशौचे कार्यं चैतन्मात्र पूजादियुक्तम्।**' इति। (धर्मनौकायाम्)

जातकर्मके पश्चात् दानका विधान इस प्रकार है। सुवर्ण, भूमि, गौ, अश्व, छत्र, छाग, वस्त्र, माल्य, शय्या, आसन, गृह, धान्य, गुड़, तिल, घृत और भी जो घरमें द्रव्य आदि हो वह दानमें दिया जाय। पुत्रजन्मके समय घरमें पितर और देवता आते हैं, इसलिये वह दिन पवित्र माना जाता है, ऐसा महाभारतके आदिपर्वमें कहा है। दान और प्रतिग्रह नालच्छेदनके पूर्व अथवा उस दिनभर करे, ऐसा मनुस्मृति और शङ्खस्मृतिमें कहा है। यथा—'**अत्र दद्यात्सुवर्णं वा भूमिं गां तुरगं तथा। छत्रं छागं वस्त्रमाल्यं शयनं चासनं गृहम्॥ धान्यं गुडतिलां सर्पिरन्यच्चास्ति गृहे वसु। आयान्ति पितरो देवा जाते पुत्रे गृहं प्रति॥ तस्मात् पुण्यमहः प्रोक्तं भारते चादिपर्वणि। दानं प्रतिग्रहं नाभ्यामच्छिन्नायां तदह्नि वा॥ कुर्यादित्याहतुः शङ्खमनू इति।**'

नालच्छेदन और सूतकके सम्बन्धमें शास्त्र कहता है कि जबतक नाल काटा नहीं जाता तबतक सूतक प्रारम्भ नहीं होता। काटनेके पश्चात् सूतक लगता है। यथा—'**यावन्न छिद्यते नालस्तावन्नाप्नोति सूतकम्। छिन्ने नाले ततः पश्चात् सूतकं तु विधीयते॥**'(स्कन्द पु० अ० ११। ३१) जन्मसे छः मुहूर्त अर्थात् लगभग पाँच घंटेके भीतर और संकटकालमें आठ मुहूर्त अर्थात् लगभग छः घंटेके भीतर नालच्छेदन हो जाना चाहिये। इसके पश्चात् तो सूतक लगेगा ही। चाहे नालच्छेदन हो या नहीं हो। यथा—'**कालप्रतीक्षा बालस्य नालच्छेदनकर्मणि। षण्मुहूर्त्तात्परं कार्यं संकटेऽष्टमुहूर्तके॥ तदूर्ध्वं छेद्यमच्छेद्यं पित्रादिः सूतकी भवेत्।**' (संस्कारभास्कर 'जातकर्म-निर्णय' प्रकरण)

नोट—२ यहाँ जो विप्रोंको दान दिया गया वह जातकर्मके पश्चात् और नालच्छेदनके पूर्व दिया गया।

इस दानका शास्त्रोंमें बड़ा फल कहा गया है। शास्त्रमें सुवर्ण, भूमि, गऊ आदि दानमें गिनाये गये हैं वैसे ही यहाँ *'हाटक धेनु'* आदि कुछ गिनाये हैं।

नोट—३ मिलता हुआ श्लोक यह है—**'तथा ग्रामसहस्राणि ब्राह्मणेभ्यो मुदा ददौ। सुवर्णानि च रत्नानि वासांसि सुरभीः शुभाः॥'** (अ० रा० १। ३। ३९) इस श्लोकके उत्तरार्धमें भी दोहेके उत्तरार्धके चारों प्रकारके दान हैं।

वि० त्रि०—*'सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू'* कहा है, सो यह उछाह शिशिर-ऋतुके प्रथम माघ सुदी पञ्चमीसे उपमित है, जिसे श्रीपञ्चमी या वसन्तपञ्चमी कहते हैं। पञ्चमीमें पाँच कार्य हुए—१. रानियाँ आयीं, २. दासियाँ धायीं, ३. दशरथजीको समाचार मिला, ४. वसिष्ठजी बुलाये गये और ५. जातकर्म किया गया।

ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा॥ १॥
सुमन बृष्टि अकास तें होई। ब्रह्मानंद मगन सब लोई॥ २॥
बृंद-बृंद मिलि चलीं लोगाईं। सहज सिंगार किएँ उठि धाईं॥ ३॥

अर्थ—ध्वजा, पताका और वन्दनवारोंसे नगर छा गया है। जिस प्रकार पुर सजा-धजा हुआ है वह कहा नहीं जा सकता। अर्थात् ध्वजा, पताका और वन्दनवारोंकी शोभा कहते नहीं बनती तब पुरके सज-धजकी शोभा कौन कह सके एवं ध्वजा, पताका और वन्दनवारोंका बनाव जिस प्रकारसे है वह भी नहीं कहते बनता॥ १॥ आकाशसे फूलोंकी वृष्टि हो रही है। सब लोग ब्रह्मानन्दमें मग्न हैं॥ २॥ स्त्रियाँ झुण्ड-की-झुण्ड मिलकर चलीं। साधारण ही शृङ्गार किये हुए वे उठ दौड़ीं॥ ३॥

टिप्पणी—१ (क) राजाका कृत्य कह चुके कि पुत्रजन्म सुनकर ब्रह्मानन्दमें मग्न हुए और जन्मोत्सव करने लगे। अब पुरवासियोंका कृत्य कहते हैं कि ये भी जन्म सुनकर आनन्दमें मग्न हुए—*'आनँदमगन सकल पुरवासी।'* तब ये क्या करने लगे? ये भी उत्सव मनाने लगे—*'ध्वजपताक……'* इत्यादि। पुनः यथा—*'मनि तोरन बहु केतु पताकनि पुरी रुचिर करि छाई।'* (गी० १। १) आगे देवताओंका कृत्य कहते हैं। (ख) [ध्वजा ५ हाथकी और पताका ७ हाथकी होती है, ध्वजा सचिह्न होती है। गोस्वामीजीने ध्वजाकी केलेसे उपमा दी है और पताकाकी ताड़से। इससे कह सकते हैं कि ध्वजा ऊँचाईमें देशी कदलीवृक्षके समान और पताका ताड़वृक्षके समान होता था। यथा—*'कदलि ताल बर धुजा पताका।'* (३। ३८। २) बैजनाथजी तोरणका अर्थ 'बहिर्द्वार' करते हैं—**'तोरणन्तु बहिर्द्वारमित्यमरः'**। शब्दसागरमें दोनों अर्थ दिये हैं 'बहिर्द्वार, विशेषतः वह द्वार जिसका ऊपरी भाग मंडपाकार तथा मालाओं और पताकाओंसे सजाया गया हो। घर या नगरका बाहरी फाटक।' और 'वे मालाएँ आदि जो सजावटके लिये खम्भों और दीवारों आदिमें बाँधकर लटकाई जाती हैं। वन्दनवार'] (ग) *'सुमनबृष्टि अकास ते होई'* इति। देवताओंने स्तुतिके समय स्तुति की, यथा—*'सुरसमूह बिनती करी पहुँचे निज निज धाम।'* अब पुष्पवृष्टि करनेका समय है, अतः अब फूल बरसाते हैं; यथा—*'सजि सजि यान अमर किंनर मुनि जानि समय सुरगन ठए। नाचहिं नभ अपसरा मुदित मन पुनि पुनि बरषत सुमन चए॥'* (गी० १। ३) [वृष्टि=झड़ी, वर्षा।=ऊपरसे बहुत-सी चीजोंका एक साथ गिरना या गिराया जाना। यह शब्द लगातार कुछ समयतक इस कृत्यका होना सूचित करता है।] (घ) प्रथम राजाका ब्रह्मानन्दमें मग्न होना कहा, अब सब लोगोंका ब्रह्मानन्दमें मग्न होना कहते हैं—*'ब्रह्मानंद मगन सब लोई'* और आगे स्त्रियोंका आनन्द वर्णन करते हैं। *लोई*=लोग। [ब्रह्मके आविर्भावसे सम्पूर्ण प्रजामें ब्रह्मानन्दका आविर्भाव हुआ, क्योंकि सबको प्रभुके चरणोंमें प्रीति थी। यथा—*'ब्रह्मानन्द मगन कपि सबके प्रभु पद प्रीति।'* (वि० त्रि०)]

टिप्पणी—२ (क) *'बृंद-बृंद मिलि चलीं लोगाईं'* इति। पुत्रजन्म सुनकर सब स्त्रियोंको आनन्द हुआ। बस सब-की-सब एक साथ एक ही समय घरसे निकलीं और एक-संग होकर चलीं, इसीसे वृंद-वृन्द हो गयीं। पुनः, *'बृन्द-बृन्द मिलि चलीं'* कहकर जनाया कि गलियोंमें भारी भीड़ हो गयी है, यथा—*'दल फल फूल दूब दधि रोचन युवतिन्ह भरि-भरि थार लये। गावत चलीं भीर भइ बीथिन्ह बंदिन्ह बाँकुरे बिरद*

बये॥' (गी० १। ३) (पुनः, बृंद-बृंद=अपनी-अपनी टोलियाँ बनाकर चलीं। अपने-अपने मेलके, जोड़के इत्यादि पृथक्-पृथक् वृन्द हैं)। (ख)—***'सहज सिंगार किये......'*** इति। भाव कि उस समय विशेष शृङ्गार करके जाना चाहिये था, क्योंकि एक तो मङ्गलका अवसर है, दूसरे राजमहलमें जा रही हैं, पर मारे आनन्दके साधारण स्वाभाविक शृङ्गार जो किये थीं वैसी ही चल दीं, (शीघ्र आनन्दमें सम्मिलित होकर जन्म सफल करें इस विचारसे) विशेष शृङ्गारकी परवा न की। ***'ब्रह्मानंद मगन सब लोई'*** कहकर यह ब्रह्मानन्दमग्नका स्वरूप दिखाया। उसके आगे बाहरके शृङ्गारमें कौन समय खोवे। [(ग) यहाँ पहले ***'चलीं लोगाईं'*** कहा और फिर ***'उठि धाईं'*** कहते हैं। इसका भाव यह कहा जाता है कि पहले जो गयीं उनके विषयमें ***'चलीं'*** कहा और जो पिछड़ गयीं उनका उठ दौड़ना कहा गया। ये सोचती हैं कि कहीं ऐसा न हो कि पीछे पहुँचनेसे भीड़ हो जानेके कारण हम भीतर न पहुँच सकें, अतएव दौड़ीं। वा वृन्द-वृन्द होकर चलना कहा और एकत्र होकर उठ दौड़ना कहा। वा घरमें जो बैठी हुई थीं, वे घरसे उठकर दौड़ीं, जब बाहर आयीं तो औरोंका भी साथ हुआ तब वृन्द-वृन्द मिलकर चलना कहा गया।]

नोट—☞ 'तुलसीदासजीके कलाकी शैली है कि एक वृन्दका नमूनेकी तरह वर्णन कर दिया। सब उसी वृन्दका वर्णन है। ***'सहज सिंगार किए उठि धाईं'*** में दूसरा वृन्द न समझना चाहिये। आशय यह है कि जल्दी उठ दौड़ी, विशेष शृङ्गारकी परवा नहीं। इसी नमूनेपर और वृन्दोंको भी समझ लेना चाहिये।' (लमगोड़ाजी)

कनक कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा॥ ४॥
करि आरति नेवछावरि करहीं। बार बार सिसु चरनन्हि परहीं॥ ५॥

शब्दार्थ—**निछावर**=एक उपचार या टोटका जिसमें किसीकी रक्षाके लिये कुछ द्रव्य या वस्तु उसके सिर या सारे अंगोंके ऊपरसे घुमाकर दान कर देते हैं या डाल देते हैं। इसका अभिप्राय यह होता है कि जो देवता शरीरको कष्ट देनेवाले हों वे शरीर और अङ्गोंके बदलेमें द्रव्य आदि पाकर सन्तुष्ट हो जायँ।

अर्थ—सोनेके कलशों और थालोंमें मंगल भर-भरकर गाती हुई राजद्वारमें प्रवेश करती हैं॥ ४॥ आरती करके न्योछावर करती हैं और बच्चेके चरणोंपर बारम्बार पड़ती हैं॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) ***'कनक कलस......'*** इति। कलश सिरपर धरे हैं और सोनेके थारमें अनेक मङ्गल-द्रव्य भरकर हाथमें लिये हैं। 'कनक' शब्द कलश और थार दोनोंके साथ है। यथा—***'दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मंगलमूला॥ भरि भरि हेम थार भामिनी। गावत चलि सिंधुरगामिनी॥'*** (७। ३) [यही दधि, दूब आदि मङ्गलद्रव्य हैं। कलशमें शुद्ध श्रीसरयूजल, आमके पत्ते, दूब, अंकुर और उसके ऊपर यव और दीपक मङ्गलसूचक द्रव्य हैं।] (ख) पुरुष राजाके द्वारपर आये यथा—***'गुर बसिष्ठ कहँ गएउ हँकारा। आए द्विजन सहित नृपद्वारा॥'*** और स्त्रियाँ राजद्वारमें प्रवेश कर रही हैं; जैसा कायदा है वैसा ही लिखते हैं।

टिप्पणी—२ (क) ***'करि आरति नेवछावरि करहीं।......'*** इति। आरती करके शिशुके चरणोंपर पड़ती हैं, यह कहकर जनाया कि स्त्रियोंको भी ऐश्वर्यका ज्ञान है। अग्निदेवने सब सभाको समझाया था कि राजाके यहाँ भगवान्‌का अवतार होगा। सभाके लोगोंने अपने-अपने घरमें यह बात कही। इस प्रकार स्त्रियोंको भी ऐश्वर्यका ज्ञान हुआ। जैसे पुरुषोंने जाकर दर्शन किया, वैसे ही स्त्रियोंने जाकर चरणोंमें प्रणाम किया। बार-बार शिशुके चरणोंमें पड़ना मारे प्रेमके है, यथा—***'पद अबुंज गहि बारहि बारा। हृदय समात न प्रेम अपारा॥'*** एवं ***'प्रेममगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पदसरोज सिरु नावा॥'*** इत्यादि।

नोट—१ शिशुके चरणोंमें पड़नेकी रीति अब देखने-सुननेमें नहीं आती, पर यहाँ श्रीरामजन्मपर ऐसा हुआ। पं० रामकुमारजीका मत ऊपर दिया गया है कि स्त्रियोंको ऐश्वर्यका ज्ञान है। श्रीपंजाबीजी लिखते हैं कि 'प्रणाम करना ईश्वरभाव वा अति सुन्दर मूर्ति देखकर वा ज्येष्ठ राजपुत्र जानकर।' श्रीकरुणासिंधुजी लिखते हैं—मनुजीको वरदान देनेके पश्चात् प्रभुने परिकरोंको आज्ञा दी कि अवधमें जाकर रहो, हम भी आते हैं। ये पुरवासी सब पार्षद ही हैं और इन्हें जानते हैं कि ये ब्रह्म हैं। पुनः, यह भी कारण हो

सकता है कि राजा ईश्वरका अंश माना जाता है, अतएव पूजनीय है। राजाके पुत्र न होनेसे प्रजा दुःखी थी कि न जाने आगे कौन राजा हो, अब उनकी अभिलाषा पूर्ण हुई। पं० श्रीराजारामशरण लमगोड़ाजी लिखते हैं कि 'भगवान्‌के सुन्दर बालकरूपका चमत्कार ही है कि जो रीति नहीं है वह हो पड़ी। अब तो छठी इत्यादिमें बालकको कृष्ण वा राम मानकर आरती करनेकी रीति (जहाँ-तहाँ) चल पड़ी है। घर-घरसे आटेकी बनी आरती, कुछ अनाज और निछावरके साथ छठीके दिन साथ आती है।

नोट—२ पुरवासिनियोंकी भीड़ है। सब आरती करती हैं और चरणोंपर पड़ती हैं, यह दोनों प्रकारसे हो सकता है। एक तो यह कि जो जहाँतक पहुँच सकी है वह वहींसे उस दिशामें भावना करके आरती करती है और भावसे ही पैरों पड़ती है। अथवा, भगवान् यहाँ सबको प्रत्यक्ष देख पड़ रहे हैं, इसीसे *'चरनन्हि परहीं'* कहा।

वे० भू० जीका मत है कि नंदीमुखश्राद्ध और जातकर्म आँगनमें हो रहा है। राजा पुत्रको गोदमें लिये बैठे हैं, पुरवासिनियाँ उसी समय आरती लिये हुए वहाँ पहुँचीं, इसीसे बच्चेके चरणोंमें पड़ने, आरती और निछावर करनेका अधिकार सबको प्राप्त हो रहा है।

मागध सूत बंदिगन* गायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक॥ ६॥
सर्बस दान दीन्ह सब काहू। जेहिं पावा राखा नहिं ताहू॥ ७॥

अर्थ—मागध (वंशके प्रशंसक) सूत (पौराणिक) बंदी (विरुदावली कहनेवाले भाट) और गान करनेवालोंके समूह रघुकुलके स्वामी श्रीदशरथजीके पावन गुण गाते हैं॥ ६॥ सबने सर्वस्व दान दिये। जिसने पाया उसने भी न रखा अर्थात् उसने भी दान कर दिया वा दे डाला॥ ७॥

टिप्पणी—१ (क) *'मागध सूत बंदिगन गायक।……'* इति। [**मागध**=वैश्य पिता और क्षत्रिया मातासे उत्पन्न संतान। ये राजाकी वंशपरम्परासे जीविका पाते हैं, राग-तालमें कीर्ति-गान करते हैं। **सूत**=क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी मातासे उत्पन्न संतान। ये पौराणिक कहलाते हैं और श्लोकोंमें वंशका यश-वर्णन करते हैं। **बंदी**=भाट। ये कवित्तोंमें विरुदावली वर्णन करते हैं। **गायक**=गवैये। जैसे कि—ढाढ़ी, कलावत, विदूषक (भाँड़), कत्थक, नट इत्यादि।] (ख)— *'पावन गुन'* का भाव कि दशरथजीके सब गुण पवित्र हैं, कोई भी निन्द्य कर्म उनने नहीं किये। उनके गुणोंको देवता गाते हैं, यथा—*'बिधि हरि हरु सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ गुनगाथा॥'* (२। १७३) भीतरका हाल पहले कहकर तब यह बाहरका हाल कहते हैं। मागधादि सब बाहर द्वारपर ही हैं; यथा—*'मागध सूत द्वार बंदीजन जहँ तहँ करत बड़ाई।'* (गी० १। १)

टिप्पणी—२ *'सरबस दान दीन्ह सब काहू।……'* इति। (क) सबने सर्वस्व दान दिया। यथा—*'पुरबासिन्ह प्रिय नाथ हेतु निज निज संपदा लुटाई।'* (गी० १। १) जिसने पाया उसने भी दान कर दिया, यथा—*'पाइ अघाइ असीसत निकसत जाचकजन भए दानी।'* (गी० १। ४) *उमँगि चलेउ आनँद लोक तिहु देत सबनि मंदिर रितये। तुलसिदास पुनि भरेइ देखियत रामकृपा चितवनि चितये।'* (गी० १। ३) (ख) *'सरबस'* सर्वस्वका अपभ्रंश है। स्व=धन यथा—**'स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं त्रिष्वात्मीये स्वोस्त्रियां धने।'** (अमर ३। ३। २११) अर्थात् 'स्व' का अर्थ जाति, आत्मा, आत्मीय और धन है। सर्वस्व=सब धन। सबने अपना सब धन लुटा दिया। राजाने अपना भण्डार लुटा दिया; यथा—**'रानिन्ह दिये बसन मनि भूषन राजा सहन भंडार।'**(गी० १। २) पुरवासियोंने अपनी सब संपदा लुटा दी। मंगनोंने जो पाया सो उन्होंने भी लुटा दिया। तात्पर्य कि राजासे लेकर भिक्षुकतक सबकी एकरस उदारता यहाँ (देखी जा रही) है। जैसे राजा देते हैं तैसे ही पुरवासी देते हैं। जैसे रानियाँ देती हैं वैसे ही पुरवासिनियाँ देती हैं, यथा—*'वारहिं मुक्ता रतन राजमहिषी पुर सुमुखि समान।'* (गी० १। २) जैसे पुरवासी देते हैं, वैसे ही भिक्षुक देते हैं। (ग) यहाँ क्रमसे तीन प्रकारके दानका वर्णन किया गया। प्रथम राजाका दान कहा—*'हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह',* तब प्रजाका दान

* पाठान्तर—गुनगायक। नंगे परमहंसजी 'गुनगायक' को मागधादिका विशेषण मानते हैं।

कहा—*'सर्बस दान दीन्ह सब काहूँ'*। *'सब काहू'* से प्रजा अभिप्रेत है। तत्पश्चात् भिक्षुकोंका दान कहा—*'जेहि पावा राखा नहिं ताहूँ'*। *'जेहि पावा'* से भिक्षुक अभिप्रेत हैं।

जातकर्मके समय राजाने विप्रोंको दिया जो उस संस्कारके लिये आये थे। पुरवासिनी स्त्रियाँ जो आयीं वे *'करि आरति नेवछावरि करहीं।'* निछावर किसने पायी, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया। पर तुरंत ही इसके आगे मागधादिके गुणगान करनेका उल्लेख होनेसे अनुमान होता है कि निछावर इन्हींको दी गयी। अथवा इन्हींमें लुटा दी गयी। यहाँतक दो ही लोगोंका दान कहा गया। राजा और पुरस्त्रियोंका। तो यह शंका होती है कि क्या मागधादि याचकोंको राजा, रानियाँ, मन्त्री आदिने कुछ नहीं दिया? इसका उत्तर *'सरबस दान दीन्ह सब काहूँ'* में मिलता है। अर्थात् सभीने मागधादि सब याचकोंको दान दिया। प्रजा, पुरस्त्रियाँ, मन्त्री आदिने तो दिया ही, राजा और रानी आदि सूतकाधिकारी लोगोंने भी दिया। दोहेमें नान्दीमुख श्राद्धादि करनेपर दानका उल्लेख किया गया। वहाँसे लेकर *'सरबस दान……'* तक दानका उल्लेख हुआ। इससे सूचित किया कि यह सब नालोच्छेदनके पूर्व हुआ और जातकर्मके पश्चात्।

नोट—१ यहाँ *'सब काहूँ'* का अर्थ 'सब किसीने' इस विचारसे ठीक ही है कि प्रसंगानुकूल यहाँ तीन प्रकारके दान कहे गये हैं—एक तो राजदान जो दोहा १९३ में लिखा गया। दूसरा पुरवासियोंका दान, यह सर्वस्वदान इन्हींका है। और तीसरा याचकदान। तीनोंका वर्णन ऊपर टिप्पणीमें आ गया है।

नोट—२ **सर्बस**=सब कुछ। सर्वस्व=सब तरहका अर्थात् मणि, वस्त्र, गौ, अन्न, गज, रथ, घोड़े इत्यादि। सर्वस्वका अर्थ गीतावलीके उद्धरणोंसे स्पष्ट हो जाता है। यथा—*'पुरबासिन्ह प्रिय नाथहेतु निज निज संपदा लुटाई।'* *'अमित धेनु गज तुरग बसन मनि जातरूप अधिकाई। देत भूप अनुरूप जाहि जोइ सकल सिद्धि गृह आई।' वारहिं मुकुता रतनराज महिषी पुर सुमुखि समान। बगरे नगर निछावरि मनिगन जनु जुवारि यव धान।'* (गी० १। २) *'अष्टसिद्धि नवनिद्धि भूति सब भूपति भवन कमाहीं।'* *'उमगि चलेउ आनंद लोक तिहुँ देत सबनि मंदिर रितये। तुलसिदास पुनि भरेइ देखियत रामकृपा चितवनि चितये।'* *'राम निछावर लेनको (देव) हठि होत भिखारी। बहुरि देत तेइ देखिये मानहु धनधारी।'* (गी० १। ६। १२)

☞ सर्वस्वदानके विषयमें जो शंकाएँ लोग किया करते हैं उनका समाधान उपर्युक्त उद्धृत उदाहरणोंसे हो जाता है। अधिक विस्तृत व्याख्याकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। *'जेहि पावा राखा नहिं ताहूँ'* अर्थात् उन्होंने भी दे डाला, लुटा दिया कि जो चाहे ले ले। यह सब नगरभरमें बिथरे पड़े हैं—*'बगरे नगर निछावरि……।'* अन्तमें किसके पास रहा, यह प्रश्न ही इस प्रमाणके आगे नहीं रह जाता। यह श्रीरामजन्ममहोत्सव है, अतएव गोस्वामीजीने *'राखा नहिं ताहूँ'* कहकर दानकी इति नहीं की। इस समय रघुकुल और पुरवासियोंकी अतिशय उदारता दिखा रहे हैं। यह 'अत्युक्ति' अलङ्कार है।

प० प० प्र०—*'सर्बस दान दीन्ह सब काहूँ'* इति। इसपर बहुत मत-मतान्तर हैं तथापि मानसमें दान देना केवल विप्रोंको ही सर्वत्र पाया जाता है, दूसरोंको जब कुछ दिया जाता है तब देना, बकसीस देना, निछावर देना शब्दोंका प्रयोग देखा जाता है। यथा—*'दिये दान आनंद समेता। चले बिप्रबर आसिष देता॥'* (१। २८५। ८) *'दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे। दानमान परिपूरन कीन्हे॥'* (१। ३३९। ६) *'दिये दान बिप्रन्ह बिपुल……'* (३४५) *'सादर सकल माँगने टेरे। भूषन बसन बाजि गज दीन्हे॥'* (३४०। १-२) *'जाचक लिये हँकारि दीन्हि निछावरि कोटि बिधि।'* (२९५) *'प्रेम समेत राय सबु लीन्हा। भइ बकसीस जाचकन्हि दीन्हा॥'* (१। ३०६। ३)—इत्यादि उद्धरणोंसे सिद्ध होता है कि यहाँ 'सर्वस्वदान' विप्रोंके सम्बन्धमें ही आया है। क्षत्रियों-वैश्योंने अपना सर्वस्व विप्रोंको दानमें दिया। [यह मत बाबा हरिदासजीका है। नोट ४ (४) देखिये]

'जेहि पावा राखा नहिं ताहूँ' इति। इसमें दान देना नहीं कहा। जिन्हें मिला उन्होंने उसे रखा नहीं। सीधा-सीधा अर्थ है तब चक्रापत्तिमें गिरनेकी आवश्यकता ही क्या है? स्मरण रहे कि यहाँ यह नहीं कहा गया है कि समस्त ब्राह्मणोंको दान मिला। जिनको नहीं मिला था उनको दान लेनेवाले विप्रोंने

दिया। कोई-कोई ब्राह्मण प्रतिग्रह (दान) नहीं लेते, उनको वैसा ही दिया। जो बचा उसे ब्राह्मणोंने बंदी-मागधादिको दे दिया।

यहाँ गूढ़ भाव यह है कि रामजन्मनिमित्त जो दान राजाने अल्पकालमें ब्राह्मणोंको दिया, वह तो थोड़े ही ब्राह्मणोंको मिला, अतः क्षत्रिय और वैश्योंने अन्य ब्राह्मणोंको अपना सर्वस्व दानमें दिया। राजाके अल्प दानकी समता करनेके लिये क्षत्रियों और वैश्योंको अपना सर्वस्व देना पड़ा। यह मुख्यतः यहाँ बताया है। शूद्रप्रतिग्रह तो अच्छे ब्राह्मण अब भी नहीं लेते हैं, अतः क्षत्रियों और वैश्योंने सर्वस्वदान दिया।

नोट—३ श्रीलमगोड़ाजी लिखते हैं कि 'मैं जब अपनी अवस्थाका निरीक्षण करता हूँ तो भगवान्‌के द्वारका केवल मंगन जान पड़ता हूँ। यह भी माँग वह भी माँग। यह सत्य है कि वहाँ 'सर्व वस्तुका दान' भगवान्‌की ओरसे होता है। परंतु शर्त यह है कि स्वार्थके निमित्त माँग न हो वरंच *'जिन्ह पावा राखा नहिं ताहू'* अर्थात् परोपकारके निमित्त हो। आहा! यदि ऐसा मंगन भी हो जा !!'

नोट—४ हम टीकाकारोंके मत पाठकोंके निमित्त लिखे देते हैं, जिसको जो भाव या समाधान भावे ग्रहण करे।

(१) श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि 'प्रथम ब्रह्मादिक आये उन्होंने पाया, इतनेमें याचक जुटे तब इन्होंने मिला हुआ सब दान याचकोंको लुटा दिया।' (२) किसीका मत है कि अवधवासी सब लुटाते गये और देवता जो भिक्षुक बनकर आये थे वे लेते गये—*'राम निछावर लेन कहँ हठि होत भिखारी।'* (३) विनायकीटीकाकार लिखते हैं कि *'सब काहूँ को'* अर्थात् जो लोग वहाँ उपस्थित थे उनको राजाने दिया और इन्होंने पाये हुए दानको लुटा दिया। बस यहींतक देनेकी हद है। पुनः दूसरा अर्थ—'पहिले जो आये उनको अनेक वस्तुएँ दीं। परंतु वे आनन्दके कारण बैठे ही रहे, इतनेमें जो और बहुत-से लोग आये उनके साथ पहिले आये हुए लोगोंको भी फिरसे और वस्तुएँ दे दीं, उन्हें *'राखा नहिं'* अर्थात् दुबारा देनेमें संकोच न रखा। पुनः, जिन्हें वह दान मिला उनके पास वह बात न रह गयी, जिसके लिये दान दिया जाता है अर्थात् दारिद्र्य न रह गया। *'धनद तुल्य भे रंका'* (४) बाबा हरीदासजी लिखते हैं कि *'सब काहूँ'* अर्थात् सब अवधवासी परिजन-महाजन सभीने दिया। दानके अधिकारी ब्राह्मण ही होते हैं! अतएव ब्राह्मणोंको सबने दिया और जिन ब्राह्मणोंने पाया उन्होंने याचकोंको लुटा दिया। श्रीरामजन्मके अवसरपर देवता याचक बने हैं—*'इंद्र बरुन यम धनप सुर सब नरतनधारी। रामनिछावरि लेनको हठि होत भिखारी॥'* (५) कोई-कोई शङ्कानिवारणार्थ *'सरबस'* का अर्थ मोक्ष करते हैं अर्थात् राजाने सबको मोक्षका दान किया। जिसने पाया उसने उसे भक्तिके आगे तुच्छ मानकर दे डाला। पर—यह अर्थ प्रसङ्गानुकूल नहीं है। (६) पुराने खर्रेमें पं० रा० कु० जीने लिखा है कि यह शङ्का व्यर्थ है, क्योंकि यहाँ एकको देना और एकका पाना लिखते हैं। (पर यह भाव टिप्पणीसे विरुद्ध है।) (७) श्रीगौड़जी लिखते हैं कि 'इसमें शङ्का व्यर्थ है। द्वारपर जो-जो आते गये लेते गये। वे भी इतने लदे कि जाते-जाते जो-जो मिला उसे देते गये। क्या सारे संसारके लोग आये? या संसारमें आदमी ही न रहे? चौपाई साफ है। (८) श्रीनंगे परमहंसजी लिखते हैं कि 'इसमें जो यह शङ्का करते हैं कि जो पाता गया वह दूसरेको देता गया तो अन्तमें वह दान क्या हुआ? (उत्तर) ग्रन्थमें ऐसा कोई शब्द नहीं है कि जिससे यह सूचित हो कि जो पाता गया वह दूसरेको देता गया, किन्तु शब्द तो मूलमें यह है कि *'जेहि पावा'* अर्थात् जिसने पाया। किसने पाया? मागध, सूत, बन्दियोंने पाया। *'ताहू नहिं राखा'* अर्थात् उसने नहीं रखा। किसने नहीं रखा? मागध, सूत, बन्दियोंने नहीं रखा। फिर क्या? दूसरेको दे दिया। बस मूल शब्द खतम हुआ। जब मूलका कोई शब्द ही नहीं है तब दानकी क्रिया आगेको कैसे बढ़ सकती है? अतः बिना शब्दके अपनी तरफसे शङ्का उठाना वृथा है।' (९) किसीका मत है कि श्रीरामजी सबके सर्वस्व हैं, यथा—*'मुनि धन जन सरबस सिव प्राना। बालकेलि रस तेहिं सुख माना॥'* (१९८। २)

श्रीरामजीको ही राजाने दूसरोंको दिया, दूसरेने तीसरेको, इस तरह सब एक-दूसरेको देते गये। वे० भू० जीका मत भी इसी पक्षमें है। वे कहते हैं कि 'यहाँ *'हाटक धेनु बसन मनि'* आदिका ग्रहण 'सर्वस्व' शब्दसे नहीं किया जा सकता, क्योंकि यदि ऐसा होता तो दातव्य वस्तुओंका नाम लिया जाता। अथवा, *'रुचि बिचारि पहिरावन दीन्हा।'* *'दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा।'* आदिकी तरह कहा जाता। अत: यहाँ अर्थ है कि राजाने 'अपने सर्वस्व' राजपुत्रको राजमहलमें जुटे हुए सब लोगोंको दान दे दिया। अर्थात् यह सब आपका होकर जीवे। सबकी गोदमें दिया किंवा समष्टिरूपसे सबको दिया कि यह आप सब पञ्चोंका पुत्र है, लीजिये। जिनको दिया *'राखा नहि ताहूँ'* अर्थात् उसने भी आशीर्वाद देकर लौटा दिया, इसीसे राजाने गुरुसे कहा है *'सबहिं राम प्रिय जेहि बिधि मोहीं।'* प्र० स्वामीजी लिखते हैं कि 'नवजात शिशुका दान दिया' ऐसा कहना अनुचित है। दान दी हुई वस्तुपर दाताका स्वामित्व नहीं रहता है और दान शास्त्रविधिपूर्वक दक्षिणायुक्त देना पड़ता है। प्रथम दस दिन तो नवजात शिशुको सूतिकागृहके बाहर नहीं निकाला जाता है। हाँ, पालकारोहणके दिन बालक एक-दूसरेके हाथमें इस प्रकार दिया-लिया जाता है, पर वह दान देना नहीं है।

वि० त्रि०—सबने सर्वस्वदान दिया, जिसने पाया उसने भी नहीं रखा। इस भाँति सम्पत्तिका हेर-फेर अवधमें हो गया। किसी समय सोमवती अमावस्या लगी, सब मुनियोंकी इच्छा हुई कि गोदान करें। मुनि सौ थे और एकहीके पास गौ थी। जिसके पास गौ थी उसने किसीको दान दिया, उसने भी दान कर दिया। इस भाँति वह गौ दान होती गयी। अन्तमें फिर वह उसी मुनिके पास पहुँच गयी जिसकी पहले थी और गोदानका फल सबको हो गया। लालच किसीको नहीं और देनेकी इच्छा सबको। ऐसी अवस्थामें सम्पत्ति घूम-फिरकर जहाँ-की-तहाँ आ जाती है। (पर इस समाधानमें भी अनेक शङ्काएँ उठेंगी, क्योंकि वहाँ तो मुनि-ही-मुनि थे, सबको गोदान लेनेका अधिकार था और यहाँ नहीं है।)

मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा॥ ८॥

दो०—गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुषमा कंद।
हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद॥ १९४॥

अर्थ—मृगमद (कस्तूरी), चन्दन और कुंकुम (केसर)-का कीचड़ समस्त गलियोंके बीच-बीच अर्थात् गलियोंमें हो रहा है॥ ८॥ घर-घर मङ्गल बधाइयाँ बज रही हैं, मङ्गलाचार हो रहा है, (क्योंकि) परम शोभाके कंद (मूल, समूह वा मेघ) प्रभु प्रकट हुए हैं। नगरके स्त्री-पुरुषोंके वृन्द जहाँ-तहाँ सभी हर्षको प्राप्त हैं॥ १९४॥

टिप्पणी—१ *'मृगमद चंदन ——'* इति। यहाँ *'बिच बीचा'* का अर्थ मध्य नहीं है वरंच 'में' है। महोत्सवमें कस्तूरी, चन्दन और केसर इत्यादि घोल-घोलकर एक-दूसरेपर छिड़कते हैं। ऊपरसे गुलाल और अबीर डालते हैं। यथा—*'कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं भरहिं गुलाल अबीर।'* (गी० १। २) इसीसे गलियोंमें कीच हो गयी है। यथा—*'बिथिन्ह कुंकुम कीच अरगजा अगर अबीर उड़ाई॥'* (गी० १। १) यहाँ मृगमद, चन्दन और कुंकुम कहे गये, अगर और अबीर नहीं कहे। क्योंकि आगे इनको कहना है, यथा—*'अगर धूप बहु जनु अँधियारी। उड़ै अबीर मनहु अरुनारी॥'* (१९५। ५) [महोत्सवमें अरगजा अर्थात् चन्दन, कस्तूरी, केसर इत्यादि मिलाकर परस्पर लोग एक-दूसरेपर छिड़कते तो हैं ही, साथ ही गलियाँ भी इन वस्तुओंसे सींची जानेकी रसम पायी जाती है; यथा—*'गली सकल अरगजा सिंचाई॥'* (३४४। ५)

टिप्पणी—२ *'गृह गृह बाज बधाव सुभ ——।'* (क) घर-घर बधावे बजनेमें भाव यह है कि जैसे श्रीरामजन्मसे राजा-रानीको हर्ष हुआ, वैसे ही सबको हर्ष है। यथा—*'ज्यों हुलास रनिवास नरेसहिं त्यों जनपद रजधानी।'* (गी० १। ४) इसीसे घर-घर मङ्गलाचार और दान होता है, बधाई बजती है। यथा—*'सींचि सुगंध रचैं चौकैं गृह आँगन गली बजार। दल फल फूल दूब दधि रोचन घर घर*

मंगलचार।' (गी० १। २। ५) [(ख) *'प्रगटे सुखमाकंद'* इति। यह पाठ १६६१ की प्रतिका है। *'प्रगटेउ प्रभु सुखकंद' 'प्रभु प्रगटे सुखकंद'* और *'प्रगट भए सुषकंद'* (पं० रा० कु०), पाठान्तर हैं।] 'सुखकंद' सबसे प्राचीन और उत्तम पाठ है। इसलिये कि ऊपरकी आठ पंक्तियोंमें सबकी परमाशोभाका वर्णन है। *'ध्वज पताक'* से *'बीथा'* तक नगर, नागर, नागरी, दानी, पात्र तथा दान इन सबोंकी शोभाका वर्णन है। यह परमाशोभाकी वर्षा है, इसलिये परमाशोभाका मेघ (सुषमाकंद) कहा। सुखकंदसे सुषमाकंदमें अधिक चमत्कार है।] कौसल्याजीके यहाँ प्रकट हुए, यह पूर्व कह चुके, यथा—*'भए प्रगट कृपाला ……।'* अब पुनः प्रकट होना कहकर जनाया कि श्रीरामजन्मसे सबको ऐसा सुख हुआ कि मानो श्रीरामजी घर-घरमें प्रकट हुए। कंद=मूल। यथा—*'चर अरु अचर हरषजुत रामजनम सुखमूल।'* सबको सुख प्राप्त हुआ, इसीसे *'सुषकंद'* कहा। कौसल्याजीके यहाँ भगवान् साक्षात् प्रकट हुए, इसीसे चराचरको हर्ष हुआ। सबके घर-घर भावसे प्रकट हुए, इसीसे नारिनरवृन्दको हर्ष होना कहा। तात्पर्य कि साक्षात्का प्रभाव विशेष है, पुत्रजन्मका आनन्द प्रथम स्त्रीको प्राप्त होता है, इसीसे प्रथम *'नारि'* कहा तब 'नर'। (पुनः नारिवृन्दको प्रथम कहा, क्योंकि ये भीतर गयी थीं।)

कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत भैं ओऊ॥ १॥
वह सुख संपति समय समाजा। कहि न सकइ सारद अहिराजा॥ २॥

अर्थ—राजा केकयकी कन्या श्रीकैकेयीजी और श्रीसुमित्राजी इन दोनोंने भी सुन्दर पुत्रोंको जन्म दिया॥ १॥ उस आनन्द, ऐश्वर्य, समय और समाजको सरस्वती और शेष भी नहीं कह सकते॥ २॥

नोट—१ यहाँ 'दोऊ' शब्द देहली-दीपक न्यायसे दोनों ओर लग सकता है। इस प्रकार अन्वय होगा—*'कैकेयी सुंदर सुत जनमत भई। ओऊ सुमित्रा दोऊ सुंदर सुत जनमत भई।'* इस तरह यहाँ सूक्ष्मरीतिसे सुमित्राजीके दो पुत्र कहे गये। (श्रीनंगे परमहंसजी)

टिप्पणी—१ (क) कैकयसुताको प्रथम कहकर जनाया कि प्रथम कैकेयीजीके पुत्र हुआ तब सुमित्राजीके। जिस क्रमसे पायस दिया गया, उसी क्रमसे जन्मवर्णन करते हैं। इन दोनों रानियोंको एक सङ्ग लिखकर जनाया कि दोनोंने एक समयमें पुत्र जनमे। यथा—*'तेहि अवसर सुत तीनि प्रगट भए मंगलमुद कल्यान॥'* (गी० १। २) *'ओऊ'* कहनेका भाव कि जैसे कौसल्याजीने सुन्दर पुत्र जनमा वैसे ही इन दोनोंने भी सुन्दर पुत्र जनमे, यथा—*'चारिउ सील रूप गुन धामा।'* (ख) *'वह सुख संपति समय समाजा। ……'* इति। श्रीरामजन्ममें सुखवर्णन किया, यथा—*'सुमन बृष्टि अकास ते होई। ब्रह्मानंद मगन सब लोई॥' 'हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद।'* यह सब सुख है। *'हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह।'* इत्यादि सम्पत्तिका द्योतक है। *'सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल ……'* इत्यादि अवसर है। और *'गुर बसिष्ठ कहँ गयेउ हँकारा। आए द्विजन्ह सहित नृप द्वारा।'* यह समाज है। पुनश्च *'अष्टसिद्धि नवनिद्धि भूति सब भूपति भवन कमाहिं। समउ समाज राज दसरथको लोकप सकल सिहाहिं॥'* (गी० १। २। २३) (बैजनाथजीका मत है कि चौथेपनमें एक ही पुत्रसे परम सुख हुआ। उस उत्सवके होते ही दूसरा पुत्र हुआ, फिर दो और हुए। अतः समय और सुख अपूर्व हो गये। ब्रह्मा-शिवादि देवता, सिद्ध, मुनि सब एकत्र हैं, अतः समाज भी अपूर्व है। ऋद्धि-सिद्धि परिपूर्ण हैं इससे 'संपत्ति' भी अपूर्व है। (ग) *'वह सुख'* कहनेका भाव कि यह सुख त्रेतायुगमें रामजन्मके समयमें हुआ और वक्ता लोग उसका वर्णन वर्तमान कालमें अपने-अपने श्रोताओंसे कर रहे हैं।

'कहि न सकइ सारद अहिराजा' इति। शारदा स्वर्गकी वक्ता हैं और शेषजी पातालके। जब ये ही नहीं कह सकते तब मर्त्यलोकमें तो कोई वक्ता इनके समान है ही नहीं जो कह सके। इसीसे इस लोकके किसी भी वक्ताका नाम न कहा। पुनः भाव कि जब शेष-शारदा नहीं कह सकते तब हम कैसे कह सकते हैं? यथा—*'जो सुखसिंधु सकृत सीकर ते शिव बिरंचि प्रभुताई। सोइ सुख अवध उमगि रहेउ*

दस दिसि कवन जतन कहौं गाई॥' (गी० १। १। ११) *'आनँद महँ आनँद अवध आनंद बधावन होइ।'* यहाँ 'सम्बन्धातिशयोक्ति अलङ्कार है। (वीरकवि)

नोट—२ चौथेपनमें एक ही पुत्रसे न जाने कितना सुख होता है और यहाँ तो एकदमसे चार पुत्र हुए। फिर उस परम सुखको कौन कह सके—*'सोइ सुख उमगि रहेउ दस दिसि⋯'* ☞ गोस्वामीजीके मतसे चारों भाई एक ही दिन हुए, ऐसा कई उद्धरणोंसे प्रमाणित होता है, यथा—*'जनमे एक संग सब भाई' 'पूत सपूत कौसिला जायो अचल भयउ कुलराज॥ चैत चारु नौमी तिथि सित पख मध्य गगन-गत भानु⋯॥ २॥ सुनि सानंद उठे दसस्यंदन सकल समाज समेत। लिये बोलि गुरु सचिव भूमिसुर प्रमुदित चले निकेत॥ ६॥ जातकर्म करि पूजि पितर-सुर दिये महिदेवन दान। तेहि अवसर सुत तीनि प्रगट भये मंगल मुद कल्यान॥ ७॥ आनँद महँ आनँद अवध आनंद बधावन होइ। उपमा कहौं चारि फलकी मोको भलो न कहै कवि कोइ॥'* (गी०। १। २) *'आजु महामंगल कोसलपुर सुनि नृपके सुत चारि भए॥ १॥ अति सुख बेगि बोलि गुर भूसुर भूपति भीतर भवन गए। जातकर्म करि कनक बसन मनि भूषित सुरभि समूह दये॥ ३॥ दल फल फूल दूब दधि रोचन युवतिन्ह भरि-भरि थार लये। गावत चलीं भीर भइ बीथिन्ह बंदिन्ह बाँकुरे बिरद बए॥ ४॥ कनककलस चामर पताक ध्वज जहँ तहँ बंदनवार नये।⋯'* इत्यादि। (गी० ३)

गी० बा० पद ३ से यह जान पड़ता है कि एक ही दिन किञ्चित् आगे-पीछे चारों भाइयोंका जन्म हुआ, तत्पश्चात् नगरमें बधायी, उत्सवादि हुए। मानसके क्रमसे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामजन्म होनेपर गुरु बुलाये गये, जातकर्म-संस्कार हुआ, दान दिया जा रहा है, उसी समय कैकेयीजी और सुमित्राजीके पुत्र हुए। अथवा, यह भी हो सकता है कि मुख्य तो श्रीरामजन्म है, इससे उनके जन्मपर जो हुआ सो कहा गया, तब भाइयोंका जन्म कहा गया। हुए सब एक ही दिन।—पर किसीका मत है कि भरतादिका जन्म कहकर तब *'वह सुख⋯'* से पूर्वदिवसका सुख फिर कहने लगे, इससे भरतादिका जन्म दूसरे दिन जनाया। और, गी० बा० ४ से जान पड़ता है कि दशमीको तीन पुत्र हुए। यथा—*'दिन दूसरे भूप भामिनि दोउ भईं सुमंगलखानी। भयो सोहिलो मों जनु सृष्टि सोहिलो सानी॥'* और पद ५ के *'ज्यों आजु कालिहु परहुँ जागरन होहिंगे नेवते दिये।'* इन शब्दोंसे ज्ञात होता है कि दशमीको भरतजी और एकादशीको श्रीलक्ष्मण-शत्रुघ्नजी हुए। उसी हिसाबसे एक-एक दिन पीछे इनकी छठियाँ होती गयीं। तीन पदोंमें तीन बातें लिखी गयीं, क्योंकि इस विषयमें मतभेद है। उपर्युक्त पद्योंसे समय और सुख तथा समाज और सम्पत्ति इन चारोंका अपूर्व और अनुपम होना स्पष्ट है।

अध्यात्मरामायणका मत है कि जब गुरुजीद्वारा श्रीरामजीके जातकर्म आदि आवश्यक संस्कार हो गये तब कैकेयीजी और सुमित्राजीके पुत्र हुए। यथा—'**गुरुणा जातकर्माणि कर्तव्यानि चकार सः॥ कैकेयी चाथ भरतमसूत कमलेक्षणा। सुमित्रायां यमौ जातौ पूर्णेन्दुसदृशाननौ॥** (अ० रा० १। ३। ३७-३८) अ० रा० का यह प्रसङ्ग मानससे मिलता-जुलता-सा है जैसा मैं ऊपरसे दिखाता आ रहा हूँ। वाल्मीकीय सर्ग १८ में अन्य तीनों भाइयोंके जन्मके नक्षत्र दिये हैं; यथा—'**भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः। १३⋯। अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत्सुतौ।⋯१४। पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः। सार्पे जातौ तु सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ॥ १५॥**' अर्थात् कैकेयीजीने श्रीभरतको उत्पन्न किया और सुमित्राजीने श्रीलक्ष्मण-शत्रुघ्नको उत्पन्न किया। भरतजी पुष्य नक्षत्र और मीन लग्नमें उत्पन्न हुए और श्रीलक्ष्मण-शत्रुघ्नजी आश्लेषा नक्षत्रमें हुए, जब कि सूर्य कर्कट लग्नमें उदित हुए थे। इससे जान पड़ता है कि दूसरे दिन दशमीको कुछ रात रहे श्रीभरतजी और मध्याह्नमें श्रीलक्ष्मण-शत्रुघ्नजी हुए।—'**भरतजननस्य उदयात्पूर्वत्वज्ञापनायात्रोदित इत्युक्तम्, यद्वा उदिते प्रवृद्धे मध्याह्नकाले इत्यर्थः। रामस्य पुनर्वसुनक्षत्रं तिथिर्नवमी भरतस्य पुष्यनक्षत्रं दशमी सौमित्र्योश्च दशमी आश्लेषातारेति विशेषः॥ १४॥**' (श्रीगोविन्दराजीय टीका)

प्र० स्वामीजी लिखते हैं—'मा० पी० नोटमें' '**सार्पे जातौ तु सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ**'। सार्प=अश्लेषा-नक्षत्र, **कुलीरे (चन्द्रे)** कर्कराशिमें चन्द्र और मध्याह्नकालमें हुआ सूर्य मेषराशिमें है, यह रामजन्मकाल-कथनमें स्पष्ट कहा है। 'जब सूर्य कर्कटलग्नमें उदित हुए थे' यह अर्थ बड़ी भूल और अनर्थ है। चैत्रमें

नवमीको सूर्य जब मेषराशिमें है तब सूर्यका कर्कटराशिमें उदय आषाढ़मासमें ही होगा। यह भूल मा० पी० में असावधानीके कारण हुई है। जब मेषराशिमें सूर्य हैं तब मीन लग्न सूर्योदयके पूर्व ही आयेगा। अत: भरतजीका जन्म दशमी मानना ही पड़ता है। नवमीको पुनर्वसु है, दशमीको सूर्योदय पूर्वकालमें पुष्यनक्षत्र है और आश्लेषामें लक्ष्मणशत्रुघ्नका जन्म मध्याह्नकालमें कहा। अतः एकादशी मानना ज्योतिषशास्त्रानुसार ही सयुक्तिक है और वही गोविन्दराजीय टीकामें साररूपमें लिखा है। (मा० सं० न संस्कृत जाने न ज्योतिष जैसा टीकाओंमें पाया लिख दिया है।)

☞ मानसमें श्रीभरतादि भाइयोंका जन्म सूर्यके (श्रीरामनवमीके दिन) ठहरे रहते ही कहा गया है। संध्याका रूपक और सूर्यका अस्त होना इसके पश्चात् है। इससे स्पष्टरूपसे मानसकल्पकी कथामें चारों भाइयोंका एक ही दिन प्रादुर्भाव सूचित कर दिया गया है।

अवधपुरी सोहइ येहिं भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती॥ ३॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी॥ ४॥

अर्थ—अवधपुरी इस प्रकार सुशोभित हो रही है मानो रात्रि प्रभुसे मिलने आयी है॥ ३॥ सूर्यको देखकर मानो मनमें सकुचा गयी। तथापि संध्याके अनुमान बन गयी। [तो भी मनमें विचार करके संध्या बनकर वहाँ रह गयी। (प्र० सं०)]

टिप्पणी—१ *'अवधपुरी सोहइ येहिं भाँती।……'* इति। (क) मध्याह्नकाल (दोपहरका समय) संध्याकाल-सा हो गया, इसीसे रात्रिका रूपक करते हैं। मास-दिवसका दिन हो गया तब मानो रात भी मिलने आयी है। यथा—***'देखन हेतु राम बैदेही। कहौ लालसा होइ न केही॥'*** 'प्रभु' हैं, इनके निकट रात्रि और दिन दोनों इकट्ठा हो सकते हैं। उनके लिये कोई बात असम्भव नहीं है। (ख) ***'आई जनु राती'*** का भाव कि श्रीरामजन्म मध्याह्नमें हुआ, उस समय दिन था, रात न थी, अतएव रात आयी। (ग) ***'अवधपुरी सोहइ येहिं भाँती'*** देहरीदीपक है, पूर्वापर दोनोंसे इसका सम्बन्ध है। पहले रामजन्ममें दिन रहा, इसीसे प्रथम दिनकी शोभा कही। जब लोगोंने धूप की (अर्थात् जलायी), अबीर उड़ायी और वेदध्वनि होने लगी तब रात्रिके आगमनकी-सी शोभा हुई। रात्रिका स्वरूप अयोध्याजीके स्वरूपसे दिखाते हैं, क्योंकि बिना साक्षात् रात्रि आये रात्रिका स्वरूप नहीं दिखाते बनता।—***'अवधपुरी सोहइ येहिं भाँती'*** का यही भाव है।

नोट—१ रात्रिका मिलने आना क्यों कहा? यह प्रश्न उठाकर दो-एक महानुभावोंने इसका उत्तर भी दिया है। जैसे कि—(१) यहाँ रात्रिसे रात्रिके अभिमानी देवतासे तात्पर्य है। वह मिलने क्यों आया? इसलिये कि मैं चन्द्रलोकाभिमुख हूँ। चन्द्रज्योतिसे उपलक्षित स्वर्गके दिव्य भोगोंको भोगकर पुनः लौटना पड़ता है, यह समझकर अनावृत मार्गके लोग मुझे अङ्गीकार नहीं करते। अतः मैं आपकी शरण हूँ। इसीसे भगवान्ने 'चन्द्र' पद अपने नाममें ग्रहण किया। अथवा, (२) रात्रिसे रात्रिरूप कुम्भक अभिप्रेत है। वह मिलने आयी। भाव कि मेरा साफल्य आपके राजयोगके ग्रहणमें है। इसीसे वसिष्ठजीके द्वारा वासिष्ठयोग (योगवासिष्ठ) में राजयोगकी सफलता की। अथवा भाव कि अवतार सूर्यवंशमें सूर्यदेवके समय (दिन) में हुआ, अतः मैं आकर मिली हूँ कि अब मुझे भी तो अपने दिव्य जन्म-कर्मसे सफल जनाना उचित है। अतः भगवान्ने कृष्णावतारमें अर्द्धरात्रिको जन्म लेकर उसे सफल किया और रास-रहस्य भी रात्रिमें किये। अथवा, भगवान्के **'अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।'** इस वाक्यको स्मरणकर उनका अवतार जान पहले ही मिलनेको आयी कि कहीं ऐसा न हो कि मुझे भी निशाचरोंका मेली समझकर मेरी भी दुर्दशा करें। अथवा, इससे मिलने आयी कि जैसे अपने दिव्य जन्मद्वारा दिवसाभिमानी देवताको आपने सफल किया, वैसे ही विवाहके समय मुझे कृतार्थ कीजिये। अतः भगवान्ने उसे कृतार्थ किया, यथा—***'पुरी बिराजति राजति रजनी। रानी कहहिं बिलोकहु सजनी॥ सुंदर बधुन्ह सासु लै सोई। फनिकन्ह जनु सिर मनि उर गोई॥'*** (३५८। ३-४) (मा० त० वि०) अथवा, श्रीरामचन्द्रजी समाधि-निशाके पति हैं यह समझकर रात्रि मिलने आयी। (रा० प्र०)

(२) वस्तुतः यह कविकी कल्पनामात्र है। न रात्रि मिलने आयी और न मिलना कहा ही गया।

केवल उत्प्रेक्षा की गयी है। मध्याह्नसमयमें अबीरसे आकाशपर अरुणाई छा गयी और बहुत धूपसे धुआँ भी छाया हुआ है, जिससे ऐसा जान पड़ता था कि मानो संध्या हो गयी। कविने केवल सन्ध्यासमान दृश्यको लक्षित करके उत्प्रेक्षा की है; किन्तु टीकाकार महोदयोंने उसमें भावोंकी भावना भी दर्शित की।

टिप्पणी—२ '*देखि भानु जनु मन सकुचानी।*……' इति। (क) सूर्य हैं, इससे रात नहीं हो सकती। सूर्यको देखकर रात्रि मनमें सकुचाती हुई आयी, इसीसे दिन नहीं रह सकता। दोनोंकी संधि है, इसीसे सन्ध्याका रूपक करते हैं। (ख) '*बनी संध्या अनुमानी*' का भाव कि सन्ध्या नहीं है, दिन है, सन्ध्याकी नाई बन गयी है। यदि साक्षात् सन्ध्या होती तो '*संध्या भई*' कहते। दिन, रात और सन्ध्या तीन काल हैं, ये तीनों श्रीरामजन्ममें हाजिर हैं, यथा—'*काल बिलोकत ईस रुख*……' (ग) '**तदपि**' का भाव कि सूर्यके रहते रात्रि नहीं होती तथापि सन्ध्याके अनुमान हुई। (घ) सकुचानेका भाव कि सूर्य पुरुष हैं, रात्रि स्त्री है; अतः देखकर सकुचना कहा। सकुचकर चली नहीं गयी, सन्ध्याके अनुमान बन गयी [रात्रिका पति चन्द्रमा (निशापति) है, उसके लिये सूर्य पर-पुरुष है, अतः सकुचना उचित ही है]।

नोट—२ नगरमें अबीर और अगरका धुआँ छाया हुआ है। यही उत्प्रेक्षाका विषय है। रात्रि जड़ है। उसे मिलनेके लिये दोपहरमें आनेको कहना कविकी कल्पनामात्र है। अतः यहाँ 'अनुक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा' है। रात्रिका संकोचवश संध्या बन जाना अहेतुको हेतु ठहराना 'असिद्धास्पदहेतूत्प्रेक्षा' है।

पं० रामचरण मिश्रजी लिखते हैं कि 'अवधपुरीका बालरूप रामसे मिलनेका रूपक कवि बाँधना चाहते थे। पर रामजीसे पुरीका वियोग कदापि नहीं होता, यह सोचकर वे रूपक बदलते हैं।'

'*देखि भानु जनु मन सकुचानी।*……' इति। 'अर्थात् रात्रि भानुकुलभानु श्रीरामको देखकर सकुची। किन्तु सुर-नर-नागोंकी उत्सुकता देख रात्रिरूपा अवधपुरी भी दौड़ी, पर वहाँ अपने सनातन संगीहीको देखकर संकुचित हुई कि यह सर्वस्व धन तो मेरा ही है, मुझसे अलग नहीं। यह समझ समस्त अपने रात्रिरूपी रूपको न हटा सकी। जहाँ सूर्य है वहाँ रात्रि नहीं फबती, अतः उस समय सूर्यरूप रामबालके संयोगसे सन्ध्याका अनुहार धारण कर लिया। 'यहाँ अयोध्याका रूपक प्रथम रात्रिसे क्यों बाँधा और फिर रूपक बदलकर सन्ध्याका अनुमान क्यों कराया? उत्तर—'**राति (ददाति) सर्वं सुखं या सा रात्रिः।**' अर्थात् रात्रि सब जीवोंको विश्राम देनेवाली है; वैसे ही सब जीवोंकी विश्रामस्थली अयोध्याजीको समझकर प्रथम रात्रिसे रूपक दिया। रात्रिमें सुषुप्तावस्था होती है और श्रीअयोध्याजी सदा जाग्रत्-अवस्थामें रहती है, रामकार्यसे समाहितचित्त है। अतः सन्ध्याका रूपक बाँधा। जिस वेलामें मनुष्य भलीभाँति श्रीरामजीका ध्यान करते हैं, उसे 'सन्ध्या' कहते हैं'। सन्ध्यारूपा अयोध्यामें सदा श्रीसीतारामका ध्यान और जागरूकता रहती है। सन्ध्या तीन हैं—सायं, मध्याह्न और प्रातः। यहाँ प्रातः सन्ध्याका रूपक जानना चाहिये। क्योंकि आगे वेदध्वनिका वर्णन है; वेदपाठ सायंकालमें वर्जित है, क्योंकि अनध्यायका समय है। वेदपाठ प्रभातहीमें सुशोभित है। पुनः, आगेकी चौपाई '*कौतुक देखि पतंग भुलाना*……' से सम्बन्ध भी मिलता है। यदि सायं-सन्ध्याका रूपक रखते हैं तो सूर्यास्तके अनन्तर—'*मंदिर मनि समूह जनु तारा*' यह चौपाई घटित होगी, फिर '*कौतुक देखि पतंग भुलाना*……', इसको कैसे घटित करेंगे? सायं-सन्ध्याके रूपकमें अनेक दूषण उपस्थित होते हैं। (पं० रा० च० मिश्र)

☞ श्रीमिश्रजीके मतसे यहाँ प्रातःसन्ध्याका रूपक है। सायं-सन्ध्याके पक्षमें भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। जन्म मध्याह्नमें हुआ और रात्रि दिनके बाद आती है, पीछेसे नहीं। यहाँ प्रत्यक्ष वेदध्वनि हो रही है; उसीपर पक्षियोंकी बोलीकी उत्प्रेक्षा की गयी है। यदि सन्ध्याके अनुसार वेदध्वनिका रूपक किसी दूसरे शब्दपर किया जाता तो यह दोष आ सकता था। रहा—'*कौतुक देखि पतंग भुलाना*' इसको तो इस उत्प्रेक्षासे पृथक् ही मानना पड़ेगा, क्योंकि मध्याह्न कालके सूर्य किसी भी सन्ध्याके वर्णनके अनुकूल नहीं हो सकते।

अगर धूप बहु जनु अँधिआरी। उड़ै अबीर मनहुँ अरुनारी॥ ५॥
मंदिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इंदु उदारा॥ ६॥

शब्दार्थ—**अगर**=एक सुगन्धयुक्त लकड़ी जिसको पूजनके समय जलाते हैं जिससे सुगन्ध उड़ती

है। **धूप**=चंदन, गुग्गुल, राल, अगर आदिके जलानेसे जो धुआँ उठता है। **अरुनारी**=अरुणाई, ललायी, लाल रङ्ग। **अबीर**=गुलाल। रङ्गीन बुकनी जिसे लोग होलीके दिनोंमें अपने इष्ट-मित्रोंपर डालते हैं। यह प्रायः लाल रङ्गकी होती और सिंघाड़ेके आटेमें हलदी और चूना मिलाकर बनती है। अब आरारोट और विलायती बुकनियोंसे तैयार की जाती है।

अर्थ—अगरकी बहुत-सी धूपका बहुत-सा धुआँ (जो हुआ वही) मानो सन्ध्याके समयका-सा अँधेरा है। जो अबीर उड़ रहा है वही मानो (सन्ध्यासमयकी) अरुणाई है॥ ५॥ (समस्त) मन्दिरोंके मणिसमूह मानो तारागण हैं। राजमहलका कलश ही उदार (पूर्ण) चन्द्रमा है॥ ६॥

टिप्पणी—१ '*अगर धूप बहु जनु अँधिआरी।*——' इति। (क) अष्टगन्धके आदिमें अगर है, अतएव 'अगर शब्द प्रथम रखकर 'अगरधूप' से अष्टगन्ध धूप सूचित कर दिया है। नगर बड़ा भारी है। अगरकी धूप बहुत हुई, तब कुछ अन्धकार सन्ध्याका-सा हुआ। (ख) '*उड़ै अबीर*——' इति। अटारियाँ बहुत ऊँची हैं, महल कई-कई खण्डके हैं। ऊपरसे लोग अबीर छोड़ते हैं, वही दिशाओंकी ललाई है। सन्ध्याकी ललाईकी (उत्प्रेक्षा) है इसीसे '*मनहुँ अरुनारी*' कहते हैं। प्रथम अरुणता होती है तब तारागण देख पड़ते हैं, इसीसे प्रथम '*अँधिआरी*' कहकर तब तारागण कहते हैं।

टिप्पणी—२ '*मंदिर मनि समूह जनु तारा।*——' इति। (क) ऊपर '*अवधपुरी सोहइ येहिं भाँती।*——' में अवधकी शोभा कहकर रात्रिकी शोभा कही। रात्रिकी शोभा चन्द्रमा और तारागणसे है; यथा—'*ससिसमाज मिलि मनहु सुराती।*' इसीसे रात्रिकी शोभा कहनेमें चन्द्रमा और तारागणका वर्णन किया। मन्दिर बहुत ऊँचे हैं, मन्दिरोंमें ऊपर जो मणि लगे हैं तारागण हैं। (ख) '*इंदु उदारा*' का भाव कि नवमी तिथिका चन्द्र खण्डित होता है 'उदार' कहकर पूर्णचन्द्र सूचित किया। पूर्णचन्द्रकी उपमासे जनाया कि कलश बहुत ऊँचा है यथा—'*धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत॥*' पूर्णमासी पूर्णतिथि है, उसीमें पूर्णचन्द्र होता है। पूर्णचन्द्रकी उपमा देकर जनाया कि राजाका महल पूर्ण (मासी) है और महलका पूर्णकलश पूर्णचन्द्र है पुनः, (ग) '*नृपगृह कलस सो इंदु उदारा*' कहनेका भाव कि राजाके गृहमें बहुत कलश हैं, इनमेंसे जो उदार अर्थात् जो सबसे बड़ा भारी (**उदारो दातृमहतः**) कलश है वही पूर्णचन्द्र है। (घ) पूर्णिमाको सन्ध्याहीमें चन्द्रोदय होता है, इसीसे सन्ध्याके रूपकमें पूर्णचन्द्र वर्णन किया गया।

नोट—पं० रामचरण मिश्रजी लिखते हैं कि 'अरुणोदयमें बड़े ही तारे दिखायी देते हैं, छोटे नहीं, ऐसे ही छोटे मुक्ता आदि रत्न नहीं दिखायी देते, किन्तु मणिसमूह ही बड़े तारागण दिखायी देते हैं। राजभवनके कलशको उदार चन्द्रमा कहा। जो अपना सर्वस्व देनेको उद्यत हो उसे 'उदार' कहते हैं। यहाँ चन्द्रमा अपना सर्वस्व सूर्यके लिये देनेको उद्यत है।'—[कलशके सम्बन्धसे यहाँ 'उदार' से पूर्णका बोध होगा यद्यपि पूर्णिमा नहीं है। वा उदार=श्रेष्ठ उत्तम। (प्र० सं)]

भवन बेद धुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समय जनु सानी॥ ७॥
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइँ जात न जाना॥ ८॥

शब्दार्थ—**सानी**=मिली हुई। **मुखर**=शब्द। **पतंग**=सूर्य। **तेइँ**=उसने।

अर्थ—राजभवनमें अत्यन्त कोमल वाणीसे (जो) वेदध्वनि हो रही है (वही) मानो समयमें मिली हुई अर्थात् समयानुकूल; सन्ध्यासमयकी-सी। सन्ध्यासमयमें बहुत पक्षी एक संग बोलते हैं, बड़ा शब्द होता है। वैसे ही यहाँ बहुत-से ब्राह्मण मिलकर वेद-ध्वनि कर रहे हैं। अतः कहा कि '*समय जनु सानी*' पक्षियोंकी वाणी (अर्थात् चहचहाहट) है॥ ७॥ (यह) कौतुक देखकर सूर्य (भी) भुलावेमें पड़ गये वा भूल गये अर्थात् उनको अपनी सुध-बुध न रह गयी। (इसीसे) उनको एक मासका व्यतीत हो जाना न जान पड़ा॥ ८॥

नोट—१ '*भवन बेद धुनि*' इति। सन्ध्यासमय बहुत-से पक्षी एक साथ बोलते हैं जिससे बड़ा शब्द होता है; वैसे ही बहुत ब्राह्मण मिलकर वेद पढ़ते हैं। यहाँ अगणित ब्राह्मणोंके मिलकर वेदध्वनि करनेसे जो शब्द हो रहा है उसकी उत्प्रेक्षा पक्षियोंकी सन्ध्यासमयानुकूल सुहावनी बोलीसे की गयी है। वेदपाठ

अत्यन्त मृदु वाणीसे हो रहा है, इसीसे पक्षियोंकी वाणीकी उपमा दी गयी। पक्षियोंकी वाणी अति मृदु होती है। (पं० रामकुमार) पक्षियोंके शब्दका अर्थ नहीं समझ पड़ता, पर उनकी बोली प्रिय लगती है, जैसे वेदकी ऋचाओंका उच्चारण अर्थ न जाननेपर भी कैसा भला लगता है। (श्रीजानकीशरणजी) २—सन्त उन्मनीटीकाकार *'समय जनु सानी'* में के *'जनु'* का अर्थ 'उद्भव' कहते हैं अर्थात् समयके उद्भवसे सनी हुई खगरागिनी-सी जान पड़ती है। भाव यह कि इस समय जो आनन्द उमड़ रहा है, जो सुख उत्पन्न हुआ है उस समयजन्य सुखसे सनी हुई पक्षियोंकी बोली है। ऊपर जो अर्थमें लिखा गया वह पं० रामकुमारजीके मतानुसार अर्थ है। पाण्डेजी *'समय सुख सानी'* पाठ देते हैं और अर्थ करते हैं कि 'जैसे पक्षी बसेरेमें आके सुखसानी वाणी बोली बोलते हैं।'

टिप्पणी—१ (क) पक्षीगण सन्ध्यासमय सघन वृक्षमें बोलते हैं। यहाँ राजाका भवन कल्पवृक्ष है, जहाँ चारों भाई अर्थ, धर्म, काम और मोक्षरूप विराजते हैं। यथा—*'जनु पाये महिपालमनि क्रियन्ह सहित फल चारि॥'* (३२५) (ख) इस प्रसङ्गमें आठ बार उपमा (उत्प्रेक्षा) कही गयी—*'प्रभुहि मिलन आई जनु राती', 'देखि भानु जन मन सकुचानी', 'अगर धूप बहु जनु अँधिआरी' 'उड़ै अबीर मनहु अरुनारी', 'मंदिरमनि समूह जनु तारा' 'नृपगृहकलस सो इंदु उदारा', 'जनु खगमुखर'* और *'समय जनु सानी।'* आठ बार कहकर आठ प्रकारकी लुप्तोपमा यहाँ जनायी। [यह पं० रामकुमारजीका मत है। परन्तु लाला भगवानदीन एवं पं० महावीरप्रसाद मालवीयके मतानुसार *'जनु', 'मनहु'* आदि शब्द उत्प्रेक्षा अलङ्कारमें होते हैं। अर्धाली ५, ६, ७ में अगरधूप, अबीर, मन्दिरमें जड़े हुए मणिसमूह, महलके शिखरका कलश और घरमेंकी वेदध्वनि उत्प्रेक्षाके विषय प्रथम कहे गये तब उत्प्रेक्षा की गयी। अतएव इनमें 'उक्त विषयावस्तूत्प्रेक्षा' है।]

टिप्पणी—२ *'कौतुक देखि पतंग भुलाना'* इति। कौतुक एक तो जो कुतूहल हो रहा है वह। दूसरा कौतुक यह कि सूर्यने रात्रि कभी नहीं देखी थी, सो रामजन्मोत्सवमें देख ली—यह भाव दरसानेके लिये प्रथम रात्रिका वर्णन करके तब *'कौतुक देखि पतंग भुलाना'* कहते हैं।

नोट—२ बाबा हरीदासजी लिखते हैं कि 'यहाँ *'पतंग'* नाम सहेतुक है कि बड़े उड़ने-चलनेवाले थे, सो भी श्रीरामजन्ममहोत्सव देखकर अपने चलनेकी मर्यादा ही भूल गये, तब भला और लोगोंको यदि तन-मन-धनकी विस्मृति हो गयी तो आश्चर्य क्या? सूर्यका रथ हमेशा पुरीके ऊपर जब मध्याह्नमें आता है, तब घड़ीभर थम जाता है। सूर्यको बस यही बोध रहा (कि इतनी ही देर ठहरे)। हमेशा जब अन्य समय रामोत्सव होता है तब सूर्य मनुष्यरूप धरकर पृथ्वीपर उतर आते हैं और मुख्यरूपसे संसारका कार्य मर्यादापूर्वक वैसे ही होता रहता है। पर इस समय रथसमेत थम गये। यहाँ देह धरकर नहीं आये, क्योंकि इस कुलके आदि-पुरुष हैं, कपटवेषसे आते तो प्रेममें कहीं असली रूप प्रकट हो जाता जिससे भगवान्‌का अवतार प्रकट हो जाता तब रावण बध न होता। दूसरे, आकाशसे उत्सवका दर्शन अधिक अच्छा हो रहा है।'

दो०—मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानै कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ॥ १९५॥

अर्थ—(सूर्य एक मास व्यतीत होना न जान पाये इसीसे) महीने दिन (अर्थात् ३० दिन) का एक दिन हो गया। इस मर्म (भेद, रहस्य) को कोई नहीं जानता। सूर्य अपने रथसहित ठहरे रह गये (तब) रात कैसे होती?॥ १९५॥

टिप्पणी—१ *'मास दिवस कर दिवस भा ""'* अर्थात् महीनाभर नवमीहीका दिन बना रह गया। २—*'रथ समेत रबि थाकेउ'* अर्थात् सूर्यके घोड़े, सारथी, वेदोंके पाठ करनेवाले और जितने सूर्यके साथ रहनेवाले थे वे सब 'थाके' अर्थात् ठहर गये। **थाकेउ**=ठहर गये, यह बंगाल प्रान्तकी भाषा है [पुनः *'रथ समेत'* का भाव कि रथी सूर्य, घोड़े और सारथी अरुण तीनों ही आनन्दमें निमग्न थे। एकको भी चेत होता तो रथ चलता।] और प्रसिद्ध अर्थ यह है कि जन्मोत्सवकी शोभा देखकर सूर्य थक गये (अर्थात्

शिथिल हो गये)। जब महीनेभरका दिन हो गया तो महीनेभर सन्ध्या ही बनी रह गयी। तात्पर्य कि न किसीने भोजन किया, न शयन और न ही कोई नित्यके कृत्य किये, सारा दिन जन्मोत्सव करते ही व्यतीत हो गया। ३—*'मरम न जानै कोइ'* इति। भाव कि जब सूर्य ही *'कौतुक देखि भुलाना'* जो 'दिनकर' हैं, दिनके करनेवाले हैं, जब उन्होंने मर्म न जाना तब और कौन जान पाता? इसीसे प्रथम सूर्यका भुलाना कहकर तब अन्य सबका न जानना कहा। ४—*'निसा कवन बिधि होइ'* इति। भाव कि जब प्रभुको मिलनेके लिये रात्रि आयी तो रात्रि हो जानी चाहिये थी, सो न हुई, क्योंकि *'रथ समेत रबि थाकेउ'।*

'मास दिवस कर दिवस भा' इति।

जिस राशिपर सूर्य रहते हैं उसीपर चन्द्रमा अमावस्याको होता है। मेषके सूर्यके योगसे अमावस्याको अश्विनी चाहिये। अश्विनीसे पुनर्वसु सातवाँ है। अतएव अश्विनी अमावस्याको हो तो पुनर्वसु नवमीको नहीं पड़ सकता, किंतु मघा पड़ेगा जो दसवाँ है। पुनर्वसु नवमीको तभी पड़ सकता है जब अमावस्याको पूर्वाभाद्रपदा हो, पर अमावस्याको पूर्वाभाद्रपदा होनेसे मेषके सूर्य नहीं हो सकते थे। और श्रीरामजन्मपर ये तीनों अर्थात् मेषके सूर्य, पुनर्वसु और शुक्ला नवमी पड़े यह प्रामाणिक बात है।

इस असङ्गतिका मिलान किसीने इस प्रकारसे किया है कि 'नवमीको मीनके दस अंशपर सूर्य थे। बीस दिनतक तो मीनहीके सूर्य और रहने चाहिये, तब मेषके सूर्य आते हैं। मेषका दसवाँ अंश परम उच्च होता है, यह दसवें दिन पड़ना चाहिये। अब यह तो निश्चित और सर्वमान्य है ही कि पुनर्वसु और नवमी थी, जिसके योगसे यह मानना पड़ेगा कि नवमीको मीनके सूर्य दसवें अंशपर थे और उसी दिन दोपहरसे मेषके दसवेंपर आ गये। श्रीमद्गोस्वामीजीकी सम्मतिमें यह बात तबतक सम्भव नहीं जबतक सूर्यदेव एक मासतक वहाँ उपस्थित न रहे हों। इसी विचारसे कहा गया कि *'मास दिवस कर दिवस भा।'*

परंतु इस उपर्युक्त कथनमें यह बाधा पड़ती है कि हमलोग जो प्रतिदिन सूर्यको उदय होकर अस्ताचलकी ओर जाते हुए देखते हैं यह उनकी अपनी निजकी गति नहीं है; किंतु एक वायुमण्डल है जो सूर्य, चन्द्र, तारागण आदिको पृथ्वीके ऊपर-नीचे घुमाता रहता है। इससे यह सिद्ध होता है कि जब वायुमण्डल रुकेगा तभी सूर्य भी रुकेंगे और उनके साथ ही चन्द्र, तारागण आदि भी रुक जायँगे। जब सब नक्षत्र और सूर्य दोनों ही रुक गये तब राशिका परिवर्तन कैसे सम्भव हो सकता है? जो राशि, नक्षत्र आदि उस समय हैं, वे ही एक मासतक बने रह जायँगे। इसीका समर्थन प्रायः दूसरे ढंगसे श्रीमान् गौड़जीके आगेके लेखसे भी होता है।

☞ यह पूर्ण परतम ब्रह्मके आविर्भावका समय है, उनकी अघटित घटना है, इसमें क्या आश्चर्य है? जो परमेश्वरको सर्वशक्तिमान् न मानते हों उन्हींको आश्चर्य हो सकता है। रघुकुलमें आविर्भाव है। असम्भवका सम्भव कर देना प्रभुके अवतारका द्योतक है। सूर्य परमानन्दमें मग्न हो गये। उन्हें स्वयं न जान पड़ा कि हमें यहाँ एक मास हो गया।

त्रिपाठीजीका मत है कि सूर्यनारायण एक मासतक ठहरे रह गये, शेष ग्रहगण बराबर चलते रहे। एक मासमें स्वाभाविक स्थितिपर पहुँचे, तब सूर्यनारायण भी चले। अतः कहते हैं। *'मास दिवस ......।'*

वि० त्रि०—यह भी नहीं कह सकते कि 'सूर्यदेवका रुकना या आगे बढ़ जाना नितान्त असम्भव है और इसका कोई उदाहरण नहीं दिया जा सकता', क्योंकि विभिन्न पुराणोंमें ऐसे अनेक उदाहरण हैं। स्वयं वाल्मी० रा० में अनुसूयाजीके दश रात्रियोंकी एक रात्रि कर देनेका वर्णन है। यथा— **'देवकार्यनिमित्तं च यया सन्त्वरमाणया। दशरात्रं कृता रात्रिः सेयं मातेव तेऽनघ॥'** (२। ११७। १२) (अर्थात् हे अनघ रामचन्द्रजी! देवताओंके कार्यके लिये जिस अनुसूयाने दस रात्रिकी एक रात्रि बना दी, वह यह तुम्हारी माताके तुल्य है।) तब क्या दस रात्रिको एक रात्रि बिना सूर्यके रुके हो गयी और ग्रहमण्डलमें यथोचित स्थान पानेके लिये सूर्यकी गतिमें कोई विशेषता न हुई और यहाँ तो साक्षात् पूर्णब्रह्मका अवतार होनेवाला था।

'मरम न जानै कोइ' इति।

जो ऐसे तीन नक्षत्रोंको एकत्र कर सकता है जिनका एकत्र होना असम्भव है, उसकी लीलाको कौन समझ सकता है?—'*सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।*' (२। १२७) महर्षियोंने अपनी-अपनी रामायणोंमें इन नक्षत्रोंके नाम दिये हैं। पर पूज्यपाद गोस्वामीजीने '*सकल भये अनुकूल*', '*पुनीत*' और '*सुभ*' कहकर छोड़ दिया था। यहाँ '*मास दिवस कर दिवस भा*' इस अघटित घटनाको लिखकर उन्होंने अन्य ग्रन्थोक्त असम्भव ग्रहादिके योगोंका सम्भव होना जना दिया।

श्रीनंगे परमहंसजी '*मास दिवस*' का 'तीन सौ साठ घंटे' का एक दिन ऐसा अर्थ लिखते हैं। इसमें '*दिवस*' से. केवल दिन (रात नहीं) का अर्थ लिखा गया है और दिनका साधारण मान बारह घंटा होता है। इस तरह मास दिवसमें तीन सौ साठ घंटे हुए।

'*मास दिवस*' शब्द कई स्थलोंपर आया है। सर्वत्र इसका अर्थ सभी टीकाकारोंने 'एक मास' 'तीस दिन' ही किया है और परमहंसजीने भी '*मास दिवस तहँ रहेउ खरारी॥*' (४। ६। ७) और '*मास दिवस महुँ नाथ न आवा॥*' (५। २७) में 'महीनाभर' और 'एक माह' अर्थ लिखा है।

जब किसीने न जाना तो कविने कैसे जाना? उन्हीं सूत्रधर प्रभुकी कृपासे। पहले ही कह चुके हैं—'*जेहि पर कृपा करहिं जन जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥*' अतः कवि जान गये। बड़ा दिन होनेसे किसीका मन क्यों न घबड़ाया, क्योंकि दुःख-सुखका अनुभव करनेवाला मन है; यथा—'*बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही॥*' और मनके प्रेरक श्रीरामजी हैं; यथा—'*उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन।*' पुनः श्रीरामजन्मोत्सवके कौतुकमें सूर्यदेव भूल गये थे। उनकी भूलको श्रीरामजीको सँभालना पड़ा, क्योंकि उन्हींके उत्सवमें भूले थे। अतः किसीका मन नहीं घबड़ाया और न किसीको मर्म जान पड़ा। (नंगे परमहंसजी)

श्रीरामदास गौड़जी—कालका मान 'देश' के विविध पिण्डोंकी सापेक्ष गतिपर अवलम्बित है। इस वैवस्वत ब्रह्माण्डमें भगवान् दिवाकर ही इसके नियामक हैं। यदि उनकी गति रुक जाय या घट जाय तो उसी निष्पत्तिसे पृथ्वी, चन्द्रमा, मङ्गल, गुरु आदि सभी ग्रहोपग्रहोंकी गति भी सापेक्ष रीतिसे रुक जाय या घट जाय। अतः जब कभी परात्पर अवतरित होते हैं, भुवन-भास्कर रुक जाते हैं और अखिल ब्रह्माण्डोंके नियामककी अद्भुत लीला देखनेमें भूल जाते हैं इनके साथ ही जगत् (चलनेवाला), संसार (संसरण करनेवाला), ग्रह, उपग्रह तो क्या, सारी सृष्टिकी गति रुक जाती है। यथा—जो अङ्कुर चौबीस घण्टेमें निकलता वह महीनेभरमें निकलता है, जो भोजन दो पहरमें पचता वह साठ पहरमें पचता है, जितनी साँस चौबीस घण्टेमें चलती उतनी ही महीनेभरमें चलती है, जितना नाड़ीका थपकन चौबीस घण्टोंमें होता महीनेभरमें होता है। घड़ीकी सुई जो बारह घण्टोंमें घूम जाती वह पन्द्रह दिनोंमें घूम जाती है।

प्रकृतिके परमाणु-परमाणुसे लेकर बड़े-से-बड़े पिण्डकी गति सापेक्ष होती है। अतः ज्योतिषियोंके लिये भी, जो कालका मान सापेक्ष गतिसे लगाते हैं, सूर्यके रुकने या सुस्त हो जानेका हाल जानना असम्भव है। इस विपर्ययका हाल कोई वैज्ञानिक भी नहीं जान सकता। इसीलिये '*मरमु न जानइ कोइ।*' '*पतंग*' (पतं+गम्) इसीलिये कहा कि गिरने वा बैठनेके लिये (अस्त होनेके लिये) चलता है। सो वही पतङ्ग अपना अस्त होना भूल गया। '*पतंग*' का प्रयोग साभिप्राय है।

विज्ञानकी अधूरी शिक्षा होनेके कारण ये बातें कम लोग जानते हैं कि जैसे पृथ्वी चलती है वैसे ही सूर्य भी बड़े वेगसे चलता है। जिस दिशाको सूर्य चलता है, उसीकी गतिके अनुसार बढ़ती हुई पृथ्वी उसका परिक्रमण करती है। उसी तरह तेहरी चालसे बढ़ते हुए चन्द्रमा पृथ्वीका परिक्रमण करता है। यदि सूर्यकी गति घटे तो अपेक्षाकृत सबका वेग घटेगा, नहीं तो तुरन्त ही सारा ब्रह्माण्ड छिन्न-भिन्न हो जायगा। यह पिण्डोंकी प्रत्यक्ष गतिका वर्णन है। इन पिण्डोंके अभिमानी देवता भगवान् भास्कर, भगवती धरित्री, भगवान् चन्द्रमा अपनी-अपनी सापेक्ष गतिके नियामक हैं, यह हमारा हिन्दूशास्त्र कहता है। ऊपर जो '*मरमु न जानइ कोइ*' की हमने व्याख्या की है वह आज पर्यन्तके विज्ञानसे

सिद्ध व्याख्या है। आजकल हमलोगोंकी उलटी बुद्धि आसुरशास्त्रोंका अधिक प्रमाण मानती है। इसलिये मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि अभिनव शुक्राचार्य जर्मनीके प्रोफेसर एन्स्टैन (Einstein) का सापेक्षवाद (Theory of Relativity) मेरी उपर्युक्त व्याख्याका समर्थक है। यह व्याख्या मैंने नये जर्मन सापेक्षवादके प्रकाशित होनेके कई वर्ष पहले की थी। कालकी सापेक्षता 'वैज्ञानिक अद्वैतवाद' में भी दिखायी गयी है। सापेक्षवाद भारतवर्षके लिये कोई नई चीज नहीं है।

प्रोफे० दीनजी—हमारे विचारसे *'मास दिवस कर दिवस भा'* इससे यह लक्षित कराया गया है कि जब श्रीरामजीका जन्म हुआ उस समय 'अधिक चैत्र मास' था। इसलिये अशुद्ध चैत्रमें कोई शुभ कृत्य नहीं हुआ। एक मास बाद जब अशुद्ध चैत्र बीत गया तब कृत्य किये गये। अधिक मास शुद्धमासके बीचमें रहता है। चैत्र अधिक होनेसे दोनों मास इस प्रकार रहेंगे—शुद्ध चैत्र कृष्ण+अशुद्ध चैत्र शुक्ल+अशुद्ध चैत्र कृष्ण+शुद्ध चैत्र शुक्ल। अधिक मासकी जिस तिथिको सन्तानोत्पत्ति होती है शुद्धकी वही तिथि मानी जाती है। सुतराम् इस प्रकार श्रीरामजीका जन्म अशुद्ध चैत्र शुक्ल नवमीको हुआ और उनकी जन्मतिथिका मान हुआ शुद्ध चैत्र शुक्ल नवमीसे। इस प्रकार पूरा एक मास बट्टे खातेमें चला गया और अशुद्ध चैत्र शुक्ल नवमीसे शुद्ध शुक्ल नवमीतक एक मासकी गणना एक दिन हुई। इस अनुमानमें सत्यता कहाँतक है वह हम नहीं बता सकते ('आज' से उद्धृत। श्रीविश्वनाथप्रसाद मिश्र)।

पं० श्रीशुकदेवलालजी—'श्रीराम-हौरिलके जन्ममहोत्सवपर जो परमानन्द हुआ उसी कारणसे अबतक ग्राम और नगरवासी चैत्रको, होरिल-महोत्सव-सम्बन्धसे, महापावन जानकर अपने-अपने घरोंके कूड़े-करकटको फाल्गुनके अन्तमें नगरके बाहर जलाकर उड़ा देते हैं और नवीन लेपन करके घरोंको शुद्ध करते हैं, नाना प्रकारके पक्वान्न मिष्टान्न बनाते हैं, अबीर-गुलाल-अरगजादि परस्पर छिड़कते हैं, नृत्य-वादित्र करते हैं, नवीन वस्त्राभूषण, स्रक्, गन्ध धारण करते हैं और महामङ्गल परम-पावन जानकर मृतकोंके शोकको विसर्जन करते हैं, आनन्द मनाते हैं। परंतु अज्ञानतावश उसको होरी-होरी कहते हैं। होरी पद होरिलका अपभ्रंश है और होरिल झड़ले बालको कहते हैं।'

प० प० प्र०—यह रामजन्मका दिवस है। *'सुनि सिसुरुदन परमप्रिय बानी।—'* (१९३। १) से दो० १९५ तक गिननेसे ३० पंक्तियाँ होती हैं। मासके दिन भी तीस होते हैं। इस दोहेके साथ प्रथम दिन पूरा हुआ। इस हिसाबसे आगे गणना कीजिये तो *'नामकरन कर अवसर जानी।—'* बारहवीं पंक्तिमें पड़ता है। इस तरह नामकरणका १२ वें दिन होना सूचित किया। शास्त्रानुसार पुत्रका नामकरण १२ वें दिन ही विहित है। ☞ इसी तरह *'रामचरितमानस एहि नामा'* श्रीरामचरितमानसका नामकरण भी चरितके प्रकाशमें आनेसे अर्थात् *'जेहि दिन रामजनम श्रुति गावहिं।—'* (३४। ६) से १२ वीं पंक्तिमें हुआ। चरित्र पुत्र है। ☞ कन्याका नामकरण १३ वें दिन होता है। यह भी मानसकी परम अद्भुत संकेत कलामें देख लीजिये। कविता-सरिताका जन्म *'चली सुभग कविता सरिता सो।—'* (३९। ११) में कहा और उसका नामकरण १३ वें शब्दपर कहा है। शब्द-संख्यासे 'नाम' १३ वाँ शब्द पड़ता है—'चली १ सुभग २ कविता ३ सरिता ४ सो ५। राम ६ बिमल ७ जस ८ जल ९ भरिता १० सो ११॥ सरजू १२ नाम १३— ॥'

यह रहस्य काहू नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुन गाना॥ १॥
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निज भागा॥ २॥

शब्दार्थ—**दिनमनि**=दिनके प्रकाशक=सूर्य। **रहस्य**=वह गुप्त विषय जिसका तत्त्व सबको समझमें न आ सके=गुप्त चरित।

अर्थ—यह गुप्त चरित्र किसीने भी न जाना। सूर्य गुणगान करते हुए चले॥ १॥ सुर, मुनि और नागदेव महोत्सव देखकर अपने-अपने भाग्यकी बड़ाई करते हुए अपने-अपने घरको चले॥ २॥

टिप्पणी—१ (क) पूर्व कहा कि *'मरमु न जानै कोइ'* और अब यहाँ फिर कहते हैं कि *'यह रहस्य काहू नहिं जाना।'* इससे पुनरुक्ति दोष आता है? नहीं; पुनरुक्ति नहीं है, क्योंकि यहाँ दो बातें कही

गयी हैं। एक तो यह कि *'मास दिवस कर दिवस भा'* यह मर्म किसीने न जाना। दूसरी यह कि *'रथ समेत रबि थाकेउ'* यह रहस्य भी किसीने न जाना। दो बातोंके लिये दो बार कहा। (ख) *'दिनमनि'* का भाव कि सूर्यसे दिनका प्रकाश होता है जब वे यहाँ मासभर रुके रहे तब मासभरके दिनोंका प्रकाश (अनुभव) न हुआ। अर्थात् न जाने गये। जब चले तब *'दिनमनि'* नाम देकर जनाते हैं कि सब दिन न्यारे-न्यारे जाने गये। [बाबा हरीदासजी लिखते हैं कि 'दिनमणि नाम तो रविका उलटा है; क्योंकि रविका मणि दिन है न कि दिनका मणि रवि। जो जिससे उत्पन्न वा प्रकट होता है वह उसका मणि कहलाता है। जैसे, अहिमणि, गजमणि। 'दिनमणि' नाम सहेतुक है। क्योंकि पुत्रके नामसे पिताका नाम होता है और कहीं पिताके नामसे पुत्रका नाम होता है। सो आजका दिन ऐसा ही है कि पुत्रके नामसे पिताका नाम होगा। जिस दिन श्रीरामजन्म हुआ वह दिन धन्य है।']

(ग) *'चले करत गुन गाना'* इति। पूर्व *'रबि थाकेउ'* कहा था, अत: अब उनका चलना कहते हैं। श्रीरामगुणगान करते चले; यथा—*'करहिं राम कल कीरति गाना।'*

टिप्पणी—२ (क) *'देखि महोत्सव सुर मुनि नागा।'* इति। प्रथम सूर्यका चलना कहकर तब इनका चलना कहा। तात्पर्य कि सूर्यके चलनेसे काल बदला तब सबको चलनेकी इच्छा हुई। (ख) *'चले भवन बरनत निज भागा'* इति। तात्पर्य कि श्रीरामजन्मोत्सव बड़े भाग्यसे मिलता है, इसीसे देवता, मुनि, नाग प्रत्येक रामनवमीको अयोध्याजीमें आकर जन्मोत्सव रचते हैं। *'असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं पदपंकज सेवा॥ जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम कल कीरति गाना॥'* सब श्रीरामजन्मोत्सव देखनेसे अपने भाग्य मानते हैं।

वि० त्रि०—*'सुर मुनि नागा ' बरनत निज भागा'* इति। एक कल्पमें एक ही रामावतार होता है और वह वैवस्वत मन्वन्तरमें होता है, तो तेरह मन्वन्तर खाली रह जाते हैं। इन्द्रादि देवोंकी आयु एक मन्वन्तरकी होती है। अत: सुर-मुनि-नाग रामावतारोत्सव देखनेमें अपने भाग्यकी सराहना करते हैं। तेरह मन्वन्तरके सुर-मुनि-नागोंके भाग्यमें यह सुख नहीं था।

वि० त्रि०—प्रभुके जन्मोत्सवको शिशिर ऋतु कहा है। इस ऋतुमें दो मास माघ और फाल्गुन होते हैं। सो ऊपरके दो दोहोंमें १९३-१९४ में माघ मास वसंत पञ्चमी आदिका उत्सव कहा। फिर दो दोहोंमें फाल्गुनोत्सव कहा। फाल्गुनमें होली होती है, रंग चलता है, अबीर लगायी जाती है, होलीमें लड़के-लड़की चोरी करते हैं, इत्यादि सब प्रसङ्ग यहाँ कहे गये हैं। यथा—*'मृगमद चंदन कुंकम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा॥' 'उड़इ अबीर'* सूर्यने एक मासकी चोरी की, शङ्करजी और भुशुण्डिजीने अपने रूपकी चोरी की *'औरो एक कहौं निज चोरी'* होलीमें चोरी बुरी नहीं समझी जाती। शङ्करजी अपनी चोरीको 'शुभचरित' कहते हैं। यथा—*'यह सुभ चरित जानपै सोई ।'*

औरो एक कहौं निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी॥ ३॥
काकभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानै नहिं कोऊ॥ ४॥
परमानंद प्रेमसुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले॥ ५॥

अर्थ—हे गिरिजे! तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त दृढ़ है (इससे) मैं एक और भी रहस्य अर्थात् अपनी चोरी तुमसे कहता हूँ, सुनो॥ ३॥ काकभुशुण्डि और हम, दोनों (प्राणी) साथ-साथ मनुष्यरूप धारण किये हुए जिसमें कोई जाने नहीं, परमानन्द, प्रेम और सुखसे फूले (अर्थात् पूर्ण) और मनमें मग्न अपनेको भूले हुए गलियोंमें फिरते रहे॥ ४-५॥

टिप्पणी—१ *'औरो एक कहौं निज चोरी'* इति। (क) *'औरो एक'* का भाव कि *'मास दिवस कर दिवस भा '* इत्यादि गुप्त रहस्य मैंने तुमसे कहा। अब और भी एक गुप्त बात तुमसे कहता

हूँ, जो अपने सम्बन्धकी है। अर्थात् अपनी गुप्त बात कहता हूँ। (ख) *'निज चोरी'* पदसे जनाया कि श्रीपार्वतीजी साथमें न थीं, शिवजी इनसे चुराके मनुजरूपसे भगवान्‌के दर्शनार्थ गये थे। [गोस्वामीजीका काव्यकौशल देखिये। चोर प्रायः रातमें ही चोरी करते हैं इसीसे शङ्करजीकी चोरीकी बात भी सूर्यके चले जानेपर कही। सूर्य दिनमें चोरी करते हैं, यथा—*'बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोइ। तुलसी प्रजा सुभाग तें भूप भानु सो होइ॥'* (दो० १०८)]

नोट—१ *'औरो निज चोरी'* का दूसरा भाव कि सूर्यादिकी चोरी तो सुनायी ही कि उन्होंने 'मासदिवसकी' चोरी की, अब अपनी भी चोरी सुनाता हूँ कि तुमसे भी छिपाके मैं वहाँ किस वेषसे गया था। अतएव *'औरो एक'* और *'निज चोरी'* पद दिये। चोरी=चुराई व छिपाई हुई बात, गुप्त बात। पार्वतीजीने अपने प्रश्नोंके अन्तमें यह प्रार्थना की *'जो प्रभु मैं पूछा नहीं होई। सोउ दयालु राखहु जनि गोई॥'* (१११। ४) यहाँ उसी प्रश्नका उत्तर देते हैं।

नोट—२ पं० रामचरणमिश्रजी कहते हैं कि सूर्यने समयकी चोरी की, समय सूर्यका ही स्वरूप है। यह सूर्यकी *'निज'* अर्थात् अपने स्वरूपकी चोरी हमने तुमसे कही, अब दूसरी हमारी *'निज'* चोरी सुनो। अतएव *'औरो एक'* कहा। शङ्करजीने सोचा कि जब रामजीके पुरखा ही चोरी किये हुए उत्सवमें सम्मिलित हैं तो हम भी चोरीहीद्वारा क्यों न सम्मिलित हों।

नोट—३ ☞ 'रामावतार गुप्त ही अधिक है। इसीसे इन चोरियोंका हास्यरस और आनन्द विचारणीय है।' (लमगोड़ाजी)

नोट—४ *'सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी'* इति। (क) *'अति दृढ़ मति'* के सम्बन्धसे यहाँ *'गिरिजा'* नाम दिया। भाव कि श्रीरामजीके सम्बन्धमें संशय करनेसे तुमने अति कष्ट झेले, फिर भी तुमने प्रश्न किया और श्रीरामचरित सुने बिना तुमसे न रहा गया। जब तुम इतनी दृढ़ भक्ता हो तब तो तुम अवश्य किसी अनधिकारीसे यह रहस्य न कहोगी; अतएव तुमसे कहता हूँ। पर्वत अचल है, उसकी कन्या क्यों न दृढ़ मति हो? (पं०) पुनः, (ख) बाबा हरीदासजी लिखते हैं कि 'आजतक यह बात चुराये रहे, न कही। क्योंकि तुमको साथ ले जाते तो तुम स्त्रियोंके सङ्ग होकर भीतर चली जाती और रामरूप देख प्रेमवश तुम्हारा कपट नारिवेष छूट जाता तो भेद खुल जाता कि राम ब्रह्म हैं कि जिनके दर्शनको उमाजी आयी हैं और प्रभु रावणवधार्थ गुप्तरूपसे अवतरे हैं, वधमें बाधा पड़ती। पुनः तुमसे इसलिये न कही कि तुमको सुनते ही रोष आ जाता, तुम कहतीं कि बाल-उत्सवमें तो स्त्रियोंका बड़ा काम रहता है, तुम पुरुष होते हुए गये हमको न ले गये। तुम्हारा मन हमसे व्यग्र हो जाता जैसा कि स्वाभाविक है। पर, तुम *'गिरिजा'* हो, तुम्हारी बुद्धि मेरी भक्तिमें अति दृढ़ है, अतः तुमसे अब कहता हूँ।' पुनः, भाव कि—(ग) यह चरित बिना श्रीरामकृपाके कोई जान नहीं सकता; यथा—*'यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जा पर होई॥'* श्रोता 'सुमति' हो तब उससे कहना चाहिये। तुम *'अति दृढ़ मति'* वाली हो इससे तुमसे कहता हूँ। (पं० रामकुमारजी) पुनः, (घ) *'अति दृढ़ मति'* अर्थात् तुम्हारी बुद्धि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें तथा उनकी कथामें अत्यन्त दृढ़ है।

नोट—५ (क) *'काकभुसुंडि संग'* का भाव कि श्रीभुशुण्डिजीपर श्रीरामजीकी बड़ी कृपा है। वे इस चरितके जानकार हैं; यथा—*'जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भगतहेतु लीला बहु करहीं॥ तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ॥ जन्म महोत्सव देखौं जाई। बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई॥'* (७। ७५) जानकारके सङ्गमें अधिक सुख होता है। (पं० रामकुमारजी) (ख) *'काकभुसुंडि संग हम दोऊ'* का अर्थ इस प्रकार भी करते हैं कि 'काकभुशुण्डिजीके साथ हम थे दोनों'। भुशुण्डिजीके सङ्गके और कारण ये भी हैं कि—वे आपके शिष्य हैं, उन्होंने आपसे ही रामचरित पाया है। दूसरे आप दोनों बालरूप रामके अनन्य उपासक हैं; यथा—*'बंदउँ बालरूप सोइ रामू।'* (शिवजी), *'इष्टदेव मम बालक रामा।'* (भुशुण्डिजी) उत्सवका पूर्णानन्द तभी मिलता है जब भेदी साथ हो और ये भेदी हैं ही।

☞ गीतावलीमें नामकरण-संस्कारके पश्चात् श्रीशिवजी और श्रीभुशुण्डिजीका वर्णन आया है जो इस प्रसङ्गकी जोड़का है। यथा—'*अवध आजु आगमी एक आयो। करतल निरखि कहत सब गुनगन बहुतन परिचो पायो। बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुनायो। सँग सिसु सिष्य सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो॥ पाँय पखारि पूजि दियो आसन असन बसन पहिरायो। मेले चरन चारु चारों सुत माथे हाथ दिवायो॥ नखसिख बाल बिलोकि बिप्रतनु पुलक नयन जल छायो। लै लै गोद कमल कर निरखत उर प्रमोद अनमायो॥ जन्मप्रसंग कहेउ कौसिक मिस सीय स्वयंबर गायो। राम भरत रिपुदवन लखनको जय सुख सुजस सुनायो॥ तुलसिदास रनिवास रहसबस भयो सबको मन भायो। सनमान्यो महिदेव असीसत आनँद सदन सिधायो॥*' (गी० १। १४)

नोट—६ '*काकभुसुंडि संग*' इति। यहाँ श्रीकाकभुशुण्डिजीका नाम प्रथम देकर उनको प्रधान रखा और अपनेको गौण। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि शिवजीने कहा है कि मैं तुमको वह कथा सुनाता हूँ जो भुशुण्डिजीने गरुड़जीको सुनायी थी; यथा—'*कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहगनायक गरुड़।*' (१२०) '*उमा कहिउँ सब कथा सुहाई। जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई॥*' (७। ५२) और फिर श्रीपार्वतीजीके पूछनेपर कि आपने इनका संवाद कब और कहाँ तथा कैसे सुना? उन्होंने उत्तरमें कहा है कि '*मैं जिमि कथा सुनी भवमोचनि। सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि॥*' (७। ५६। १) '*तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास। सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास॥*' (५७) इस प्रकार शिवजीने श्रीभुशुण्डिजीसे कथाका सुनना बताया है। अतः प्रथम कहकर उनको सम्मान देना योग्य ही है। यह भी भगवान् शंकरकी शालीनता और निर्ममता, अमानता '*सबहि मानप्रद आपु अमानी।*' का नमूना है, उदाहरण है।

नोट—७ '*मनुजरूप*' इति। नररूपसे क्यों गये? यह प्रश्न उठाकर लोगोंने उसका उत्तर यों दिया है—(१) प्रसिद्ध तनसे वह सुख न मिलता। (२) देवरूपसे प्रत्यक्ष जानेसे प्रभुका ऐश्वर्य प्रकट हो जाता—'*गुप्तरूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सब कोइ।*' (४८) (३) जिस देश, जिस समाजमें जाकर वहाँका पूर्ण रसास्वाद लेना हो, वहाँ उसी समाजके अनुकूल तद्रूप होकर सम्मिलित होनेसे वह रस मिल सकता है। (४) दोनोंके परम उपास्य श्रीरामचन्द्रजीहीने मनुष्य-शरीर धारण किया, अतएव इन्होंने भी मनुष्यरूप धारण किया और जूठन और दर्शनका योग तो आज है ही नहीं; इसलिये पुरवासियोंके साथ मिलकर उत्सवका आनन्द लूटने लगे। (मा० म०) (५) प्रेमरस चुरानेके लिये मनुजरूप धरकर गये वह प्रेमरस पाकर परमानन्दसे फूल गये। (पाँड़ेजी) (६) मेरी समझमें तो इसका उत्तर गोस्वामीजीने स्वयं दे दिया है कि '*जानइ नहिं कोई*' फिर बात यह भी है कि इस रूपसे सूतिकागृहतक पहुँच सकनेकी आशा है। वे ताकमें हैं कि कब और कैसे दर्शनानन्द-दान मिले।

नोट—८ 'श्रीपार्वतीजीसे चुराकर क्यों गये?—इसके कारण नोट ४ में लिखे गये हैं। एक कारण यह भी है कि स्त्रियोंका साथ होनेसे पूर्ण आनन्द न ले सकते। (प्र० सं०)

टिप्पणी—२ '*परमानंद प्रेमसुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं*……' इति। (क) '*फिरहिं*'=फिरते हैं; यह वर्तमान कालवाचक क्रिया है। कहना तो भूतकाल चाहिये था अर्थात् गलियोंमें फिरते रहे थे, सो न कहा। इसमें तात्पर्य यह है कि जैसा सुख रामजन्म देखनेसे हुआ वैसा ही सुख वह चरित कहनेसे हुआ; यह भाव दरसानेके लिये वर्तमान क्रियाका प्रयोग किया गया। (ख) जो सुख सबको हुआ वही शिवजी और भुशुण्डिजीको हुआ; यथा—'*परमानंद पूरि मन राजा*', '*ब्रह्मानंद मगन सब लोई*' तथा यहाँ '*परमानंद प्रेमसुख फूले।*' (ग) [पं० रामचरणमिश्रजी यह भाव कहते हैं कि 'योगिराज शंकरजीके हृदयका ब्रह्मानन्द भी वहाँसे निकलकर साकार ब्रह्मके प्रेमके सुखसे फूला हुआ और मन भूला अर्थात् विचारको भूल (मन, ज्ञान और विचारको भी कहते हैं) आनन्दमें डूबा अवधकी गलियोंमें फिर रहा है। जब ब्रह्मानन्द ही यहाँ मारा-मारा फिर रहा है तब ब्रह्मज्ञानियोंकी कौन कहे।' यह भाव इस अर्धालीको आगेके '*यह सुभ चरित जान पै सोई*……' के साथ लेकर कहा गया है।]

नोट—९ '*बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले*' इति। मनका व्यवहार संकल्प-विकल्प है, वह चञ्चल है। सो वह महोत्सवमें ऐसा मग्न हो गया कि अपना स्वभाव ही भूल गया, जिससे प्रेममें सुध-बुध न रह

गयी कि कहाँ किस ओर जा रहे हैं, इत्यादि। *'बीथिन्ह'* में फिरनेके भाव ये कहे जाते हैं—(१) नगरमें सर्वत्र एक समान उत्सव हो रहा है। जैसे राजाके यहाँ उत्सव है वैसे ही समस्त नगरमें है। इसीसे वीथियोंमें फिरते हैं। (पं० रा० कु०) (२) पुरवासिनी स्त्रियाँ गलियोंमें होकर राजमन्दिर और महलोंको जा रही हैं। और महलकी दासियाँ एवं जो-जो स्त्रियाँ दर्शन करके लौट रही हैं, वे परस्पर शिशुके रूप, गुण कहती-सुनती चली आ रही हैं। उनके श्रवणका आनन्द गलियोंमें ही है। (मा० म०) (३) घर-घर बधावे बज रहे हैं, राजमार्गपर बड़ी भीड़ है कि कानसे लगकर कोई बोले तभी सुनायी दे, अन्यथा नहीं; यथा—*'निकसत पैठत लोग परस्पर बोलत लगि-लगि कान।'* (गी० १। १) दोनों अनन्य सेवक हैं। राजद्वारपर दान बट रहा है। यदि वहाँ जाते हैं तो अनन्य व्रतमें बट्टा लगता है क्योंकि प्रभुको छोड़ दूसरेके हाथसे दान कैसे लें? और, वहाँ जाकर दान न लें तो प्रभुका अपमान ही है। महोत्सवका आनन्द तो जैसा राजद्वारपर है वैसा ही गलियोंमें भी देख रहे हैं। गलियोंमें देख लेनेसे राजद्वारपर जानेकी आवश्यकता ही न रही और अपने धर्मका निर्वाह भी हो गया। अथवा (५) बीथिन्हका अर्थ मार्ग, रास्ता, गली, सड़क सभी है। इस प्रकार यह शंका ही नहीं रह जाती। सभी ठौर आनन्द लूटते थे। *'मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा॥'* से स्पष्ट है कि *'बीथिन्ह'* का अर्थ मार्ग, सड़क, गली सभी है। गलियोंमें अरगजाका कीच हो और सड़कें अरगजासे न सींची गयी हों, यह कब सम्भव है?

यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई॥ ६॥
तेहि अवसर जो जेहि बिधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहिं मन भावा॥ ७॥
गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हे नृप नाना बिधि चीरा॥ ८॥

अर्थ—पर यह शुभ चरित वही जानता है जिसपर श्रीरामजीकी कृपा होती है॥ ६॥ उस अवसरपर जो जिस प्रकार आया, राजाने उसको वही दिया जो उसके मनको भाया। अर्थात् मनभावता दान सबको दिया गया॥ ७॥ गज, रथ, घोड़े, सोना, गौ, हीरा और अनेक प्रकारके वस्त्र राजाने दिये॥ ८॥

टिप्पणी—१ (क) *'यह सुभ चरित'* अर्थात् जिस चरितमें शिवजी और भुशुण्डिजी मग्न रहे और अपनेको भूले हुए गलियोंमें फिरते रहे वह चरित श्रीरामकृपासे ही जाननेको मिलता है अन्यथा नहीं। ['यह *सुभ चरित'* से जनाया कि यह चरित मंगल-कल्याणकारी है। यह चरित='जिस बातके लिये हम चोरी करने गये वह चरित'। (पां०)=जिसको हम चोरीसे देखने गये वह श्रीरामजन्म-चरित। अथवा, महीनेभरका एक दिन हो जाना और देवताओंका मनुजरूपसे उत्सव देखना इत्यादि शुभ चरित। (वै०)] जो चरित वे किसीको न जनाना चाहें उसे कोई जान नहीं सकता। *'मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानै कोइ', 'रथ समेत रबि थाकेउ ""।' 'यह रहस्य काहू नहिं जाना'* और *'मनुजरूप जानै नहिं कोई'*—ये सब चरित किसीको न जनाया क्योंकि जाननेसे ऐश्वर्य खुल जाता। शिवजी और भुशुण्डिजी इत्यादि ऐश्वर्यके ज्ञाता हैं। इन्हींको प्रभुने जनाया है। जिस चरितमें सूर्य, शिव और भुशुण्डिजी मग्न हुए, अपनेको भूल गये—उसका जानना और उस सुखका होना यह श्रीरामकृपासे है। (ख) *'जान पै सोई'* का भाव जिसे प्राप्त हुआ वही जानता है और केवल जानता ही भर है, कह नहीं सकता; यथा—*'सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई।'* [(ग) *'कृपा राम कै जापर होई'*— भाव कि रहस्यका जानना केवल श्रीरामकृपासाध्य है, क्रियासाध्य नहीं है। पुनः भाव कि अन्य पदार्थ अन्य साधनोंसे मिल सकते हैं पर यह नहीं मिल सकता। (रा० प्र०)]

टिप्पणी—२ *'तेहि अवसर जो जेहि बिधि आवा ""'* इति। (क) अर्थात् देवता भिखारी बनकर आये,—*'राम निछावर लेन हित देव हठि होत भिखारी।'* (गी० १। ६) गन्धर्व गायक बनकर आये, वेद वंदीरूपसे आये। इत्यादि। (ख) *'दीन्ह भूप ""।'*—भाव कि रामजन्ममें दान वर्णन किया; यथा—*'हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह।'* (१९३) इत्यादि। अब भरतादिक तीनों भाइयोंके जन्ममें दान कहते हैं कि *'दीन्ह भूप जा कहँ जोइ भावा'*। [*'दीन्ह भूप'* से यह भी जनाया कि राजाने देवताओंको जान लिया।

यथा—'*भूमिदेव देव देखि कै नरदेव सुखारी।*' इसीसे '*बोलि सचिव सेवक सखा पटधारि भँडारी*' कहा कि '*देहु जाहि जोइ चाहिए सनमानि सँभारी॥*'...... (गी० १। ६। २२-२३) पं० रामकुमारजीने जो लिखा है कि यह भरतादिके जन्मका दान है वह इससे कि याचकोंने 'चारों पुत्रोंके चिरजीवी होनेका आशीर्वाद दिया है।'] (ग) '*गज रथ तुरग*......' इति। ऊपर जो कहा कि '*जोइ भावा*' उसीका अर्थ यहाँ स्पष्ट करते हैं। गज और तुरंगके बीचमें रथ कहकर जनाया कि गज-रथ दिये और तुरंगरथ दिये। हाथी या घोड़े जुते हुए रथ दिये (एवं हाथी और घोड़े भी दिये)। इसी तरह गौको हेम और हीराके बीचमें देकर जनाया कि हेम और हीरा तो दिया ही और जो गौएँ दीं वे हेम और हीरासे अलंकृत थीं। यथा—'*सब बिधि सकल अलंकृत कीन्ही। मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्ही॥*' (३३१। ३) गोदानका यही विधान है, न कि जैसा आजकल कि पाँच आने अथवा सवा रुपयेमें गोदान कराया जाता है। (घ) '*नाना बिधि चीरा*' अर्थात् सूती, ऊनी, रेशमी, कौषेय इत्यादि बहुमूल्य कपड़े।

वे० भू० जीका मत है कि 'श्रीरामजीका जातकर्म-संस्कार आँगनमें हुआ। तत्पश्चात् राजपुत्र सूतिकागृहमें भेजा गया। तदुपरान्त नालोच्छेदन हुआ और तभीसे जननाशौच लग गया। इसी कारण दूसरे और तीसरे दिन महारानी श्रीकैकेयी और श्रीसुमित्राजीके पुत्र होनेपर नान्दीमुखश्राद्ध, जातकर्म एवं दान-मान आदि नहीं हो सकते थे और शास्त्रविरुद्ध दान उस धर्मयुगमें लेता ही कौन! श्रीरामजीकी बरही हो जानेपर उसी दिन अन्य तीनों राजकुमारोंका भी सूतक निवृत्त हो गया। यथा—'**जनने जननं चेत्स्यान्मरणे मरणं तथा। पूर्वशेषेण शुद्धिः स्यादुत्तराशौचवर्जितम्॥**' (माधवीये तथा वैष्णवधर्मसंहितायाम्) सूतकके कारण बरहीके पूर्व भाइयोंकी निछावरें लोग न पा सके थे। इसीसे आज बरहीके उपलक्ष्यमें '*तेहि अवसर*...... *भावा।*'

दासकी समझमें '*तेहि अवसर*' उसी दिन नवमीको सूर्यके चलनेपर तीनों भाइयोंका जातकर्म-संस्कार समाप्त हुआ। उसी समय यह दान दिया गया। दोहा १९३ में शास्त्रीय प्रमाण लिखे जा चुके हैं जिनसे सिद्ध होता है कि दूसरे पुत्रके जन्मपर पहलेका जननाशौच बाधक नहीं होता। जातकर्म-संस्कार किया जाना विधि है (यदि दूसरा पुत्र सूतकमें पैदा हो तो भी) और दान उसका एक अङ्ग है। और दासकी समझमें तो मानसकल्पमें तो चारों भाई एक ही दिन हुए। इस दशामें तो दिनभर दान तो नालच्छेदनके पश्चात् भी हो सकता है। दोहा १९३में देखिये।

दो०—मन संतोषे सबन्हि के जहँ तहँ देहिं असीस।
सकल तनय चिरजीवहु तुलसिदास के ईस॥१९६॥

अर्थ—सबके मनमें सन्तोष है। जो जहाँ है वहींसे आशीर्वाद दे रहा है 'तुलसिदासके ईश (स्वामी) सब (चारों) पुत्र बहुत काल जीवें (दीर्घायु हों, चिरजीवी हों)'॥ १९६॥

टिप्पणी—१ (क) '*मन संतोषे*' क्योंकि सबने मनभावता दान पाया है, नहीं तो मन कभी नहीं भरता चाहे घर भले ही भर जाय। (ख) '*जहँ तहँ*' अर्थात् साक्षात् (प्रत्यक्ष)में और परोक्षमें। (तथा जहँ तहँ=जहाँ तहाँ=जो जहाँ है वहीं।) (ग) '*देहिं असीस*'। क्या आसिष देते हैं यह उत्तरार्द्धमें ग्रन्थकार स्वयं लिख रहे हैं—'*सकल तनय चिरजीवहु*' । (घ) '*सकल तनय चिरजीवहु*' से सूचित हुआ कि सब भाई एक ही समयमें जनमे हैं; यथा—'*तेहि अवसर सुत तीनि प्रगट भए*', '*जनमे एक संग सब भाई*'। इसीसे धन पाकर सब भाइयोंको आशीर्वाद दे रहे हैं। [(ग) गीतावलीमें आशीर्वाद इस प्रकार है,—'*असही दुसही मरहु मनहि मन बैरिन्ह बढ़हु बिषाद। नृप सुत चारि चारु चिरजीवहु संकर-गौरि-प्रसाद॥*' (गी० १। २। १७) पर यह बधावे लिये हुए स्त्रियोंके आशीर्वाद हैं।]

नोट—१ ☞ '*तुलसिदास के ईस*' इति। यह कविकी उक्ति है। उनका हृदय इस समय परमानन्दमें मग्न है। वे इस महोत्सवके अवसरपर पुरवासियों एवं सभी दान लेनेवालोंके मुखोंसे अपना भविष्य दासत्व

निश्चय करा लेना चाहते हैं, यह उनकी चतुरता है। कविका अपना भविष्य दूसरोंसे कहलाना 'भाविक' अलङ्कार है। *'तुलसिदास के ईस'* यह वचन सबके मुखोंसे कहलाकर वे श्रीरामजीमें अपना स्वामी-सेवक भाव पुष्ट करते हैं। पुनः, यह भी कह सकते हैं कि कवि इस महोत्सवको लिखते-लिखते परमानन्दमें स्वयं ऐसे मग्न हो गये कि आप भी मनसे पुरवासियों और याचकोंमें जा मिले हैं, मंगन बनकर मँगतोंके साथ स्वयं भी आशीर्वाद देने लगे कि 'हे हमारे स्वामी! आप चिरजीवी हों! पंजाबीजीका मत है कि याचकोंके साथ अपना नाम भी देनेका भाव यह है कि आपने औरोंको *'जो जेहिं भावा'* अर्थात् उसका मनोवाञ्छित पदार्थ दिया, मुझको भक्ति दीजिये; चारों भाई मुझे अनन्यदास बना लें।

पं० रामचरणमिश्रजीका मत है कि 'इस महान् उत्सवमें सुर-नर-नाग आदि सम्मिलित होकर आनन्दमें मग्न हैं। इस रसको वर्णन करते-करते कविका भी चिच्छक्तिरूप आत्मा वहीं उपस्थित हुआ। और अन्य लोगोंकी दृष्टि बालभावहीकी है परंच कविपर भाव सेव्य-सेवकका आरूढ़ है। अतः कवि स्वामिभाव-दृष्टिसे ईश्वरता स्मरण करते हुए यहाँ कहते हैं—*'तुलसिदास के ईस।'* अथवा कविने सोचा कि यह वात्सल्यरसका प्रकरण है, ऐसा न हो कि कहते-कहते मेरा मन भी वात्सल्यरसमें डूबकर ईश्वरता भूल जाय। अतः अपने मनको सावधान करते हुए ईश्वरताको स्मरण करते हैं।'

नोट—२ *'सकल तनय'*—'इति। यहाँ राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न नाम न कहकर *'सकल तनय चिरजीवहु'* कहा क्योंकि अभी जन्म हुआ है, नामकरण अभी नहीं हुआ है, तब नाम कैसे लिखें?

नोट—३ इस दोहेसे जन्मोत्सवकी इति लगायी।

नोट—४ श्रीरघुनाथजीके जन्ममहोत्सवानन्दको मानस प्रकरणमें *'भँवर तरंग'*—' कहा गया है। यथा—*'रघुबर जन्म अनंद बधाई। भँवर तरंग मनोहरताई॥'* (४७।८) वह यहाँ चरितार्थ देखिये। यथा—*'आनँद मगन सकल पुरबासी', 'दसरथ पुत्र जन्म सुनि काना। मानहु ब्रह्मानंद समाना॥ परम प्रेम मन पुलकसरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा॥', 'परमानंद पूरि मन राजा', 'ब्रह्मानंद मगन सब लोई', कौतुक देखि पतंग भुलाना', 'काकभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुज रूप जानै नहिं कोऊ॥ परमानंद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले॥'* भँवरमें मनुष्य डूबता है, वैसे ही सब आनन्दमें मग्न (डूबे) हैं।

कछुक दिवस बीते येहिं भाँती। जात न जानिय दिन अरु राती॥ १॥
नाम-करन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ज्ञानी॥ २॥
करि पूजा भूपति अस भाषा। धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा॥ ३॥

अर्थ—कुछ दिन इस प्रकार बीते। दिन-रात बीतते जान नहीं पड़े॥ १॥ नामकरणका अवसर जानकर राजाने ज्ञानी मुनि श्रीवसिष्ठजीको बुला भेजा॥ २॥ उनकी पूजा करके राजा यों बोले—'हे मुनि! जो नाम आपने विचार रखे हैं सो धरिये॥ ३॥

टिप्पणी—१ (क) *'कछुक दिवस बीते'*—' इस अर्धालीमें छठीका वर्णन लक्षित कराया गया। छठीमें रातको जागरण होता है। गीतावलीमें तीन रात छठीका जागरण और उत्सव कहा गया है। सुखके दिन पलके समान बीत जाते हैं। 'रात-दिन जाते न जान पड़े' यह कहकर जनाया कि ये कुछ दिन सुखमें बीते। (ख) *'कछुक'* अर्थात् दस-ग्यारह। क्योंकि नामकरण पाँचवाँ संस्कार है जो जन्मसे ग्यारहवें या बारहवें दिन होता है। यथा—**'एकादशे द्वादशकेऽपि श्रेयः।'** [ग्यारहवाँ दिन इस संस्कारके लिये बहुत अच्छा है, न हो सके तब बारहवें दिन होना चाहिये। गोभिल गृह्यसूत्रमें ऐसी ही व्यवस्था है। स्मृतियोंमें वर्णानुसार व्यवस्था मिलती है। जैसे क्षत्रियके लिये १३ वें, वैश्यके लिये १६ वें और शूद्रके लिये २२ वें दिन।] (ग) *'नामकरन कर अवसरु जानी'* इति। 'जब दिन-रात जाते न जाने तो नामकरणका अवसर कैसे जाना?' इसका उत्तर यह है कि 'दिनका होना, रातका होना तो जाना गया, उनका बीत जाना न जान पड़ा। अर्थात् सुखके दिन थे, इससे जल्दी बीत गये। प्रथम तो एक मासका दिन हो गया था, जो बीतता ही न था, जब प्रमाणके दिन हुए तब बीतने लगे।

सो कुछ दिन इस भाँतिसे बीते कि रात न होती थी सो होने लगी। अब रात भी होती है। पुनः भाव कि प्रथम महीनेभरका दिन हुआ सो न जान पड़ा और अब रात और दिनका जाना नहीं जान पड़ा—ऐसा सुख हुआ।

टिप्पणी—२ (क) ***'अवसरु जानी'*** कहकर जनाया कि राजा पण्डित हैं, इसीसे उन्होंने समय जानकर गुरुको बुलवा भेजा है। सब संस्कार गुरुहीने किये हैं। यथा—***'गुरु बसिष्ठ कहँ गएउ हँकारा'*** (जन्मपर), ***'भूप बोलि पठए मुनि ज्ञानी',*** (यहाँ) ***'चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई।'*** (२०३। ३) ***'दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता।'*** (२०४। ३) ***'गुरु गृह पढ़न गए रघुराई।'*** (२०४। ४) सब कार्योंमें ***'गुरु'*** प्रधान हैं। (ख) ***'मुनि ज्ञानी'*** इति। यहाँ गुरुको ***'मुनि ज्ञानी'*** कहा; क्योंकि नामकरण-संस्कारमें बड़े ज्ञानका काम है, अन्य सब संस्कारोंसे विशेष ज्ञानका प्रयोजन नहीं है। आगे ***'इनके नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा॥'*** इन वचनोंसे यह भाव स्पष्ट हो जाता है। [कर्णवेध, चूड़ाकरण, अन्नप्राशन इत्यादिमें विशेष विचारका काम नहीं पड़ता, केवल मन्त्रोच्चारण करना पड़ता है। पुनः, ***'ज्ञानी'*** विशेषण दिया क्योंकि ये इनके यथार्थ स्वरूपके ज्ञाता हैं, वैसा ही नाम भी रखेंगे।]

नोट—१ नामकरण जिस विधिसे हुआ उसका कुछ उल्लेख गीतावलीमें है; यथा—'···***जल दल फल मनिमूलिका कुलि काज लिखाए॥ १॥ गनप गौरि हरि पूजिकै गोबृंद दुहाए। घर-घर मुद मंगल महा गुन गान सुहाए॥···॥ २॥ गृह आँगन चौहट गली बाजार बनाए। कलस चँवर तोमर ध्वजा सुबितान तनाए॥ चित्र चारु चौकै रचीं लिखि नाम जनाए। भरि-भरि सरबर बापिका अरगजा सनाए॥ ३॥···बरे बिप्र चहुँ बेदके रबिकुल गुरु ज्ञानी। आपु बसिष्ठ अथर्वनी महिमा जग जानी॥ लोक रीति बिधि बेदकी करि कह्यो सुबानी। सिसु समेत बेगि बोलिये कौसिल्या रानी॥ ५॥ सुनत सुआसिनि लै चलीं गावत बड़भागी···॥ ६॥ चारु चौक बैठत भईं भूपभामिनी सोहैं। गोद मोद मूरति लिये सुकृतीजन जोहैं॥ ···७॥ लगे पढ़न रच्छा ऋचा ऋषिराज बिराजे।'—'मुनि ज्ञानी'*** का भाव इस उद्धरणसे स्पष्ट हो जाता है।

गोभिलगृह्यसूत्र और नामकरण-पद्धतिमें विधानमें भेद है। पहलेमें यह विधान है कि बच्चेको वस्त्राभूषण पहनाकर चौकपर बैठकर माता उसे वामभागमें बैठे हुए पिताकी गोदमें दे। फिर उसकी पीठकी ओरसे परिक्रमा करती हुई उसके सामने आ खड़ी हो। तब पति वेदमन्त्रका पाठ करके बच्चेको फिर माताकी गोदमें दे दे। फिर होम आदि करके नाम रखा जाय। दूसरेमें यह विधान है कि पिता गौरी, षोडश-मातृका आदिका पूजन और वृद्धिश्राद्ध करके अपनी पत्नीको वामभागमें बैठावें, फिर पत्थरकी पटरीपर दो रेखाएँ खींचे, फिर दीपक जलाकर पुत्रके कानके पास 'अमुक०' इत्यादि कहकर नामकरण करें।' (श० सा०)

नोट—२ (क) ***'करि पूजा···'*** इति। पूजा करके तब नाम धरनेको कहा जिसमें पुत्रोंका मङ्गल-कल्याण हो। (त्रिपाठीजी ***'पूजा'*** से 'नामकरणकी अंगभूत पूजा तथा मुनिकी पूजा' ऐसा अर्थ करते हैं) (ख) ***'मुनि गुनि राखा'*** इति। भाव यह कि वे ज्ञानी हैं, जानते हैं कि अमुक दिन नामकरण होगा, इसलिये पहलेसे ही विचार कर रखा होगा विचारवाले काम तुरत-के-तुरत प्रायः ठीक नहीं होते। इसीसे ***'मुनि'*** विशेषण दिया, अर्थात् आप मननशील हैं, नामकरणमें मननका काम है सो आप मनन कर ही चुके होंगे। धरिये=रखिये। नाम धरना-नामकरण करना। नामकरणमें नाम कहा नहीं जाता वरञ्च धरा वा रखा जाता है, इसीसे ***'कहिअ नाम'*** न कहा। भगवत्-नामकी प्राप्ति गुरुके द्वारा चाहिये। (पं० रामकुमारजी)

नोट—३ नामकरण वैशाख कृ० ५ को अनुराधा नक्षत्रमें हुआ। (वै०)

इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा॥ ४॥
जो आनंदसिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥ ५॥
सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा॥ ६॥

शब्दार्थ—**सीकर** (शीकर)=जलके बूँदका एक कणमात्र। **सुपासी**=सुखी करनेवाले।

अर्थ—(श्रीवसिष्ठजी बोले—) हे राजन्! इनके नाम अनेक और अनुपम हैं। मैं अपनी बुद्धिके

अनुसार कहूँगा॥ ४॥ जो आनन्दके समुद्र और सुखकी राशि हैं, जिस (आनन्दसिन्धु) के एक कणसे त्रैलोक्य सुखी होता है॥ ५॥ वह सुखधाम है उनका राम ऐसा नाम है जो समस्त लोकोंको विश्राम देनेवाला है॥ ६॥

टिप्पणी—१ *'इन्ह के नाम अनेक—'* इति। (क) *'इन्ह के'* से सूचित हुआ कि रानियाँ चारों पुत्रोंको लेकर चौकमें समीप ही बैठी हैं, इसीसे मुनि अंगुल्यानिर्देश करके कहते हैं कि इनके नाम अनेक हैं। (ख) *'अनूपा'* कहकर नामकी सुन्दरता दर्शित की। और, *'अनेक'* कहकर जनाया कि आप इनका एक नाम धरनेको कहते हैं पर इनके नाम अनन्त हैं, और अनूप हैं अर्थात् अत्यन्त सुन्दर-सुन्दर सब नाम हैं, वैसे नाम क्या कोई धर सकता है? जैसे इनके अनेक सुन्दर नाम हैं, वैसे हम कहनेको समर्थ नहीं हैं, इसीसे कहते हैं कि *'मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा'* अर्थात् अपनी बुद्धि ही भर हम कहेंगे।

नोट—१ *'जो आनंदसिंधु सुखरासी।—'* इति। पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि 'नामीमें तीन विशेषण दिये—आनन्दसिन्धु, सुखराशि और सुखधाम। नाममें तीन मात्राएँ हैं जो तीनों सुखरूप हैं। *'सो सुखधाम राम अस नामा—॥'* यह नामका अर्थ है। नामीका धर्म है *'सीकर तें त्रैलोक सुपासी।'* और, नामका धर्म है *'अखिल लोक दायक बिश्रामा।'* यथा—'**विज्ञानमानन्दं ब्रह्म यस्य मात्रामुपादायान्यानि भूतानि उपजीवन्ति इति श्रुतिः', 'विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम्**।' (इति हनुमन्नाटके) *पुनः 'सो सुखधाम राम अस नामा।—'* का दूसरा अर्थ कि 'वह सुखका धाम राम ऐसा नाम है' अर्थात् जिसको प्रथम आनन्दसिन्धु सुखराशि कह आये वही ब्रह्म रामनाम है, नामी सुखराशि है, नाम सुखधाम है। तात्पर्य कि नाम-नामी दोनों एक ही वस्तु हैं। ब्रह्मके दो विशेषण आनन्दसिंधु और सुखराशि कहनेका भाव यह है कि रामनाममें दो अक्षर हैं। इसीसे ब्रह्मके दो विशेषण दिये। और यह जनाया कि वही ब्रह्म राम-नाम है। रामजी ब्रह्म हैं; यथा—*'जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भएउ कोसलपुर भूपा॥'* (पं० रामकुमार)

रा० प्र० कार लिखते हैं कि 'आनन्दसिंधु, सुखराशि और सुखधाम तीनों लगभग एक ही अर्थ देते हैं, तब यह तीनों क्यों लिखे?' और स्वयं उत्तर देते हैं कि ज्ञान, कर्म और उपासनाके विचारसे तीन विशेषण दिये गये। ज्ञानीको आनन्दकी पिपासा (प्यास) रहती है, उसके लिये आनन्दसिंधु कहा। कर्मकाण्डी यज्ञादिक करके स्वर्गादिका सुख चाहते हैं उनके लिये सुखराशि कहा। और उपासक सुखमय अविचल धाम चाहते हैं, उनके लिये सुखधाम कहा। यथा—*'मुख्य रुचि होति बसिबेको पुर रावरे।'* (वि० २१०)

मा० म० कार लिखते हैं कि 'यहाँ समष्टि और व्यष्टि दोनों शोभित हैं। आनन्दसिंधुके सुखकी राशि जो समष्टि ब्रह्म और जिस सुखराशिके सीकरांशसे त्रैलोक्य सुखी होता है यह व्यष्टिका स्वरूप है। इन दोनों (सुखों) का मुख्यधाम (श्रीरामचन्द्रजी) जो सम्पूर्ण लोकोंका विश्रामदायक है, ऐसे पुत्रका नाम 'राम' होगा। वा, 'आनन्दसिंधु' यह रूपपरत्वकी अपार महिमा है और *'सो सुख धाम'* यह नामकी महिमा है। अर्थात् परस्वरूप आनन्दसिंधु और सुखराशि है। पुनः, उसका अखिललोकको सुख देनेवाला राम ऐसा नाम है।'

बाबा हरिदासजीका मत है कि 'रामोपासकोंके लिये रामनाम सुखसिंधु है, ज्ञानियोंको सुखराशि और कर्मकाण्डियोंको सुखधाम है। अथवा, रकार सुखसिन्धु है, अकार सुखराशि है, मकार सुखधाम है, इसीसे यहाँ तीन सुखवाचक विशेषण दिये।'

नोट—२ (क) मुनि ज्ञानी हैं। उन्होंने ऐश्वर्यसूचक नाम रखे। 'आनन्दसिंधु' अर्थात् जैसे सब जलका अधिष्ठान समुद्र वैसे ही आनन्दके अधिष्ठान ये हैं, यथा—*'आनँदहू के आनँददाता।'* मिलान कीजिये गीतावलीके *'सुभको सुभ मोद मोदको 'रामनाम' सुनायो। आलबाल कल कौसिला दल बरन सोहायो॥ कंद सकल आनन्दको जनु अंकुर आयो॥'* इस पद ६ से। (ख) *'सीकर तें त्रैलोक सुपासी'* इति। यथा—*'जो सुखसिंधु सकृत सीकरतें सिव बिरंचि प्रभुताई।'* (गी० १। १) अर्थात् संसारमें ब्रह्मा और शिवजीके अमित वरदानसे जो प्रभुता देखी-सुनी जाती है वह उस सुखसिन्धुका एक कणमात्र है। पाँड़ेजी लिखते हैं कि सींकको जलमें डुबाकर पृथ्वीपर पटकनेसे जो उड़े वह कण वा सीकर है।

'नोट—३ (क) शुकदेवलालजी *'सीकर तें त्रैलोक सुपासी'* का अर्थ यों करते हैं कि 'सीकरसे त्रैलोक्यपर्य्यन्तका प्रकाशक है। अर्थात् सबमें रम रहा है और जिसमें सब रम रहे हैं।' (ख) ***'इन्ह के नाम अनेक अनूपा'*** कहकर प्रथम अपनी अयोग्यता ठहरायी कि इनके नाम वर्णन नहीं किये जा सकते और फिर कहा कि ***'मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा।'*** अतः यह 'निषेधापेक्ष अलङ्कार' है। (वीर)

बैजनाथजी लिखते हैं कि चार प्रकारके नाम होते हैं—जाति, गुण, क्रिया और यदृच्छा। यहाँ क्रिया नाम कहा। अर्थात् 'दयादृष्टि (से) सबमें रमत (रमते) हैं। अथवा शोभामय अपने रूपमें सबको रमाते हैं। इससे 'राम' कहा। [यह भाव अ० रा० के '**यस्मिन् रमन्ते मुनयो विद्ययाज्ञानविप्लवे। तं गुरुः प्राह रामेति रमणाद्राम इत्यपि॥**' (१। ३। ४०) इस श्लोकमें है। अर्थात् विद्या (विज्ञान) के द्वारा अज्ञानके नष्ट हो जानेपर मुनि लोग जिनमें रमण करते हैं अथवा जो अपनी सुन्दरतासे भक्तोंके चित्तोंको रमाते अर्थात् आनन्दमें मग्न करते हैं, उनका गुरुने 'राम' नाम रखा।] इनका जन्म पुनर्वसुके चौथे चरणमें हुआ; इससे इनके राशिका नाम हिरण्यगर्भ अथवा हिरण्यनाभ होना चाहिये।

नोट—४ त्रिपाठीजी लिखते हैं कि 'आनन्दसिंधुसे परिपूर्णानन्द', आनन्दमात्रका मूल निधान तथा देशतः कालतः वस्तुतः अपरिच्छिन्न कहा। 'आनन्द' कहनेसे ही सत्-चित्का आप-से-आप ही ग्रहण हो जाता है। सुखराशिसे व्यावहारिक आनन्दका मूल स्रोत कहा। '**एष ह्येवानन्दयतीतिः श्रुतेः।**' अतः स्वरूपसे सिन्धु, चरित करनेमें राशि। यथा—***'नित नव चरित देखि पुरवासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी॥'*** अखिल लोक विश्रामदायक होनेसे 'सुखधाम' कहा। सुखसिंधु, सुखराशि और सुखधाम कहनेसे उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका कारण द्योतित किया। (यथा—'**आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जीवन्ति आनन्दं प्रत्यभिसंविशन्ति**')।

बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥ ७॥
जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥ ८॥
दो०—लच्छनधाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लच्छिमन नाम उदार॥ १९७॥

शब्दार्थ—**भरन** (भरण)=पालन। **पोषन** (पोषण)=पालन करके वृद्धि और पुष्टि करना।

अर्थ—जो संसारभरका भरण-पोषण करता है उसका 'भरत' ऐसा नाम होगा॥ ७॥ जिसके स्मरणसे शत्रुका नाश होता है उसका नाम शत्रुघ्न वेदोंमें प्रसिद्ध है॥ ८॥ जो सुलक्षणोंके धाम, श्रीरामजीके प्रिय और सारे जगत्के आधारभूत हैं गुरु वसिष्ठजीने उनका लक्ष्मण (ऐसा) श्रेष्ठ नाम रखा॥ १९७॥

टिप्पणी—१ (क) ***'बिस्व भरन पोषन कर जोई'*** से जनाया कि भरतजी विष्णुके अवतार हैं। भरण-पोषण करना विष्णुभगवान्का धर्म है। (ख) तीन कल्पोंमें विष्णुका अवतार है। विष्णु-अवतार होनेपर नामकरण इस प्रकार किया कि 'जो आनन्दसिन्धु सुखराशि सुखधाम हैं अर्थात् विष्णु, उनका राम ऐसा नाम है और विश्वभरण पोषणकर्ता जो विष्णु हैं उनके 'कर' में जो है अर्थात् शङ्ख, उसका नाम भरत है। जिसके स्मरणसे शत्रुका नाश होता है अर्थात् चक्र, उसका शत्रुघ्न नाम है। सकल जगत्का आधार जो शेषजी हैं उनका लक्ष्मण नाम है।' और मनुके कल्पमें ऐसा नाम धरा कि जो आनन्दसिंधु सुखराशि सुखधाम अर्थात् ब्रह्म है, उनका 'राम' नाम है। विश्वभरणपोषणकर्ता विष्णुका नाम 'भरत' है। जिसके स्मरणसे शत्रुका नाश होता है अर्थात् शिव उनका 'शत्रुघ्न' नाम है और सकल जगत्के आधार जो ब्रह्माजी हैं उनका नाम 'लक्ष्मण' है। अर्थात् तीनों भाई त्रिदेवके अवतार हैं। प्रमाण, यथा—*'संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥'* (१४४। ६) जिनके अंशसे उत्पन्न हैं वे ही कहते हैं कि *'अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहौं चरित भगत सुखदाता॥'* (१५१। २) [वे० भू० रा० कु० का मत है कि ये तीन अंश त्रिदेवावतार नहीं हैं। त्रिदेव तो ब्रह्मके अंशसे उत्पन्न होते हैं न कि अंश हैं। *'उपजहिं जासु अंस ते'* शब्द हैं। इस विषयपर विस्तृत लेख दोहा १८७ (२) *'अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहौं—'* में है।]

नोट—१ बैजनाथजी लिखते हैं कि—(१) 'भरत' नाम भी क्रिया-नाम है। कैकेयीजी क्रिया-शक्ति हैं, उनका फल धर्मरूप भरतजी हैं। इनका जन्म पुष्यनक्षत्रके दूसरे चरणमें हुआ। अतः इनके राशिका नाम 'हेमनिधि' होना चाहिये। (२) शत्रुघ्न भी क्रिया-नाम है। इनका जन्म आश्लेषाके प्रथम चरणमें हुआ; इससे 'डील तेजनिधि' राशिका नाम होना चाहिये। (३) लक्ष्मणजी यमज हैं। इनके राशिका नाम 'डील धराधर' होना चाहिये।

नोट—२ चारों भाइयोंका अवतार जगत्-हितार्थ हुआ, यह बात उनके विशेषणोंसे सूचित कर दी गयी है। 'उदार' कहा, क्योंकि श्रीलक्ष्मणजी जीवोंके आचार्य हैं, जीवोंको कल्याण-मार्गपर चलाते हैं, भक्ति प्रदान करते हैं। कलियुगमें श्रीरामानुजाचार्य आपहीके अवतार हैं।' (बाबा हरिदासजी)

नोट—३ अ० रा० में नामकरणका मिलता हुआ श्लोक यह है—'**भरणाद् भरतो नाम लक्ष्मणं लक्षणान्वितम्। शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारमेवं गुरुरभाषत॥ ४१॥**' मानसमें *'विश्व भरन पोषन कर', 'लच्छनधाम'* और *'रिपुनासा'* की जगह उसके पर्याय '**भरणात्**', '**लक्षणान्वितम्**' और *'शत्रुहन्तारम्'* शब्द श्लोकमें हैं।

टिप्पणी—२ 'विश्वके आनन्ददाता राम, विश्वके भरणपोषणकर्त्ता भरत, विश्वके शत्रुनाशकर्ता शत्रुघ्न और विश्वके धारणकर्ता लक्ष्मणजी हैं। अर्थात् विश्वके उपकारार्थ चतुर्व्यूह अवतार है। ब्रह्मके स्वरूपका राम नाम है और भाइयोंके गौण नाम हैं। ब्रह्ममें गुण नहीं हैं, इसीसे श्रीरामजीका गौण नाम नहीं धरा।'

प० प० प्र०—*'लच्छन'* शब्द शुद्ध संस्कृत भाषाका है (अमरव्याख्या-सुधा देखिये)। श्रीलक्ष्मणजीको ही रामप्रिय, सकल जगत्-आधार और उदार क्यों कहा? मानसमें श्रीभरतजी ही श्रीरामजीको सबसे अधिक प्रिय हैं और श्रीरामजी भरतजीको?—यह ध्यानमें रखना चाहिये कि ये सब वचन वेदतत्त्व-विचारसे ही कहे गये हैं, अतः इस शङ्काका समाधान भी आध्यात्मिक विचारसे ही करना आवश्यक है।

विश्वात्मा, विश्व-विभु लक्ष्मण है, वह जाग्रदवस्थाका अभिमानी है। कोई भी जीव जाग्रत्-अवस्थासे ही तुरीयासमाधि-अवस्थामें वेदतत्त्वसे एकरूप हो सकता है, वेदतत्त्वको मिलता है। तैजस और प्राज्ञको, स्वप्न और सुषुप्ति-अवस्थामें, अपनी-अपनी अवस्थासे तुरीयमें प्रवेश करना असम्भव है। सुषुप्ति तो अज्ञानावृत-अवस्था है और स्वप्न अज्ञान और विपरीत-ज्ञान-युक्त होता है। जाग्रत्का अभिमानी अपनी अवस्थाका त्याग करके तुरीयामें जा सकता है, स्वप्नाभिमानी और सुषुप्त्याभिमानी ऐसा नहीं कर सकता। विशेष ३२५ छन्दमें देखिये।

'सकल जगत आधार'—जब ब्रह्मावतार राम होते हैं। तब शेषशायी नारायण लक्ष्मण होते हैं। श्रीमन्नारायणसे ही ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई, अतः आधिदैविक विचारसे *'सकल जगत आधार'* उचित ही है। अध्यात्मदृष्टिसे शेषका अर्थ है उच्छिष्ट ब्रह्म। ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके अनन्तर जो मायायुक्त ब्रह्म शेष रहा वही उच्छिष्ट ब्रह्म है। अथर्ववेद ११। ७। १—२८ देखियेगा। इस उच्छिष्ट ब्रह्मके आधारपर ही ब्रह्माण्ड टिक रहा है। जगत्का देह अर्थ करनेपर भी यही बात सिद्ध होती है। देहमें भी शेषजी अंशरूपसे रहते हैं। कन्दके ऊपर और मूलाधारके नीचे बीचमें उनका स्थान है। वहाँ कुण्डलाकार नाड़ीमें इनका निवास होता है। पिण्डकी रचना करके जो शेष रहता है वह पिण्डका आधार होता है। पिण्डमें इस शेषजीको कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। जगत्का देह अर्थमें प्रयोग भागवत-ब्रह्मस्तुतिमें मिलता है।

'उदार'—जो सर्वस्वका त्याग करता है, 'अपनी' कहनेके लिये कुछ भी नहीं रखता, अपना व्यक्तित्व भी त्याग देता है, वही सच्चा उदार है। जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिका त्याग करेगा वही उदार है। उर्मिला, श्रुतिकीर्ति और माण्डवी तीन अवस्थाएँ हैं। लक्ष्मणजी वनगमनसमय उर्मिलाजीसे मिलने भी न गये, १२ वर्षतक आहार और निद्राका त्यागकर श्रीरामसेवामें निरत रहे। अपने सम्बन्धमें तो उन्होंने कभी स्वप्नमें भी कुछ विचारा नहीं, श्रीरामजीको सुख मिले यही अपना कर्तव्य समझते थे। वे केवल रामसेवामूर्ति हैं। श्रीरामलक्ष्मणजीका समान विशेषणोंसे कविने '**कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ**—' में वर्णन किया है और उनको भक्तिप्रद कहा है।

नोट—४ 'लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजीके नामकरणमें क्रमभंग हुआ है' अर्थात् लक्ष्मणजी भरतजीसे छोटे और शत्रुघ्नजीसे बड़े हैं; उनका नामकरण शत्रुघ्नजीके पीछे कैसे हुआ? यह शङ्का यहाँ उठाकर लोगोंने उसका समाधान कई प्रकारसे किया है—

(१) मनुवरदान तथा आकाशवाणी देखिये, ब्रह्म अपने अंशोंसहित अवतीर्ण हुआ है। गुरुजीने चारों पुत्रोंको 'वेदतत्त्व' कहा है। प्रणव (ओंकार) वेदतत्त्व है। प्रणवकी मात्राओंके सम्बन्धमें वेदोंमें निम्न वाक्य हैं—

माण्डूक्योपनिषद्में बताया गया है कि प्रणवकी तीन मात्राएँ वा पाद अकार, उकार और मकार हैं। जिसका जागरित स्थान है वह वैश्वानर व्याप्ति और आदिमत्त्वके कारण प्रणवकी पहली मात्रा अकार है। यथा—'**जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्त्वाद्वाऽऽप्नोति** ॥' (माण्डू० ९) स्वप्न जिसका स्थान है वह तैजस उत्कर्ष तथा मध्यवर्तित्वके कारण ओंकारकी द्वितीय मात्रा उकार है, यथा—'**स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति** ' (माण्डू० १०) सुषुप्तिस्थानवाला प्राज्ञ मान और लयके कारण तीसरी मात्रा मकार है; यथा—'**सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति** ॥' (माण्डू० ११) और मात्रारहित ओंकार तुरीय है, यथा—'**अमात्रश्चतुर्थोऽ** ।' (१२)

श्रीरामोत्तरतापिनी-उपनिषद्में बताया है कि प्रणवमें षडक्षर हैं। प्रथम अक्षर अकार है, दूसरा उकार, तीसरा मकार, चौथा अर्धमात्रा, पाँचवाँ अनुस्वार (विन्दु) और छठा अक्षर नाद है। यथा—'**अकारः प्रथमाक्षरो भवति। उकारो द्वितीयाक्षरो भवति॥ मकारस्तृतीयाक्षरो भवति। अर्धमात्रश्चतुर्थाक्षरो भवति॥ विन्दुः पञ्चमाक्षरो भवति। नादः षष्ठाक्षरो भवति** ॥' फिर यह भी बताया है कि श्रीसुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मणजी अकाराक्षरसे प्रादुर्भूत हुए हैं। ये (जाग्रत्‌के अभिमानी) 'विश्व' के रूपमें भावना करने योग्य हैं। श्रीशत्रुघ्नजीका आविर्भाव प्रणवके 'उकार' अक्षरसे हुआ है। ये (स्वप्नके अभिमानी) 'तैजस' रूप हैं। श्रीभरतजी (सुषुप्तिके अभिमानी)'प्राज्ञ' रूप हैं। ये प्रणवके 'मकार' अक्षरसे प्रकट हुए हैं। श्रीरामजी प्रणवकी अर्धमात्रारूप हैं। (ये ही तुरीय पुरुषोत्तम हैं।) ब्रह्मानन्द ही इनका एकमात्र विग्रह है। यथा—'**अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः। उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः॥ प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भवः। अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः॥**'

उपर्युक्त श्रुतियोंसे स्पष्ट है कि वेदतत्त्व प्रणवकी मात्राएँ, अक्षर वा पाद अकार, उकार, मकार और अर्द्धमात्रा क्रमशः विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीयके वाचक वा रूप हैं। श्रीलक्ष्मण, श्रीशत्रुघ्न, श्रीभरत और श्रीरामजी क्रमसे विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीयरूप हैं। और 'अ', 'उ', 'म' से क्रमशः श्रीलक्ष्मण, श्रीशत्रुघ्न, श्रीभरतका प्रादुर्भाव हुआ है तथा श्रीरामजी अर्धमात्रारूप हैं—

श्रुतियोंमें प्रणवकी व्याख्या की है, इसीसे उनमें अकारादि क्रम लिया है, क्योंकि प्रणवकी मात्राएँ क्रमसे 'अ, उ, म अर्द्धमात्रा' हैं; और इसीसे उनमें उनके वाचक श्रीलक्ष्मण, श्रीशत्रुघ्न, श्रीभरत और श्रीराम इस क्रमसे आये हैं।

यहाँ (मानसमें) नामकरण-संस्कारमें गुरु वसिष्ठजीने उपर्युक्त क्रमको उलट दिया है। (अर्थात् 'अ' 'उ' 'म' 'अर्द्धमात्रा' को उलटकर अर्द्धमात्रा, 'म', 'उ', 'अ' यह क्रम लिया); क्योंकि रामचरितमें श्रीरामजी मुख्य हैं। उन्होंने प्रथम तुरीयके पति ब्रह्म श्रीरामसे नामकरण प्रारम्भ किया। तो उनके पश्चात् सुषुप्तिके स्वामी प्राज्ञरूप (मकार) श्रीभरतजी, फिर स्वप्नके अभिमानी तैजसरूप (उकार) शत्रुघ्नजी और अन्तमें जाग्रत्‌के स्वामी विश्वरूप (अकार) श्रीलक्ष्मणजीके नाम क्रमसे आये।

गुरु वसिष्ठको नामकरणके प्रारम्भमें 'ज्ञानी' विशेषण दे आये हैं, यथा—'*नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ज्ञानी॥*' (१९७। २) वे ज्ञानी हैं, इसीसे तो उन्होंने वेदोंमें जैसा उत्पत्तिका क्रम है उसीके अनुसार नामकरण किया, केवल भेद इतना किया कि पूर्ण ब्रह्मसे प्रारम्भ किया, अंशसे नहीं।

(यही मत प्रायः पं० रामकुमारजी, रा० प्र०, मा० त० वि०, वै०, प० प० प्र० का है।)

त्रिपाठीजी लिखते हैं कि सुषुप्तिके विभुका नाम भरत रखकर स्वप्नके विभुका नाम शत्रुघ्न रखा, क्योंकि सुषुप्तिसे स्वप्न अलग नहीं किया जा सकता।

(२) अथवा, उत्पत्ति-क्रमके अनुसार नामकरण किया गया। यमज पुत्रोंकी उत्पत्तिके विषयमें हमारे शास्त्रोंमें बताया है कि जब वीर्य द्विधा अर्थात् दो भाग होकर रजमें प्रवेश करता है तब दो गर्भ होते हैं। परंतु प्रसूति (अर्थात् जन्म) प्रवेशके विपरीत होती है। अर्थात् जिस भागका प्रवेश प्रथम होता है

उसकी प्रसूति पीछे होती है और जिसका प्रवेश पीछे होता है उसकी प्रसूति पहले होती है। यथा—'**यदा विशेद्द्विधाभूतं बीजं पुष्पं परिक्षरत्। द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिर्वेशविपर्ययात्॥**' (इति पिण्डसिद्धिस्मरणात्। श्रीधरीटीका) इसका उदाहरण भागवतमें मिलता है। कश्यपजीने जुड़वा दो पुत्रोंमेंसे जो अपनी देहसे प्रथम हुआ उसका नाम हिरण्यकशिपु रखा और दितिने जिसको प्रथम जन्म दिया उसका हिरण्याक्ष नाम रखा। यथा—'**प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्यः प्राक् स्वदेहाद्यमयोरजायत। तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा यं तं हिरण्याक्षमसूत साग्रतः॥**'(भा० ३। १७। १८) '**हरिण्याक्षोऽनुजस्तस्य।**'(२०) '**जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानववन्दितौ। हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः॥**'(भा० ७। १। ३९) हिरण्याक्ष प्रथम पैदा हुआ फिर भी उसको आधानके क्रमसे छोटा कहा गया। और हिरण्यकशिपुको जो पीछे उत्पन्न हुआ बड़ा कहा। इसी प्रकार यहाँ कौसल्याजीको दिये हुए चरुसे लक्ष्मणजी हुए हैं, जिसका भक्षण प्रथम होनेसे उसका आधान भी प्रथम हुआ था। कैकेयीजीके दिये हुए चरुसे शत्रुघ्नजीका आधान पीछे हुआ। उपर्युक्त शास्त्रके नियमसे शत्रुघ्नजीकी उत्पत्ति प्रथम होनेपर भी आधानके क्रमसे वे छोटे माने गये और लक्ष्मणजी बड़े। अतः उत्पत्तिक्रमसे नामकरण होनेसे शत्रुघ्नजीका नामकरण प्रथम हुआ।

(३) रा० प्र० का मत है कि 'युग्म बालकमें जो पीछे होता है उसका गर्भाधान प्रथम होता है। अतः शत्रुघ्नजीका नामकरण प्रथम हुआ।' परंतु यदि इनके कथनानुसार शत्रुघ्नजीका आधान प्रथम हुआ है तो इसमें दो विरोध उत्पन्न होते हैं। एक तो कैकेयीजीके दिये हुए चरुका भक्षण प्रथम मानना पड़ेगा, दूसरे ऊपर (२) में दिये हुए शास्त्रके नियमानुसार उनको लक्ष्मणजीसे बड़ा मानना पड़ेगा, जो मानसका मत नहीं है और बड़ा मानते हैं तब तो प्रथम नामकरणमें शंका ही नहीं हो सकती।

(४) पं० विश्वनाथमिश्रजी लिखते हैं कि 'हमारे विचारसे कौसल्या, कैकेयी और सुमित्राजी अपनी-अपनी गोदमें पुत्रोंको लिये बैठी थीं और वसिष्ठजी नामकरण कर रहे थे। पहले कौसल्याजी श्रीरामजीको लिये बैठी थीं; फिर कैकेयी और उनके पश्चात् सुमित्राजी थीं। मारे दुलारके सुमित्राजीने शत्रुघ्नको दाहिनी ओर ले रखा था और लक्ष्मणको बायीं ओर। छोटा होनेके कारण शत्रुघ्नको दाहिनी ओर रखना मातृत्व-स्वभावसिद्ध बात है। हमारे विचारसे नामकरणमें भरतका नामकरण कर लेनेपर शत्रुघ्न पहले पड़े तो उनका नामकरण न कर लक्ष्मणका नामकरण करने लगना भी अनुचित होता। यही कारण था कि शत्रुघ्नका नामकरण पहले हुआ। यह बात सिद्ध हो चुकी है कि जो प्रथम उत्पन्न होगा उसका गर्भाधान भी प्रथम होगा। अतएव शत्रुघ्नको बड़ा कहनेसे इस शंकाका समाधान नहीं हो सकता।' (प० प० प्र० इससे सहमत हैं।)

(५) पंजाबीजी कहते हैं कि—(क) कविताके क्रमसे कदाचित् आगे-पीछे हुआ हो इससे इसमें दोष नहीं है। अथवा, (ख) श्रीरामजी सबके आदि हैं और लक्ष्मणजी संकर्षण हैं अर्थात् सर्वसृष्टिके आकर्षण करनेवाले हैं, इससे उन्हे पीछे कहा। अथवा, (ग) श्रीरामजी आदि हैं और लक्ष्मणजी अन्त, ये संपुटके समान हैं। भरत-शत्रुघ्नजी मध्यमें रत्नवत् हैं। अर्थात् जैसे सम्पुट रत्नकी रक्षा करता है वैसे ही श्रीराम-लक्ष्मणजी श्रीभरत-शत्रुघ्नरूपी रत्नोंकी रक्षा वनके दुःखोंमें तथा कैकेयीके कलङ्कोंसे करते हैं।

(६) पाण्डेजीका मत है कि 'शत्रुघ्नजीके पीछे श्रीलक्ष्मणजीके नामकरण करनेका आशय यह है कि श्रीराम, भरत और शत्रुघ्नजीके लिये एक-एक लक्षण—'***अखिललोक दायक बिश्रामा***', '***बिस्व भरन पोषन***' और '***सुमिरन ते रिपुनासा***' जो क्रमसे कहे गये हैं उन सब लक्षणोंको एकत्र श्रीलक्ष्मणजीमें दिखाना था। अतएव उन तीनोंका नामकरण करके तब लक्ष्मणजीका नामकरण '***लच्छनधाम***' विशेषण प्रथम देकर करते हुए जनाया कि श्रीरामजीका विश्वको विश्राम देना, श्रीभरतजीका विश्वको भरणपोषण करना और श्रीशत्रुघ्नजीका शत्रुसे रक्षा करना, ये तीनों गुण भी श्रीलक्ष्मणजीमें हैं और इनके अतिरिक्त '***रामप्रिय***' अर्थात् रामके प्यारे एवं राम जिनको प्यारे हैं, और 'सम्पूर्ण जगत्के आधारभूत', ये गुणविशेष हैं। इसीसे गुरुवसिष्ठने इनके नामको '**उदार**' अर्थात् परिपूर्ण विशेषण दिया।'

(७) श्रीस्नेहलताजीका मत है कि यहाँ गोस्वामीजीने ऐश्वर्य-सूचक नाम दिये हैं, इसलिये यहाँ छोटे-बड़ेका विचार नहीं है। माधुर्य नाम दिये जाते तो उसमें बड़े-छोटेका विचार अवश्य करते।

(८) किसीका मत है कि 'भरत-शत्रुघ्नकी जोड़ी एक साथ कही और आदि-अन्तके योगसे रामलक्ष्मणकी जोड़ी कही।'

(९) गौड़जी भरत-शत्रुघ्नको यमज मानकर दोनोंका नामकरण साथ होनेका कारण उनका एक कल्पमें यमज होना कहते हैं।

श्रीलमगोड़ाजी—'नामकरण' इति। (सं० १९९५ भाद्रपदवाली 'सुधा' के पृष्ठ २२३)—'गुरु वशिष्ठने नामकरण-संस्कारके समय ही चारों भाइयोंके नामोंकी स्पष्ट व्याख्या कर दी है। उन्होंने रामको '***सकल लोक दायक बिश्रामा***' कहा है तो भरतको 'विश्वभरण-पोषण' करनेवाला। शत्रुघ्नको दैवी सत्ताका वह अंश बताया है, जिसके '***सुमिरन ते***' रिपुका नाश होता है। लक्ष्मणजीको '***सकल जगत आधार***' कहा है और यह बता दिया है कि चारों भाई वेदतत्त्वके अवतार हैं, न कि किसी देवताके। सरोजनी नायडूजीने सृष्टिरचनाके उस पौराणिक कलापूर्ण चित्रणका नवीन प्रकटीकरण किया है, जिसमें शेषशायी भगवान् क्षीरसागरमें योगनिद्रामें मगन हैं, और लक्ष्मीजी पायँते बैठी हुई पैर दबा रही हैं। कमलको सम्बोधित करते हुए 'जीवन और मृत्युके अधिपतियोंका समकालीन' कहा है। (Crenal with the Lords of life and Death) उभय प्रसङ्गोंके पाठसे स्पष्ट हो जायगा कि कवयित्रीजीवाले दो व्यक्तियोंके ही रूपान्तर वसिष्ठजीकी चार व्यक्तियाँ हैं। राम और भरत जीवनाधिपतिके दो रूप। एक वह जो शान्ति एवं आनन्दमय है; परंतु (विशेषत:) सृष्टिसे बाहर, जिससे सृष्टि निकलकर फिर उसीमें विश्राम पा जाती है, और दूसरा विश्वभरण-पोषण करनेवाला रूप, जो सृष्टिके अंदर काम करता है। यदि एक व्यापक विष्णुरूप तो दूसरा पालक विष्णुरूप।'

इसी प्रकार मृत्युके अधिपतिके भी दो रूप हैं। एक शेषरूप, जो मानो सृष्टिसे बाहर रहकर 'कृतान्तभक्षक' भी है और 'जगदाधार अनन्त' रूपमें 'जनत्राता' भी और दूसरा सृष्टिके भीतर रहनेवाला वह रूप जिसके स्मरणसे रिपुका नाश होता है। गीतामें भी दैवी शक्तिके ये ही दो रूप माने गये हैं, एक वह, जिससे साधुओंका परित्राण होता है और दूसरेसे दुष्टोंका विनाश। परंतु यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि यह तत्त्व उसी तरह पृथक्-पृथक् नहीं पाये जाते, जैसे, सत्, रज और तम। जिस व्यक्तिमें जो तत्त्व प्रधान होता है, वैसा ही उसका नामकरण।...... वस्तुत: यह व्यक्तियाँ वेदतत्त्व है या नहीं, इसमें मतभेद हो सकता है, पर ये नाम किसी-न-किसी रूपमें वेदमें आये अवश्य हैं। पं० श्रीजयदेव शर्माकृत सामवेद-भाष्यके पृष्ठ ४६०-४६१ पर निम्नलिखित मन्त्र अर्थसहित पाया जाता है—'**यो जानाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य, स पवस्य सहस्रजित्**'। [जो स्वयं जीत लेता है और दूसरेसे जीता नहीं जाता, तथा सम्मुख आकर शत्रुको नाश करता है, वह हजारोंको जीतनेवाला बलस्वरूप तू हमारे प्रति आ, प्रकट हो, हमें प्राप्त हो।] 'शत्रुघ्न' की कैसी सुन्दर व्याख्या है।

अब उसी पुस्तकके पृष्ठ ४३८ पर देखिये तो आपको निम्नलिखित मन्त्र अर्थसहित मिलेगा—'**तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवे दिवे। पुरूणि बभ्रो विचरन्ति मामव परिधीरिति ताइहि॥**' [हे परमात्मन्! सारे संसारके भरण-पोषण करनेवाले! रातमें तेरे और दिनमें भी तेरे ही रसमय कोशमें मैं रस प्राप्त करता हूँ। पक्षियों या रश्मियोंके समान हम दीप्तिसे जाज्वल्यमान सूर्यके समान सर्वाधार परम देव आपके पास कर्मबन्धनको पार करके प्राप्त होते हैं] 'भरत' की कैसी सुन्दर व्याख्या है? ('जगदाधार' भी मौजूद और 'जगत प्रकाश्य प्रकाशक राम' भी)...... पाठकोंको बड़ा आनन्द आयेगा यदि वे उपर्युक्त विचारशैलीके आधारपर राम-लक्ष्मण और भरत-शत्रुघ्नकी जोड़ियोंपर विचार करेंगे—यह सोचते हुए कि भरत रामके और शत्रुघ्न लक्ष्मणके रूपान्तर हैं, [एक जोड़ी अयोध्याका आन्तरिक प्रबन्ध करती है तो दूसरी अन्ताराष्ट्रिय गुत्थियाँ सुलझाती है। इस दृष्टिकोणसे '***पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥***' बहुत ही बढ़ जाता है। मिल्टनकी भाषामें एक जोड़ी Cosmes (सृजित सृष्टि) को संचालित करती है